16 वां अंक

मरु बागवाणी

राजभाषा पत्रिका

(2021-22 एवं 2022-23)

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीछवाल, बीकानेर 334 006 (राजस्थान)

16 वां अंक

आईएसओ 9001:2008 प्रमाणित संस्थान

मरु बागवाणी

राजभाषा पत्रिका

(2021-22 एवं 2022-23)

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीकानेर-334 006 (राजस्थान)

षोडश अंक

वर्ष 2021-22 एवं 2022-23

प्रकाशक

डॉ. जगदीश राणे

निदेशक

भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान

बीकानेर-334006 (राज.)

दूरभाष - 0151-2250147, 2250960, फैक्स - 0151-2250145

ईमेल - ciah@nic.in वेब साइट - www.ciah.icar.gov.in

प्रधान सम्पादक

डॉ. जगदीश राणे

डॉ. दिलीप कुमार समादिया

कार्यकारी सम्पादक

प्रेम प्रकाश पारीक

सह-सम्पादक

श्री रूप चंद बलाई

डॉ. अनिता मीणा

डॉ. अजय कुमार वर्मा

शब्द संधारण/परिकल्पना और छायांकन

संजय पाटिल

भोजराज खत्री

मुद्रक

आर.जी. एसोसिएट्स

बीकानेर (राज.)

मो. 9414603856

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में विचार लेखकों के अपने हैं। इन विचारों के लिए प्रकाशक अथवा सम्पादक मण्डल किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं हैं।

अनुक्रमणिका

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	संस्थान की प्रमुख राजभाषा गतिविधियां	9
2.	भारतीय एकता सूत्र : हिन्दी	15
3.	लो टनल तकनीक : गर्म शुष्क क्षेत्रों में अधिक आय का बेहतर विकल्प	17
4.	थार वैभव : नींबू की एक नई किस्म	25
5.	शुष्क एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में बेल की आधुनिक खेती	29
6.	शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में शरीफा की वैज्ञानिक खेती	33
7.	एयर लेयरिंग द्वारा कम लागत में अमरूद का प्रवर्धन	38
8.	शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में खेती की दृष्टि से लाभदायक : लसोड़ा	41
9	संतरे में फायटोप्थोरा (गमोसिस) रोग एवं प्रबंधन	44
10.	खेती एवं औषधीय रूप से अत्यधिक लाभकारी है: 'पीलू फल'	46
11.	शुष्क राजस्थान में फालसा की खेती	49
12.	अनार की उन्नत उत्पादन तकनीकी	52
13	पश्चिमी राजस्थान में खींप (लेप्टाडेनिआ पीरोटेक्निका) का आर्थिक संभाव्य	57
14.	लौकी की वैज्ञानिक खेती	60
15	औषधीय गुणों से भरपुर झाड़ करेला	65
16.	बाँस स्टेकिंग पर सब्जियों की खेती द्वारा दोहरा लाभ	67
17.	शुष्क क्षेत्रों में अनार में कीट एवं रोग प्रबंधन	69
18	खजूर की प्रमुख बीमारियाँ एवं उनका एकीकृत प्रबंधन	74
19.	लवणीय और क्षारीय भूमि में सुधार की तकनीकियाँ: मृदा सुधार और फसल प्रबंधन के दृष्टिकोण	77
20.	बैंगन में तना व फल छेदक कीट का समन्वित प्रबंधन	82
21.	गोंद के लिए उगाएं ग्वार	85
22.	आलू के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन	88
23.	फसल उत्पादन में जैव उर्वरकों की भूमिका एवं महत्व	91
24.	पौष्टिक सिंघाड़े का प्रसंस्करण एवं उपयोगिता	94
25.	केंचुआ खाद- प्राकृतिक खेती का स्तम्भ	97
26.	कृषि विज्ञान केन्द्र पंचमहल द्वारा ग्रामीण कृषि मौसम सेवा	100
27.	इंद्रधनुषी कृषि क्रांति	102
28.	जलवायु परिवर्तन के साथ मृदा उर्वरता एवं जल प्रबंधन	103
29.	फलों और सब्जियों के लिए परिपक्वता सूचकांक : शुष्क प्रदेश में उच्च गुणवत्ता के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण उपाय	107
30.	पुष्पों का राजा : गुलाब की उन्नत खेती	110

निदेशक
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीछवाल, बीकानेर (राजस्थान)
ई मेलः ciah@nic.in, दूरभाष : 0151 2250147 फैक्स : 0151-2250145

डॉ. दिलीप कुमार समादिया

प्राक्कथन

भारत जैसे वृहद् और अनेकानेक संस्कृतियों वाले देश में किसी एक भाषा का राजभाषा के रूप में प्रस्थापित होना बहुत ही सुखद स्थिति है। हिन्दी भाषा को यह गौरव प्राप्त है। यद्यपि हिंदी किसी राज्य की मातृभाषा न होकर यह वृहद् रूप में पूरे देश की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। यही कारण है कि संविधान निर्माताओं ने इसके महत्व और उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए इसे पूरे देश की राजभाषा बनाया। सरकारी क्षेत्र में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न नियमों और अधिनियमों के उपधानों के आधार कार्य किया जाता है। हिन्दी में साहित्य प्रकाशन का कार्य भी इसकी प्रगति का सूचक होता है। यह भाषा सरल एवं सुग्राह है। हिन्दी में अब विश्व स्तर के साहित्य की रचनाएं भी बहुत की जाने लगी है। इसी कड़ी में इस संस्थान के द्वारा वैज्ञानिक उपलब्धियों को सबके लिए और विशेषकर किसानों के लिए सुलभ करने हेतु सरल व सहज हिन्दी भाषा में लेख लिखे जाकर उन्हें 'मरु बागवाणी' नाम से प्रकाशित की जाने वाली राजभाषा पत्रिका में प्रकाशित किया जाता है।

संस्थान में राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' का प्रकाशन पिछले एक दशक से भी अधिक समय से निरंतर किया जा रहा है। पत्रिका का सोलहवां अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में पिछले अंकों के अनुभवों और पाठकों के समालोचनात्मक सुझावों को समाहित किया गया है ताकि लेखों की गुणवत्ता को उत्कृष्टता के शिखर की ओर ले जाया जा सके।

किसान भाईयों और प्रबुद्ध नागरिकों को प्रस्तुत इस अंक में एक ओर जहां शुष्क बागवानी के विकास के विविध आयामों को एक साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है तो, दूसरी ओर साहित्यिक रचनाएं संकलित की गयी हैं। भारतीय संस्कृति में पेड़–पौधों के महत्व को सर्वोपरि रखा जाता था और एक लेख के माध्यम से इस अंक में भी इसे अहम स्थान दिया गया है।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि संस्थान की राजभाषा पत्रिका में प्रकाशित लेखों का स्तर दिनों–दिन अधिक रूचिकर और ज्ञानवर्धक होता जा रहा है। हिन्दी भाषा में पूर्ण वैज्ञानिक व सुदृढ़ शब्द भण्डार होने से इसमें वैज्ञानिक साहित्य का सृजन सरलता से किया जाने लगा है। समग्ररूप में यह अंक वृहद् भावों को समेटे हुए हमारे दिन–प्रति दिन के सभी कलेवरों को एक साथ प्रस्तुत करने एक प्रयास मात्र है। आशा है यह अंक इसके पूर्ववर्ती अंकों की भांति ही रूचिकर लगेगा। इस अंक को यह स्वरूप प्रदान करने में लगे सभी कार्मिकों का मैं हृदय से आभार व्यक्त करते हुए उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

(दिलीप कुमार समादिया)

डॉ. जगदीश राणे

निदेशक
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान
बीछवाल, बीकानेर (राजस्थान)
ई मेल: ciah@nic.in, दूरभाष : 0151 2250147 फैक्स : 0151-2250145

प्राक्कथन

कृषि में विज्ञान का महत्वं है। विज्ञान और अनुसंधान एक दूसरे के पूरक हैं। कृषि में नित नए प्रयोगों की आवश्यकता दिनों–दिन बढ़ती जा रही है, इसमें विज्ञान व वैज्ञानिकों की भूमिका अहम् होती है। अनुसंधान कार्यों को खेतों व किसानों तक पहुँचाने में भाषा एवं साहित्य का भी अपना महत्वं होता है। इस अनूठे मेल से अनुसंधान की सार्थकता चरितार्थ होती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के संस्थानों द्वारा किए जा रहे अनुसंधान कार्यों को जन साधारण तक पहुँचाने में भाषा का स्थांन भी प्रबल है। इसमें हिन्दी् भाषा सर्वोपरि कही जा सकती है। केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर ने राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' के माध्यम से किसानों को बागवानी अनुसंधानों की लाभप्रद व रोचक भाषा में जानकारी देने का जो कार्य किया है वह सराहनीय है।

संस्थान में राजभाषा पत्रिका ''मरु बागवाणी'' का प्रकाशन पिछले दो दशकों से भी अधिक समय से निरंतर किया जा रहा है। पत्रिका का संयुक्त अंक (सोलहवां) अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में पिछले अंकों के अनुभवों और पाठकों के समालोचनात्मक सुझावों को समाहित किया गया है ताकि लेखों की गुणवत्ता को उत्कृष्टता के शिखर की ओर ले जाया जा सके। हिन्दी भाषा में पूर्ण वैज्ञानिक व सुदृढ़ शब्द भण्डार होने से इसमें वैज्ञानिक साहित्य का सृजन सरलता से किया जाने लगा है। समग्ररूप में यह अंक वृहद् भावों को समेटे हुए हमारे दिन–प्रति दिन के सभी कलेवरों को एक साथ प्रस्तुत करने एक प्रयास मात्र है। आशा है यह अंक इसके पूर्ववर्ती अंकों की भांति ही रूचिकर लगेगा।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि इस पत्रिका के माध्यम से शुष्क बागवानी के विकास में मदद मिलेगी तथा साथ ही राजभाषा के क्षेत्र में भी प्रगति के अवसर बढ़ेंगे।

पत्रिका के इस संयुक्त अंक के लिए इससे जुड़े सभी कार्मिकों को मैं को बधाई देता हूँ ।

जगदीश राणे

(जगदीश राणे)

सम्पादकीय

मानव जीवन में भाषा का अत्यंत महत्व है। वैचारिक आदान-प्रदान, व्यापार व्यवहार का आधार भाषा ही है। भाषा सम्प्रेषण का सरल माध्यम है, भाषा के बिना न तो एक दूसरे को समझा जा सकता है और न पारस्परिक संबंधों को प्रगाढ़ बनाया जा सकता है। भाषा ही मनुष्यों को एक-दूसरे से जोड़े रखती है। भाषा एक प्रवाहमान सरिता है जिसमें हमारा जीवन बहता है। भाषा से ही समाज बनता है और भाषा के द्वारा ही उसे एक सूत्र में बांधकर रखा जा सकता है। राजभाषा हिन्दी का भारत सरकार के कार्यालयों में प्रयोग करने हेतु भारत सरकार ने विभिन्न अधिनियमों-नियमों का सृजन कर इसे प्रभावशाली ढंग से लागू किया है। अब यह प्रत्येक कार्यालय की जिम्मेदारी है कि वह राजभाषा को उस प्रभावशाली ढंग से लागू करे जिसकी यह अधिकारिणी है। प्रत्येक कार्यालय विभिन्न प्रकार से हिंदी का प्रगामि प्रयोग बढ़ाने का प्रयास करता आ रहा है।

इस संस्थान के द्वारा हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए किए गये कार्यो में एक कार्य इस राजभाषा पत्रिका 'मरु बागवाणी' का प्रकाशन भी है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य राजभाषा हिंदी की प्रगति के साथ शुष्क बागवानी के नित नए अनुसंधान कार्यो को किसानों एवं जन साधारण तक पहुँचाना भी है क्योंकि हिंदी एक बहुत बड़े वर्ग की भाषा भी है।

प्रस्तुत अंक में हमने इस संस्थान में इस वर्ष की गयी हिन्दी भाषा के प्रगामि प्रगति की रिपोर्ट को दर्शाया है। इसके साथ ही, फलों एवं सब्जियों के फटने एवं उनमें लगने वाले कीट-रोगों के संबंधित लेखों को इसमें शामिल किया है। पोषण से संबंधित विषयों पर आजकल अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इस अंक में पोषण-वाटिका के गठन और उस से उत्पादन पर आधारित लेख को भी स्थान दिया है। इसके अतिरिक्त बागवानी के विकास में महिलाओं की भागीदारी के साथ-साथ अवप्रयोगी फलों की खेती पर भी इस अंक में प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

आशा है इस अंक को भी आपका उतना ही प्यार और भरोसा प्राप्त होगा जितना इससे पूर्व को अंकों को प्राप्त हुआ है। आपकी सक्रिय प्रतिक्रियाओं की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

सम्पादक मण्डल

संस्थान की प्रमुख राजभाषा गतिविधियां

जगदीश राणे, दिलीप कुमार समादिया एवं प्रेम प्रकाश पारीक

वर्ष 2021–22

राजभाषा कार्यन्वयन समिति की बैठक एवं त्रैमासिक हिन्दी कार्यशाला

कलैण्डर वर्ष 2021 के दौरान राजभाषा कार्यन्वयन समिति की तिमाही बैठकों का आयोजन क्रमशः दिनांक 11 मार्च, 2021, 14 जून, 2021, 01 सितम्बर, 2021 एवं 07 दिसम्बर, 2021 को किया गया था। इन सभी बैठकों में संस्थान की राजभाषा गतिविधियों की समीक्षा की गयी एवं हिन्दी की प्रगति को संस्थान के दैनिक कार्यों में सुनिश्चित किया गया। इन बैठकों का कार्यवत्त तैयार कर उसी अनुसार कार्रवाई की गयी।

संस्थान में कार्यरत अधिकारियों/कर्मचारियों को हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा के लिए राजभाषा विभाग के निर्देशानुसार चार त्रैमासिक कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। वर्ष 2021 की पहली कार्यशाला का आयोजन दिनांक 27 मार्च, 2021 को किया गया जिसमें ''राजभाषा हिन्दी –सरल एवं सुगम' विषय पर व्याख्यान का आयोजन किया गया। इसमें इंजि. आशा शर्मा, सहायक अभियन्ता (विद्युत) एवं हिन्दी साहित्यकार व कथाकार ने व्याख्यान दिया। वर्ष की दूसरी कार्यशाला दिनांक 30 जून, 2021 को आयोजित की गयी जिसमें ''राजभाषा प्रबंधन और ई–ऑफिस'' विषय पर श्री धीरज शर्मा,उप निदेशक (राजभाषा), राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल ने व्याख्यान दिया। में प्रथम दो कार्यशालाओं का आयोजन ऑनलाईन रूप में किया गया था। इसी क्रम में तीसरी कार्यशाला का आयोजन 27 सितम्बर, 2021 को किया गया जिसमें बीकानेर के जाने माने हास्य कवि श्री बी.एल.छंगाणी और वयोवृद्ध हिन्दी साहित्यकार श्रीमती प्रमीला गंगल ने अपना व्याख्यान दिया। वर्ष 2021 की अंतिम कार्यशाला का आयोजन दिनांक 16 दिसम्बर, 2021 को किया गया जिसमें ''राजभाषा हिन्दी में अनुस्वार और उनका प्रयोग' विषय पर श्री ताराचंद रेपस्वाल, प्रधानाचार्य, राजकीय प्रवेशिका संस्कृत विद्यालय, गाढ़वाला, बीकानेर ने अपना व्याख्यान दिया।

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

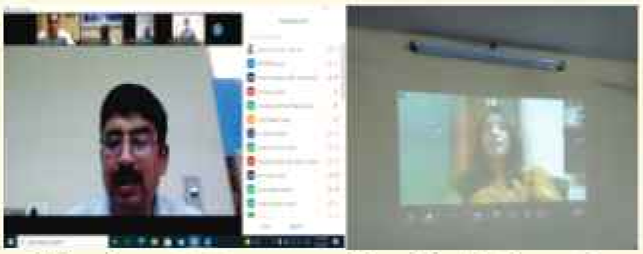

हिंदी कार्यशाला के दौरान व्याख्यान देते अतिथि श्री धीरज शर्मा एवं श्रीमती आशा शर्मा

हिंदी पखवाड़ा का आयोजन

संस्थान में दिनांक 14 से 30 सितम्बर 2021 तक हिंदी पखवाडा आयोजित किया गया। एक पंद्रह दिनों तक चले इस आयोजन में विभिन्न प्रतियोगिताएं रखी गयी थी, जिनमें संस्थान के वैज्ञानिकों के सहित सभी कार्मिकों ने भाग लिया।

इस दौरान 14 सितम्बर 2021 को हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया था। इस अवसर पर डॉ. रमेश पुरी, सहायक आचार्य (हिंदी), राजकीय महाविद्यालय, डूंगरगढ़ मुख्य अतिथि थे। श्रीमती सुधा आचार्य, वरिष्ठ हिन्दी साहित्यकार विशिष्ठ अतिथि थीं।

हिंदी पखवाड़े का समापन दिनांक 30 सितम्बर, 2021 को किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए राजुवास, बीकानेर के माननीय कुलपति प्रो. सतीश कुमार गर्ग ने हिंदी भाषा के महत्व को समझाते हुए कहा कि राजभाषा के रूप में वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पा रही है। हिंदी को जो स्थान प्राप्त होना था, वह आज 75 वर्षों के बाद भी नहीं प्राप्त हुआ। इसके लिए हमें बाहरी देशों का उदाहरण देखना चाहिए जिन्होंने अपनी भाषा को नहीं बिसराया। हम हिंदी भाषा को लेकर हीन भावना से ग्रस्ति हो जाते हैं जो हमें त्यागना होगा।

विशिष्ट अतिथि डॉ. ब्रजरतन जोशी, सह आचार्य, डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर ने कहा हिंदी भाषा के प्रचार में हम सफल हो रहे होंगे, परन्तुए इस सफलता की सार्थकता संदिग्ध है। हिंदी भाषा जितनी वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है उतनी संसार में अन्य कोई भाषा नहीं है। हिंदी भाषा में अनुसंधान कार्य की कमी का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि इसके बारे में शोध कार्य बहुत कम हो रहें हैं, जो

बढ़ाना अनिवार्य है। हिंदी में परिशोधन कार्य नहीं होने से भाषा का विकास अवरूद्ध हो जाएगा।

संस्थान के निदेशक प्रो (डॉ.) पी.एल. सरोज ने इस अवसर पर सभी अतिथियों का स्वागत करते हुए अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि भाषा संस्कृति की संवाहक होती है। भाषा से किसी देश की संस्कृति की झलक प्राप्त होती है। अतः भाषा का स्थान बहुत ही महत्व का होता है।

हिंदी पखवाड़े के दौरान कुल छः प्रतियोगिताएं आयोजित की गयी थी। इनमें सभी कार्मिकों ने बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। प्रतियोगिताओं में विजेता रहे कार्मिकों को समापन समारोह के दौरान प्रशस्ति पत्र एवं पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया जिसका विवरण निम्नानुसार दिया गया है–:

क्र.स.	प्रतियोगिता का नाम /वर्ग	विजेता		
		प्रथम	द्वितीय	तृतीय/सांत्वना
1	हिंदी सामान्यन ज्ञान प्रतियोगिता (वैज्ञानिक वर्ग)	डॉ. अजय कुमार वर्मा	डॉ. चेतराम डॉ. कमलेश कुमार	डॉ. किशन लाल कुमावत डॉ पवन सिंह गुर्जर
	प्रशासनिक वर्ग	श्री कुलदीप पान्डे	श्री स्वरूप चंद राठौड	श्री राजेश कुमार दैया
	तकनीकी वर्ग	श्री संजय पाटिल	..	..
	एसआरएफ वर्ग	डॉ. पवन कुमार पारीक	श्री लोकेश कुमार	...
2	यूनिकोड हिंदी टंकण प्रतियोगिता	डॉ. अजय कुमार वर्मा	डॉ रामकेश मीणा	...
3	सम सामयिक विषय पर लेख प्रतियोगिता	डॉ. दीपक कुमार सरोलिया	श्री रूपचंद बलाई	डॉ. रेखा रानी
4	हिंदी में अंत्याक्षरी	दल 'अ'	दल 'स'	दल 'द'
5	बच्चों की चित्रकला प्रतियोगिता बड़ी कक्षा समूह	कु. अवंतिका	कु. भाविका	कु. रितिका
	छोटी कक्षा समूह	कु. जागृति	चिं. यशवर्धन	..
6	हिंदी शब्द लेखन प्रतियोगिता वैज्ञानिक वर्ग	डॉ. हनुमान राम	डॉ. अजय कुमार वर्मा	डॉ. पवन कुमार गुर्जर
	तकनीकी वर्ग	श्री छुट्टन लाल मीणा	श्री संजय पाटिल	..
	प्रशासनिक वर्ग	श्री स्वरूप चंद राठौड	श्रीमती पूजा जोशी	श्री कुलदीप पान्डे
	आर.ए तथा वाईपी वर्ग	डॉ. पवन कुमार पारीक	श्री आत्मा राम	..

इसके अतिरिक्त कुछ कार्मिकों और बच्चों को सांत्वना पुरस्कार भी दिए गए थे।

संस्थान द्वारा प्रकाशित हिंदी के प्रकाशन

इस अवधि के दौरान संस्थान ने अपने वार्षिक प्रतिवेदन एवं छःमाही समाचार पत्र द्विभाषी प्रकाशित किया है। इसके अतिरिक्त ''राजस्थान में शुष्क बागवानी की उन्नत तकनीकियां'' नामक तकनीकी पुस्तिका का प्रकाशन भी किया गया।

वर्ष 2022–23

राजभाषा कार्यन्वयन समिति की बैठक एवं त्रैमासिक हिन्दी कार्यशाला

कलैण्डर वर्ष 2022 के दौरान राजभाषा कार्यन्वयन समिति की तिमाही बैठकों का आयोजन क्रमशः दिनांक 15 मार्च. 2022, 15 जून, 2022, 05 सितम्बर, 2022 एवं 19

दिसम्बर, 2022 को किया गया था। इन सभी बैठकों में संस्थान की राजभाषा गतिविधियों की समीक्षा की गयी एवं हिन्दी की प्रगति को संस्थान के दैनिक कार्यों में सुनिश्चित किया गया। इन बैठकों का कार्यवत्त तैयार कर उसी अनुसार कार्रवाई की गयी।

संस्थान में कार्यरत अधिकारियों/कर्मचारियों को हिन्दी में कार्य करने की प्रेरणा के लिए राजभाषा विभाग के निर्देशानुसार चार त्रैमासिक कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। वर्ष 2022 की पहली कार्यशाला का आयोजन दिनांक 26 मार्च, 2022 को किया गया जिसमें ''राजभाषा हिंन्दी में जाने दंत चिकित्सा एवं दांतों की आवश्यक देख–रेख' विषय पर व्याख्यान का आयोजन किया गया। इसमें दंत चिकित्सक डॉ. ध्रुपद माथुर ने व्याख्यान दिया। उन्होंने दांतों की देखभाल की विधियों और उनमें लगने वाली बीमारियों तथा उनके उपायों के बारे में हिन्दी राजभाषा में विस्तार से चर्चा की जिसे सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने सराहा। वर्ष की दूसरी कार्यशाला दिनांक 24 जून, 2022 को आयोजित की गयी जिसमें ''मानसिक स्वास्थ्य'' विषय पर डॉ. डी. एस. पूनिया, एमडी, एम्स दिल्ली ने व्याख्यान दिया। इसी क्रम में तीसरी कार्यशाला का आयोजन संयुक्त रूप से क्षेत्रीय केन्द्र वेजलपुर पर 12–13 सितम्बर, 2022 को किया गया जिसमें श्री मनोज कुमार, मुख्य तकनीकी अधिकारी, भाकृअनुप, नई दिल्ली ने इसमें भाग लेकर अपना व्याख्यान दिया था। वर्ष 2022 की अंतिम कार्यशाला का आयोजन दिनांक 30 दिसम्बर, 2022 को किया गया जिसमें ''स्वच्छता पखवाड़ा और उसकी उपयोगिता' विषय पर व्याख्यान दिया गया।

हिंदी कार्यशाला के दौरान व्याख्यान देते अतिथि डॉ. ध्रुपद माथुर

क्षेत्रीय केन्द्र, वेजलपुर की हिन्दी गतिविधियों का निरीक्षण करते हुए अधिकारी एवं संयुक्त हिंदी कार्यशाला के दौरान व्याख्यान देते श्री मनोज कुमार

हिंदी पखवाड़ा का आयोजन

संस्थान में दिनांक 16 से 30 सितम्बर 2022 तक हिंदी पखवाडा आयोजित किया गया। एक पंद्रह दिनों तक चले इस आयोजन में विभिन्न प्रतियोगिताएं रखी गयी थी, जिनमें संस्थांन के वैज्ञानिकों के सहित सभी कार्मिकों ने भाग लिया। इस दौरान 14 सितम्बर 2022 को हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया था।

हिन्दी पखवाड़े का समापन दिनांक 30 सितम्बर को किया गया। दिनांक 16 से 30 सितम्बर 2022 तक चल इस पखवाड़े के दौरान संस्थान में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

समापन कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. रजनीरमण झा, सह प्राध्यापक महारानी सुदर्शना राजकीय बालिका महाविद्यालय, बीकानेर ने कहा कि हिंदी भारत की आत्मा है। यह मजदूरों, किसानों और जन साधारण के द्वारा बढ़ायी गयी भाषा है। भारत में भाषा का विकास राज्याश्रय से हुआ परन्तु हिन्दी को कभी राज्याश्रय नहीं मिला। हिन्दी किसी राज्य की भाषा नहीं थी। हिन्दी बहुत ही उदार भाषा है। हिन्दी के बिना काम नहीं चलेगा। इसे अपनाना संविधान प्रदत है। हिंदी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं को भी सीखने की बात पर उन्होंने जोर दिया।

इस अवसर पर अध्यक्षता करते हुए संस्थान निदेशक डॉ. डी. के. समादिया ने कहा कि भारत सरकार की योजना के अंतर्गत संस्थान में हिन्दी भाषा पर बहुत कार्य किया जाता रहा है। सभी लोग हिन्दी बोलते हैं और किसानों को सभी प्रकार के प्रशिक्षण हिंदी में ही दिए जाते हैं।

इससे पूर्व हिन्दी पखवाड़ा आयोजन समिति के अध्यतक्ष डॉ. दीपक कुमार सरोलिया ने इसमें आयोजित हुए कार्यक्रमों की जानकारी दी। राजभाषा अधिकारी श्री प्रेम प्रकाश पारीक ने विजेताओं के नामों की घोषणा की तथा मुख्य अतिथि ने उन्हें पुरस्कार प्रदान किए। प्रधान वैज्ञानिक डॉ धुरेन्द्र सिंह ने कार्यक्रम के अंत में सभी आगन्तुकों को धन्यवाद ज्ञापित किया।

क्र.स.	प्रतियोगिता का नाम /वर्ग	विजेता		
		प्रथम	द्वितीय	तृतीय/सांत्वना
1	हिन्दी कविता वाचन प्रतियोगिता वैज्ञानिक वर्ग	डॉ. कमलेश कुमार	डॉ. अजय कुमार वर्मा	डॉ. सुशील कुमार महेश्वरी
	प्रशासनिक वर्ग	श्री राजेश कुमार दैया	श्रीमती पूजा जोशी	———
	एसएसएस वर्ग	श्री महेश कुमार मीणा	श्री शिव लाल	———
2	वैज्ञानिक शोध लेखन प्रतियोगिता	डॉ. पवन सिंह गुर्जर श्री रूप चंद बलाई	डॉ. अनीता मीणा	———
3	हिन्दी टिप्पण लेखन प्रतियोगिता	श्री राकेश स्वामी	श्री राजेश दैया	श्री स्वरूप चंद राठौड़
4	हिन्दी आशुभाषण प्रतियोगिता	डॉ अजय कुमार वर्मा	डॉ. रामकेश मीणा	श्री शिवलाल
5	हिंदी शब्द ज्ञान प्रतियोगिता वैज्ञानिक वर्ग	डॉ. हनुमान राम	डॉ. अजय कुमार वर्मा	डॉ. कमलेश कुमार डॉ.किशनलाल कुमावत प्रोत्साहन
	तकनीकी वर्ग	श्री पृथ्वी राज सिंह	———	———
	प्रशासनिक वर्ग	श्री स्वरूप चंद राठौड	श्रीमती पूजा जोशी	श्री राजेश दैया
	आर.ए तथा वाईपी वर्ग	श्री असीम आचार्य	श्री दिग्विजय सिंह	श्री राम किशन श्री लोकेश कुमार
6.	हिन्दी में सर्वाधिक कार्य करने पर नकद राशि पुरस्कार	श्रीमती पूजा जोशी, आशुलिपिक, पीएमई, प्रकोष्ठ श्री राजेश दैया, सहायक, वित्त एवं लेखा अनुभाग श्री स्वरूप चंद राठौड़, प्रश्रेलि, वित्त एवं लेखा अनुभाग श्री एच. एस. पटेल, सहायक, प्रशासनिक अनुभाग श्री गुल्लान राम, प्र.श्रे. लि., प्रशासनिक अनुभाग		

इसके अतिरिक्त संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के बच्चों के लिए पोस्टर प्रतियोगिता का आयोजन भी किया गया था। सभी बच्चों को पुरस्कार भी दिए गए थे।

हिन्दी पखवाड़े की कुछ झलकियां

संस्थान द्वारा प्रकाशित हिंदी के प्रकाशन

प्रतिवेदन एवं छःमाही समाचार पत्र द्विभाषी प्रकाशित किया है। इसके अतिरिक्त "खेजड़ी" नामक तकनीकी पुस्तिका का प्रकाशन भी किया गया।

हिन्दी

हिंदी है जान हिंदुस्तान की,
मान है सम्मान है, हर एक हिंदुस्तानी की।
मीठी जुबान है रस की खान है,
कबीर के कड़वे वचन में जीवन की सच्चाई है,
तो मीरा के भजनों में सांची पत्नी का समर्पण।
तुलसी के राम देते परिवार बनाने का संदेश,
तो जायसी के पद्मावत में प्रेम की इबादत है।
प्रेमचंद जोड़ते जन जन की समस्या से तो,
प्रसाद पन्त निराला करते प्रकृति का शब्दों से चित्रण है,
प्रकृति में छिपे ब्रह्मांड के रहस्य का उद्घाटन ।
प्रगतिशील कवि दिख रहे राह नवीन निर्माण की
साहित्य को नई उपमाओं के उधार से नवाज़ते प्रयोगवादी ।
नई समस्याओं, नए विषयों को चित्रित करती नई कविताएं है।
यह हिंदी है जनसमुदाय की आवाज़ है।
आज़ादी के आंदोलन में जगाई जनमन में आज़ादी की आग है।
भाइयों यह हिंदी है, ऐसी वैसी नही यह करोडो कण्ठों की पहचान है।
मैं हिंद हूँ मेरे गर्व और स्वाभिमान की असली जान है।

- डॉ. सोनल शर्मा
पीजीटी-हिंदी
पी एम श्री केंद्रीय विद्यालय क्रमांक -२ (एकलिंगगढ)

भारतीय एकता सूत्र : हिन्दी

कनक लता

हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है, उससे भी बढकर यह हमारे देश की एकता की कड़ी है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक हिन्दी का अस्तीत्व है। वर्तमान ही नहीं भूत काल में भी हिन्दी ने देश को जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी का योगदान अतुलनीय है। स्वतंत्रता संग्राम में स्वतंत्रता सेनानियों ने अनुभव किया था कि, पूरे देश में स्वतंत्रता संग्राम छेड़ने के लिए एक भाषा की आवश्यकता है, गुजरात में जन्म लेने वाले महात्मा गाँधी ने नारा दिया 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' यह हिंदी में था परंतु यह कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक जैसे स्वतंत्रता संग्राम का मूल मंत्र बन गया था लोग इस नारा के साथ एक ह्रदय हो कर देश को आजाद कराने हेतु बढ़–चढ़ कर भाग ले रहे थे। नेता जी सुभाष चंद्र बोस जो जन्म से तो बंगाली थे उनकी मातृभाषा बंगला थी परंतु जब उन्होंने सिंह नाद किया 'दिल्ली चलो' तो सभी भारतीय एक धारा की तरह उनके साथ संग्राम में कूद पड़े। 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा' नेता जी का निर्णयात्मक घोष था। सभी भारतीयों ने उसे सुना उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम के राज्यों में रहने वाले लोग इस आहवान पर निकल पडे। निरूसंदेह महात्मा गाँधी और नेताजी सुभाष चंद्र के व्यक्तित्व में जादू था पर उन जादूगरों के मंत्र हिंदी में थे जो पूरे देश को समझ में आया और लोग स्वतंत्रता की राह पर एक–जुट हो कर निकल पड़े।

महाराष्ट्र में जन्म लेने वाले महानायक बाल गंगाधर तिलक ने तो चुम्बक की तरह लोगों को जोड़ा था जब उन्होंने कहा था 'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है'। उनके एक पंक्तिने पूरे देश को एक लड़ी में पीरो दिया था वे सिर्फ मराठी नहीं बल्कि सभी भारतीय के नेता बन गए। सुब्रह्मणियम भारती के स्वतंत्रता गीत सभी सेनानियों ने गाए थे। हिंदी सरल, सुबोध और सुगम भाषा है द्य इसका सबसे बड़ा गुण ग्राह्यता है यानि यह सभी भाषाओं के शब्दों को आत्मसात कर लेती है जिससे कोई भी भाषा के व्यक्ति को हिंदी अपनी ही भाषा लगती है। मुझे तो बड़ा गर्व होता है जब कोई गुजराती भाई या बेन गुजराती शब्दों को समावेश कर बड़ी ही सरलता से हिंदी का प्रयोग करते हैं। कोई दक्षिण भारतीय अन्ना दक्षिणी सुर में हिंदी बोलकर दिल्ली या जयपुर के दर्शनीय स्थलों का भ्रमण करते हैं। देखा गया है कि जहाँ दो अलग अलग भाषा के लोगों को आपस में बातें करनी हो और वे एक दुसरे की भाषा से अनजान हैं तो स्वतः ही हिंदी उनका सहारा बन जाती है इसलिए तो हिंदी हमारी एकता को संपोषित करती है।

मैंने कई बार देखा है बिहार, उत्तर प्रदेश या अन्य हिंदी भाषी क्षेत्र के लोग तमिलनाडू के रामेश्वरम तीर्थाटन के लिए जाते हैं वहाँ के पूजारी हों या ऑटो रिक्शा या होटल वाले वे इन ग्रामीण तीर्थयात्रियों से हिंदी में बाते करते हैं। कहाँ रह जाता है उत्तर–दक्षिण का भेद ? पूरा हिंदुस्तान को एक समरस बनाने वाली है हिंदी भाषा। हाँ एक बात और है, थोपी हुयी हिंदी एकता की कड़ी नहीं बन सकती उसे स्वच्छंद रुप से पनपने दें– इन पंक्तियों को देखें,

हिंदी भारत की बोली है, इसे अपने आप पनपने दो
यह हर मुखड़े से फूटेगी, इसे अपने आप निखरने दो
तैयार रहो प्रगति पथ पर, नयनों को नहीं झपकने दो

हिंदी मात्र भारत की ही नहीं विश्व में भी अपनी पैठ बना रही है, मॉरीशस, फीजी, सुरीनाम, त्रिनिदाद आदि देशों में तो हिंदी बोलने वालों की संख्या काफी है परंतु अब तो कनाडा और अमेरिका में भी हिंदी बोलने वालों की संख्या और साख दोनों में बढोत्तरी हुयी है।

हिंदी को लोकप्रिय एवं एकता की कड़ी बनाने में चलचित्र जगत का भी बहुत हाथ रहा है। हिंदी फिल्में बनती हैं महाराष्ट्र में जहाँ की भाषा मराठी है पर भारत का इतना समृद्ध फिल्म इंडस्ट्री हर वाद से दूर चलचित्र सृजन में लगा रहता है, हिंदी में फिल्म पद्मावत में इतिहास का अनुपम चित्रण पूरे देश के लोगों ने देखा। दक्षिण के महानायक रजनीकांत ने हिंदी मे फिल्म बना दी 'कबाली' पूरा भारत रम गया फिल्म देखने में। हिंदी फिल्में उत्तर पूर्वी राज्य हों या दक्षिण भारत सभी जगह लोकप्रिय हैं। हिंदी के मधुर गाने, देश के हर कोने में सुनाई देते हैं। लोगों की जुबान पर हिंदी गाने के बोल होते हैं। टी.वी के कार्यक्रम हों या विज्ञापन में हिंदी का प्रयोग खूब होता है क्योंकि विज्ञापन दाताओं को भी पता है कि हिंदी की नईया बड़ी तीव्र गति से उनके उत्पादों को बाजार में स्थान दिलवा सकता है। अब उत्पाद बनाने वाले चेन्नई के हों या बेंगलुरु के गौहाटी के हों या कोलकाता के हिंदी उनके व्यवसाय के लिए सफलता की कुंजी होती है। पूरा देश एक कड़ी में आबद्ध होता है।

कृषि विज्ञान केन्द्र– वेजलपुर, पंचमहल (गुजरात)

हिंदी वैज्ञानिक भाषा है। यह फोनोटॉनिक भाषा है। जैसी लिखी जाती है वैसी ही बोली जाती है अतः कम्प्यूटर के लिए सबसे वैज्ञानिक भाषा है, जिससे मोबाईल कम्प्यूटर आदि पर आसानी से स्वीकृत है। नयी तकनीकियों में हिंदी के प्रयोग से गैर हिंदी भाषी व्यक्तियों को भी हिंदी सीखने में रुचि उत्पन हो रही है। आए दिन फेसबुक, वॉट्सअप पर हिंदी में विचारों का आदान–प्रदान चलता रहता है। हर स्वतंत्र राष्ट्र की अपनी भाषा होती है जो देश में सरकारी काम–काज व विचार–विनिमय के काम आती है, जब कोई देश दूसरे देश को गुलाम बनाता है तो वह उस देश पर अपनी भाषा थोपता है। भारत के स्वतंत्र होने पर हमारे संविधान निर्माताओं ने हिंदी को देश की राष्ट्रभाषा व सरकारी काम–काज के लिए राजभाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित किया। हिंदी भाषी प्रांतो में तो यह जनप्रिय या लोकप्रिय भाषा के रुप में बोली जाती है परंतु अन्य राज्यों में भी हिंदी जानने वाले व्यक्तियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। हिंदी भाषा इस समय संसार की उन भाषाओं में से एक है जो सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली जाती है। इस समय संसार के प्रत्येक विकसित देश के रेडियो प्रसारण में हिंदी को अच्छा सम्मान प्राप्त है। विश्व के लगभग सभी देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई की जाती है। अमेरिका के 26 विश्वविद्यालयों में, हॉलैण्ड के सभी विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई जारी है।

हिंदी देश की समृद्ध भाषा है, जिसमें हर प्रकार के साहित्य का निर्माण हो चुका है। प्रत्येक विधाओं में इसका पूर्ण विकास हो चुका है, कबीर सूर, तुलसी, बिहारी आदि प्राचीन कवि हिंदी के वरद पुत्र हुए हैं, भारतेंदु, द्वीवेदी, प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, पंत, महादेवी वर्मा, दिनकर, प्रेमचंद आदि ख्याति लब्ध साहित्यकारों ने हिन्दी में लिखा है। ये मात्र प्रादेशिक लेखक या कवि नहीं हैं बल्कि राष्ट्रीय साहित्यकार हैं। देश के कोने–कोने में लोग इन्हें पढ़ते हैं यह हमारी एकता को सबलता प्रदान करते हैं।

संविधान के अनुच्छेद 343 में हिंदी को सरकारी काम–काज के लिए देश की राजभाषा बनाया गया है तथा अनुच्छेद 350 के अनुसार केंद्र सरकार को पूर्ण दायित्व दिया गया है कि, वह हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए प्रयत्नशील रहे। पर यह मात्र सरकार का कर्तव्य नहीं है बल्कि हम सब भारतीयों की भी जिम्मेवारी है कि, हमारी राजभाषा को सम्मान मिले। वह पूरे भारत की एकता की कड़ी है उसे हम सब मिलकर मजबूत करें। हिंदी को राष्ट्र भाषा नहीं बनने पर दुखी होने मात्र से कुछ नहीं बदलेगा हमें प्रबल संकल्प लेना होगा ताकि इसे राष्ट्र भाषा का सम्मान प्राप्त हो सके।

"आँसू बहाने का तुम्हारे पास हमेशा विकल्प होगा,

पर हालात तभी बदलेंगे जब तुम में कुछ कर गुजरने का संकल्प होगा"।

जय भारत! जय भारती! जय हिन्दी! जय नागरी!

भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिन्दी महानदी। हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाने वाली भाषा है। हमें इस भाषा को राष्ट्रभाषा के रुप में स्वीकार करना चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि हिन्दी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

– रवीन्द्रनाथ ठाकुर

लो टनल तकनीक : गर्म शुष्क क्षेत्रों में अधिक आय का बेहतर विकल्प

बी. आर. चौधरी, अजय वर्मा, एस. के. माहेश्वरी, एस. एम. हलधर, एम. के. जाटव एवं एस. आर मीना

गर्म शुष्क क्षेत्र देश के लगभग 31.7 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में फैला हुआ है। जिसका सबसे अधिकतर फैलाव पश्चिमी राजस्थान (19.62 मिलियन हेक्टेयर) में है। यह क्षेत्र विस्तार उत्तर–पश्चिमी गुजरात (6.2 मिलियन हेक्टेयर), दक्षिण–पश्चिमी पंजाब (1.45 मिलियन हेक्टेयर), दक्षिण–पश्चिमी हरियाणा (1.28 मिलियन हेक्टेयर), आन्ध्रप्रदेश (2.16 मिलियन हेक्टेयर), कर्नाटक (0.89 मिलियन हेक्टेयर) एवं महाराष्ट्र (0.13 मिलियन हेक्टेयर) में भी है। राजस्थान के गर्म शुष्क क्षेत्रों में तापमान दिसम्बर–जनवरी में कभी–कभी व सेल्सियस व मई–जून में 48° सेल्सियस तक रहता है। साथ ही साथ दिन व रात के तापमान में बहुत अधिक अन्तर रहता है। ग्रीष्मकाल में बहुत तेज, धूल भरी व गर्म हवा वाली आँधी चलती है। वर्षा बहुत कम (100–450 मिलीमीटर) तथा काफी अंतराल के बाद होती है। सिंचाई हेतु भू–जल बहुत गहराई पर है तथा अधिकांश क्षेत्रों में सिंचाई के योग्य नहीं है। इस क्षेत्र की मृदा में बालु की अधिकता है जिसमे पौषक तत्वों की कमी है तथा फसल को पानी की अधिक आवश्यकता होती है।

उपरोक्त जैव–भौतिक बाधाओं के बावजूद राजस्थान के गर्म शुष्क क्षेत्रों (थार रेगिस्तान) में कद्दूवर्गीय सब्जियाँ जैसे ककड़ी, टिंडा, चप्पन कद्दू, खरबूजा, तरबूज, लौकी, तोरई, टिंडा, काचरी, फूट ककड़ी आदि की खेती की जाती है। इन सब्जियों से लगभग सभी प्रकार के पौषक तत्व जैसे प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज लवण प्राप्त होते हैं। ग्रीष्मकाल में इन सब्जियों की बुवाई फरवरी–मार्च माह में की जाती है क्योंकि अंकुरण के लिए वातावरण का तापमान 25–30 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए जो कि फरवरी माह के मध्य तक ही आता है। फरवरी माह में बोई गई इन सब्जियों में फूल अप्रैल माह में आना शुरू होते हैं तथा उस समय वातावरण का तापमान काफी बढ़ जाता है तथा तेज आँधी भी चलने लगती है। मई–जून माह में तापमान बहुत अधिक बढ़ जाता है तथा लू भी चलने लगती है जिससे वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ जाती है परिणामस्वरूप पौधे मुरझाने लगते हैं। उच्च तापमान के कारण इन सब्जियों में नर फूल अधिक बनते हैं तथा परागण में सहायक कीट भी कम हो जाते हैं। फलों का फटना, बेड़ौल आकार के फल बनना, पौधों का मुरझाना, मोजेक बीमारी की अधिकता आदि समस्याएँ आम बात हैं। फलस्वरूप उच्च तापमान से फसल की बढ़वार, उपज तथा गुणवत्ता पर बहुत ही विपरीत प्रभाव पड़ता है। इन सब प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण कद्दूवर्गीय सब्जियों की उपज काफी कम तथा निम्न गुणवत्ता की प्राप्त होती है जिससे उत्पादकों को भरपूर लाभ नहीं मिलता है। परन्तु लो टनल तकनीक को अपनाकर गर्म शुष्क क्षेत्रों में कद्दूवर्गीय सब्जियों की अगेती, बैमौसम खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। यह तकनीक किसानों में काफी लोकप्रिय है तथा इसकी लोकप्रियता दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। इस समय अकेले बीकानेर जिले में ही इस तकनीक से लगभग 2000 हेक्टेयर क्षेत्रफल में कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती की जा रही है।

लो टनल तकनीक क्या है ?

लो टनल तकनीक एक छोटे प्रकार की कम ऊंचाई वाली गुफानुमा संरक्षित संरचना है जिसे मुख्य खेत में फसल की बुवाई के बाद प्रत्येक लाइन के ऊपर कम ऊंचाई पर प्लास्टिक की चादर से ढ़क कर बनाया जाता है। मुख्य रूप से यह एक छोटा ग्रीन हाउस होता है जो कम लागत से आसानी से तैयार किया जा सकता है। प्लास्टिक की चादर से ढ़कने के कारण टनल का तापमान बाहर की तुलना में ज्यादा होता है तथा जिसके कारण अंदर ग्रीनहाउस प्रभाव दिखता है। टनल का निर्माण लोहे के सरियेध बांस तथा पॉलीथिन की शीट से किया जाता है। इन टनल में सब्जियों की बुवाई के बाद ड्रिप पद्धति से सिंचाई की जाती है। यह फसल को कम तापमान से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए बनाई जाती है। गर्म शुष्क क्षेत्रों व उत्तर भारत के मैदानी भागों में सब्जियों की बेमौसम खेती के लिए बहुत उपयोगी है जहाँ सर्दी के मौसम में रात का तापमान लगभग दो माह तक 5व सेल्सियस से भी नीचे रहता है। यह कद्दूवर्गीय सब्जियों के बेमौसम उत्पादन की कम लागत वाली एक किसान हितैषी तकनीक है। यह तकनीक देश के गर्म शुष्क क्षेत्रों में काफी लोकप्रिय है तथा इसका क्षेत्रफल तेजी से बढ़ रहा है। इस तकनीक में एक तरह से टनल (सुरंग) में सब्जियां पैदा की जाती हैं। टनल की मदद से पौधे सर्दियों में कम तापमान व पाले से बच जाते हैं तथा टनल के अन्दर का तापमान बाहरी वातावरण के तापमान से 6–8 व सेल्सियस अधिक होने के कारण

भाकृअनुप.–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)

पौधों की वानस्पतिक वृद्धि होती रहती है। मौसम फसल के अनुकूल होने के बाद टनल को हटा दिया जाता है। इस तरह से किसान लो टनल तकनीक में कद्दूवर्गीय सब्जियों की अगेती या बेमौसम खेती करके अधिक मुनाफा कमा सकते हैं।

लो टनल तकनीक से लाभ

अ. लो टनल तकनीक से अधिक ठंड में भी सब्जियों की पौध सफलतापूर्वक तैयार की जा सकती है। इस विधि से पौध तैयार करने पर बीज का अंकुरण प्रतिशत अधिक होता है।

ब. गर्म शुष्क क्षेत्रों व उत्तर भारत के मैदानी भागों में कद्दूवर्गीय सब्जियों की अगेती, बेमौसम खेती का एक बेहतरीन विकल्प है। सामान्य दशाओं में बोई गई फसल से 40–50 दिन पहले फलों की तुड़ाई शुरू हो जाती है।

स. पौधों का विकास समुचित ढंग से होता है क्योंकि टनल के अन्दर का तापमान अंकुरण एवं पौधों की बढ़वार के लिए अनुकूल होता है।

द. बीज का अंकुरण शीघ्र होने और पौधों की समुचित बढवार से पौध तैयार करने में समय कम लगता है।

क. टनल तकनीक से पौध तैयार कर खेती करने पर कीटों व बीमारियों का प्रकोप भी अपेक्षाकृत कम होता है।

ख. लो टनल तकनीक फसल को ठंड और पाला से बचाने में कारगर है।

ग. इस तकनीक में ड्रिप सिंचाई, उर्वरीकरण एवं प्लास्टिक पलवार का उपयोग करने से खुले खेत की तुलना में फसल की उत्पादकता एवं गुणवत्ता बढ़ जाती है।

घ. इस तकनीक से पानी की बचत, खाद की बचत, खरपतवार का नियंत्रण एवं मिटटी के तापमान का नियंत्रण होता है।

च. इसके उपयोग से हवा का तापमान, प्रकाश की तीव्रता, हवा की आर्द्रता आदि को नियंत्रित किया जा सकता है।

छ अगेती फसल होने के कारण देश के गर्म शुष्क क्षेत्रों में अप्रैल–मई माह के प्रचण्ड तापमान से कद्दूवर्गीय सब्जियों की फसल बच जाती है तथा सामान्य दशा में बोई गई फसल से उत्पादन व गुणवत्ता भी अच्छी होती है।

ज. लो टनल संरचना को बड़ी आसानी से आवश्यकता के अनुसार बनाया तथा हटाया जा सकता है।

झ. यह एक सबसे कम लागत वाली व किसान हितैषी संरक्षित संरचना है।

ट. फसल अगेती प्राप्त होने से किसान का उत्पाद बाजार में अधिक भाव से बिकता है जिससे लाभ ज्यादा मिलता है।

किन सब्जियों का कर सकते हैं उत्पादन?

इस तकनीक की सहायता से कद्दूवर्गीय सब्जियों (ककड़ी, टिंडा, चप्पन कद्दू, खरबूजा, तरबूज, लौकी, तोरई, टिंडा, काचरी, फूट ककड़ी आदि) की अगेती / बेमौसम खेती दिसम्बर माह में बीज की सीधी बुवाई टनल में करके सफलतापूर्वक की जा सकती है। कद्दूवर्गीय सब्जियों के बीज को प्लास्टिक प्रो–ट्रे में दिसम्बर–जनवरी माह में उगाकर अगेती बेमौसम खेती के लिए बीमारी रहित गुणवत्तायुक्त पौध तैयार कर सकते हैं। अधिक सर्दी में टनल के अन्दर प्लास्टिक प्रो–ट्रे में टमाटर, बैंगन, मिर्च इत्यादि की विषाणुरहित, स्वस्थ्य व गुणवत्तायुक्त पौध आसानी से तैयार की जा सकती है।

उन्नत किस्में

लौकी	: थार समृद्धि, पूसा समर प्रोलिफिक लोंग, पूसा नवीन, पूसा संदेश, पूसा समृद्धि
तरबूज	: शुगर बेबी, थार माणक, अर्का मानिक, दुर्गापुरा लाल
खरबूजा	: हरा मधु, दुर्गापुरा मधु, पंजाब सुनहरी, पूसा मधुरस
चप्पन कद्दू	: आस्ट्रेलियन ग्रीन, पूसा अलंकार
कुम्हड़ा	: पूसा विकास, पूसा विश्वास
धारीदार तोरई	: थार करणी, पूसा नसदार
चिकनी तोरई	: पूसा चिकनी, पूसा सुप्रिया, पूसा स्नेहा
करेला	: पूसा विशेष, पूसा दो मौसमी, पूसा हाइब्रिड–2
तरककड़ी	: थार शीतल
फूट ककड़ी	: ए एच एस–10, ए एच एस–82
काचरी	: ए एच के–119, ए एच के–200

कैसे करें लो टनल तकनीक से कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती?

कद्दूवर्गीय सब्जियाँ गर्म जलवायु की फसलें हैं जिनमे ठंड तथा पाला सहन करने की क्षमता नहीं होती है। बीज के अंकुरण व पौधों की बढ़वार के लिए 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। मौसम तथा क्षेत्रीय

परिस्थितियों के आधार पर कद्दूवर्गीय सब्जियों की अगेती खेती के लिए निम्न सुरंग (लो टनल) तकनीक तथा दियारा विधि के रूपान्तरण से एक नई तकनीक अपनाई गई जो गर्म शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। लो टनल तकनीक उत्तर भारत के मैदानी भागों में कद्दूवर्गीय सब्जियों की बेमौसम खेती के लिए बहुत उपयोगी है जहाँ सर्दी के मौसम में रात का तापमान लगभग 40 से 60 दिनों तक 8 डिग्री सेल्सियस से नीचे रहता है। इस तकनीक में दिसम्बर माह के अन्तिम सप्ताह से लेकर जनवरी माह के प्रथम सप्ताह में बीजों की बुवाई ड्रिप युक्त नाली (ट्रेंच) में करके इसको प्लास्टिक की चादर से ढ़क देते हैं जिससे कद्दूवर्गीय सब्जियों को उनके सामान्य समय से पहले उगाना संभव है। इस तकनीक से फसल निम्न तापमान व पाले से सुरक्षित रहती है तथा सामान्य दशाओं में बोई गई फसल से 40—50 दिन पहले तैयार हो जाती है जिससे किसान को बाजार भाव भी अधिक मिलता है।

दिसम्बर माह में खेत में फसल के अनुसार 2.0 मीटर की दूरी पर 45 सेमी चौड़ी तथा 45—60 सेमी गहरी नालियाँ पूर्व से पश्चिम दिशा में बनाते हैं। इन नालियों में सड़ी—गली गोबर की खाद (150 कुंटल / हेक्टेयर) तथा नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश क्रमशः 20, 60 व 60 किग्रा / हेक्टेयर डालनी चाहिए। बुआई के 20 एवं 40 दिन बाद नत्रजन की 20—20 किग्रा मात्रा को टॉप ड्रेसिंग के रूप में जड़ के पास देना चाहिए। पानी में घुलनशील 19:19:19 एन.पी.के. 10—15 किग्रा/हेक्टेयर को फसल की वानस्पतिक बढ़वार के समय ड्रिप द्वारा सिंचाई के साथ देना चाहिए। नत्रजन की अधिक मात्रा देने से बचना चाहिए अन्यथा पौधों की वानस्पतिक बढवार अधिक होगी तथा नर फूल अधिक संख्या में आएँगे परिणामस्वरूप फलत कम होगी। सिंचाई के लिए 4 लीटर/घण्टा पानी डिस्चार्ज वाले ड्रिपर की 12—16 मिमी आकार की ड्रिप पाईप (लैटरल) जिन पर 60—80 सेमी की दूरी पर इनलाइन ड्रिपर लगे हो, को नालियों में बिछा देना चाहिए।

बुवाई करने से पूर्व बीजों का अंकुरण कराना आवश्यक है क्योंकि दिसम्बर—जनवरी माह में निम्न तापमान के कारण इनका अंकुरण देर से होता है। अतः अंकुरण के लिए बीजों को पानी में भिगोना चाहिए। पानी में भिगोने की अवधि बीज के छिलके की मोटाई पर निर्भर करती है जो कि 3—4 घण्टा (खरबूजा, खीरा, ककड़ी), 6—8 घण्टा (लौकी, तोरई) तथा 10—12 घण्टा (टिंडा, तरबूज) रखनी चाहिए। भिगोने के बाद बीज को केप्टान या थीरम (2 ग्राम/किग्रा बीज) से उपचारित करना चाहिए। बीज उपचार के बाद उन्हें बोरे के टुकड़े में लपेटकर किसी गर्म स्थान जैसे बिना सड़ी हुई गोबर की खाद या भूसा में 1—2 दिन तक दबाने से बीजों का अंकुरण शीघ्र हो जाता है। इन अंकुरित बीजों की बुवाई तैयार नालियों में दिसम्बर के अंतिम सप्ताह से जनवरी के प्रथम सप्ताह तक कर देनी चाहिए। एक ड्रिपर के पास कम से कम 2 बीजों की बुवाई करते हैं। नाली (ट्रेंच) के ऊपर अर्ध चंद्राकार जंगरोधी लोहे के तारों (2 मिमी मोटाई) को 3—4 मीटर की दूरी पर स्थापित करते हैं। इन तारों पर 30—50 माईक्रोन मोटी तथा 2 मीटर चौड़ी पारदर्शी प्लास्टिक की चादर बिछाकर इसकी लम्बाई वाले दोनो सिरों को मिट्टी से दबा दिया जाता है। इस प्रकार बोई गई फसल पर प्लास्टिक की एक लघु सुरंग बन जाती है। प्लास्टिक से ढकने से नाली के अंदर का तापमान सामान्य से 6—8 डिग्री सेल्सियस अधिक बना रहता है जिससे बीजों का अंकुरण जल्दी हो जाता है तथा पौधों का विकास भी सुचारु रूप से होता रहता है। समय—समय पर प्लास्टिक को हटाकर फसल का निरीक्षण भी करते रहना चाहिए तथा कीट व बीमारी का प्रकोप होने पर उनका समुचित नियंत्रण भी करना चाहिए। इस विधि से बुआई करने पर फूल बनते समय वातावरण का तापमान बहुत अनुकूल रहता है जिससे मादा फूल अधिक आते हैं तथा उस समय परागण करने वाले कीट भी अधिक होने से फसल अच्छी होती है।

टनल बनाने के लिए तार व फालसा की टहनियाँ

बुवाई के लिए ड्रिप लगी हुई तैयार नालियाँ

बुवाई के बाद लो टनल का प्रतिस्थापन

पौधों का कठोरीकरण कैसे करें ?

फरवरी के दूसरे या तीसरे सप्ताह में जब मौसम का तापमान बढ़ जाता है तथा कद्दूवर्गीय सब्जियों की बढ़वार के अनुकूल हो जाता है तो प्लास्टिक की टनल को हटाकर खरपतवारों को निकाल देना चाहिए। इस समय तक कद्दूवर्गीय सब्जियों में फूल आना भी प्रारम्भ हो जाते हैं। प्लास्टिक की टनल को कभी भी एकदम नहीं हटाना चाहिए। ऐसा करने से पौधों को धक्का लगता है तथा वे मुरझा जाते हैं। इससे उनकी वानस्पतिक वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कुछ पौधे मर भी जाते हैं। अतः सबसे पहले टनल के दोनों छोर से प्लास्टिक को हटा देना चाहिए। इसके 2–3 दिन बाद प्लास्टिक को दिन में हटा देना चाहिए। शाम के समय पौधों को वापस प्लास्टिक से ढक देना चाहिए। जिससे पौधों का धूप के सम्पर्क में आने से उनका कठोरीकरण होता है। यह प्रक्रिया 2–3 दिन तक करने से पौधों का कठोरीकरण हो जाता है तथा पौधे मौसम के अनुकूल ढल जाते हैं। ऐसा करने से खेत में पौधों की मृत्यु दर नहीं के बराबर होती है। इस प्रकार इस तकनीक से बोई गई फसल, सामान्य दशा में बोई फसल से 40–50 दिन अगेती प्राप्त होती है जिससे गुणवत्तायुक्त उपज मिलती है तथा अगेती होने के कारण बाजार में इन सब्जियों का मूल्य भी अधिक प्राप्त होता है।

निराई व पौधों का कठोरीकरण

फसल को उच्च तापमान से कैसे बचाएं?

पौधों की वानस्पतिक वृद्धि के दौरान कतारों के बीच सरकंडा बिछा देना चाहिए जिससे पौधों का गर्म मिट्टी से बचाव होने के कारण बढ़वार अच्छी होती है तथा फल भी सीधे जमीन के संपर्क में नहीं आने से कई बीमारियों से बच जाते हैं। वानस्पतिक वृद्धि के समय पौधों को दिशा देनी चाहिए ताकि उनके तन्तु सरकंडा को पकड़कर चारों तरफ सुचारु तरीके से फैल जावे। सरकंडा बिछाने से पौधे जमीन पर उचित तरीके से फैलते हैं जिससे लगभग सभी मादा फूलों में परागण हो जाता है। बेलें तेज आंधी से एकट्ठा होने से भी बच जाती हैं जिससे फूल नहीं झड़ते हैं तथा उपज में वृद्धि होती है।

सरकंडा बिछाने के बाद लहलाती फसल

भरपूर उत्पादन हेतु पर–परागण की उचित व्यवस्था कैसे करें ?

सभी कद्दूवर्गीय सब्जियाँ पर–परागित होने के कारण इनमे परागण की क्रिया मधुमक्खियों से संपादित

होती है। प्रभावी परागण के लिए मधुमक्खियों के लगभग 2–3 भ्रमण प्रति फूल की आवश्यकता होती है। गर्म शुष्क क्षेत्रों में अप्रैल–मई माह में तापमान 40 डिग्री सेल्सियस से अधिक होने के कारण मधुमक्खियों का भ्रमण कम हो जाता है जिससे फल कम बनते हैं। अतः उचित परागण के लिए खेत में प्रति एकड़ 1–2 मधुमक्खी के छत्ते रखना चाहिए। मधुमक्खियों की सुरक्षा को ध्यान में रखना चाहिए तथा फसल की सुरक्षा से संबंधित रसायनों का छिड़काव मधुमक्खियों के खेत में भ्रमण के समय नहीं करना चाहिए।

तर ककड़ी (उपज 170–200 कुंटल / हेक्टेयर)

लौकी (उपज 300–350 कुंटल / हेक्टेयर)

तरबूज (उपज 280–300 कुंटल / हेक्टेयर)

लो टनल तकनीक से उत्पादित भरपूर व अगेती उपज

लो टनल तकनीक से बोई गई ककड़ी, लौकी, तोरई, खीरा, चप्पन कद्दू आदि की तुड़ाई मार्च माह के प्रथम सप्ताह से ही शुरू जाती है। तरबूज व खरबूजा की तुड़ाई मार्च माह के अन्त से प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार गर्म शुष्क क्षेत्रों में लो टनल तकनीक से कद्दूवर्गीय सब्जियों की खेती करने से इनका उत्पादन सामान्य दशा में बोई गई फसल से 40–50 दिन अगेता प्राप्त होता है। उत्पादन अधिक तथा उच्च गुणवत्ता का प्राप्त होता है। उत्पाद अगेता तथा उच्च गुणवत्ता का होने के कारण बाजार में इसका भाव भी अधिक मिलने से किसानों को अधिक लाभ मिलता है। इस तकनीक से कद्दू वर्गीय सब्जियों की खेती करने से लागतःलाभ अनुपात 1:2.05 से 1:3.35 तक प्राप्त किया जा सकता है।

किसानों के खेत में लो टनल तकनीकी का विहंगम दृश्य

लागत कम कैसे करें?

1. प्लास्टिक को हटाने के बाद इसको ठीक से समेट कर रखना चाहिए तथा अगले वर्ष पुनः उपयोग में लेना चाहिए।
2. फसल समाप्त होने पर सरकंडा को भी एकत्र करके रखें व अगले वर्ष पुनः उपयोग में लेना चाहिए।
3. यदि उपलब्ध हो तो अर्ध चंद्राकार जंगरोधी लोहे के तारों की बजाय बांस या फालसा (प्रूनिंग से प्राप्त टहनियाँ) भी काम में ले सकते हैं।
4. एकीकृत कीट/बीमारी प्रबन्धन के उपाय अपनाना चाहिए तथा रसायनों का छिड़काव आवश्यकतानुसार व संस्तुतित मात्रा में ही करना चाहिए।

फसल सुरक्षा

प्रमुख कीट

फल मक्खी : इसका प्रकोप फरवरी से लेकर नवम्बर तक होता है। मादा फल मक्खी अपने अंडरोपक को कोमल फलों के अंदर धँसाकर गूदे मे अण्डे देती है। ग्रसित फल के छेद से लसदार हल्के भुरे रंग का द्रव निकलता है। अण्डे से मैगट निकलकर फल के गूदे को खा जाते हैं तथा फल सड़ जाता है।

कद्दू का लाल कीड़ा : इसके भृंग (व्यस्क) पत्तियों एवं फूलों को नुकसान पहुंचाते हैं तथा ग्रब पौधे की जड़ों को खाते हैं। जो फल जमीन पर रखे होते हैं उनके निचले भाग में छिद्र करके ग्रब काफी संख्या में फल में प्रवेश कर जाते है तथा अंदर से खोखला कर देते है।

हाडा बीटल : इस कीट के व्यस्क एवं ग्रब दोनों ही पौधे को नुकसान पहुंचाते हैं। यह एक विशेष तरीके से पत्तियों एवं फलों को कुरेदता है जिससे धीरे–धीरे पत्तियाँ एवं फल सूख जाते हैं।

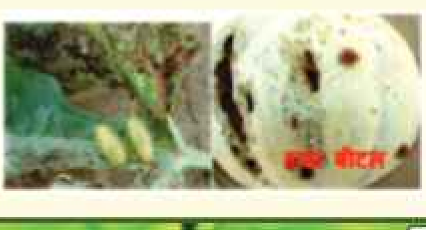

पत्ती भेदक सुंडी : इस कीट की सुंडी ही पौधे की पत्तियों को नुकसान करती है। अंडे से निकलने के बाद सुंडी रेशमी धागे के साथ पत्तियों को रोल करती है और सिराओं के बीच से पत्ती को खाती है। नुकसान किये हुये फल बाद में सड़ने लगते है।

लीफ माइनर : इसका मेगट पत्तियों के ऊपरी भाग पर भूरे रंग की टेढ़ी–मेढ़ी सुरंग बना देता है, जिससे पत्ते मुड़ जाते हैं एवं प्रकाश संश्लेषण कम हो जाता है।

चेपा : ये छोटे आकार के काले एवं हरे रंग के होते हैं तथा कोमल पत्तियों, पुष्पएकलिकों का रस चूसते हैं। यह कीट विषाणु जनित बीमारियों के वाहक का कार्य करता है।

एकीकृत कीट प्रबन्धन

सब्जियों में आईपीएम का महत्व और बढ़ जाता है क्योंकि सब्जियाँ मनुष्य द्वारा ताजा अवस्था में खाई जाती है। इसलिए सब्जियों में एकीकृत कीट प्रबन्धन अपनाना चाहिए।

1. कीटों के एकीकृत प्रबंधन में सबसे प्रभावी तरीका खेत की सफाई करना होता है। फल मक्खी, चितकबरी सुंडी, लाल कद्दू बीटल, हाडा बीटल आदि के प्रजनन चक्र और जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिये गर्मी के दिनों में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिये। पौधों और फलों के क्षतिग्रस्त भागों को हटा कर नष्ट कर देना चाहिए।
2. क्यू–आकर्षण ट्रैप फल मक्खी के प्रबंधन मे प्रभावशाली है। क्यू–आकर्षण ट्रैप नर को आकर्षित करती है और इसके अंदर कीटनाशक रखा जाता है जिसके द्वारा नर मर जाता है और मादा को संभोग करने के लिये नर नहीं मिलता है। फल मक्खी को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न प्रकार के क्यू–लुर जैसे फलाईसीड ® 20 प्रतिशत, ऊगेलुर ® 8 प्रतिशत, क्यू–लुर 85

7-8 क्यू-आर्कषण ट्रैप/हे.

प्रतिशत+नैल्ड, क्यू–लुर 85 प्रतिशत+डाय्जिनोन, क्यू–लुर 95 प्रतिशत+नैल्ड आदि बाजार मे उपलब्ध हैं। एक लीटर पानी में 250 ग्राम गुड़ तथा 4–5 मिली मैलाथियान 50 ई सी मिलाकर इसको छोटे–छोटे बर्तनों में भरकर एक हेक्टर क्षेत्र में 8–10 जगह रखना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार उपरोक्त घोल से भरते रहने से भी फल मक्खी का नियंत्रण किया जा सकता है। खेत में रात के समय प्रकाश के ट्रेप लगायें तथा उनके नीचे किसी बर्तन में चिपकने वाला पदार्थ जैसे गुड़ का घोल भरकर रखें व इस घोल को 2–3 दिन बाद बदलते रहें।

3. कीटनाशकों का प्रयोग आवश्यकतानुसार, सावधानी से और आर्थिक नुकसान का स्तर (ईटीएल) के मुताबिक करना चाहिए। कददूवर्गीय सब्जियों के लिए निम्नलिखित कीटनाशकों का छिड़काव किया जा सकता है।

प्रमुख कीट	कीटनाशक तथा प्रति लीटर पानी मे कीटनाशक की मात्रा
फल मक्खी, कद्दू का लाल कीड़ा, पत्ती भेदक सुंडी, हाडा बीटल	डाइमेथोएट 30 ई सी या मैलाथियान 50 ई सी (1.5–2.0 मिली) या स्पाईनोसेड 45 एस सी (0.5–0.7 मिली)
चेपा, सफेद मक्खी, लीफ माइनर	इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस एल या थायोमिथोक्जाम 70 ड्ब्लू एस (0.3–0.5 मिली)

कददूवर्गीय सब्जियाँ जैसे ककड़ी, खीरा, तोरई, लौकी, करेला, टिंडा आदि जिंका उपयोग कच्ची अवस्था में किया जाता है उनमें कीटनाशकों का छिड़काव फलों की तुड़ाई के बाद करना चाहिए।

प्रमुख बीमारियां एवं उनका प्रबंधन

कद्दूवर्गीय सब्जियों में कई बीमारियां लगती हैं जिनके लक्षण व सप्रबंधन निम्न प्रकार है

बीमारियां	लक्षण	प्रबंधन
फफूंद जनित		
मृदुरोमिल आसिता	पत्ती की ऊपरी सतह पर हल्के पीले कोणीय धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में इन धब्बों के ठीक निचली सतह पर मृदुरोमिल फफूंद बैंगनी रंग की दिखाई देती है।	1.बीज को केप्टान या थीरम (2 ग्राम / किग्रा बीज) से उपचारित करके बोना चाहिए। 2.खड़ी फसल पर क्लोरोथेलोनिल (2 ग्राम / लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।
चुर्णिल आसिता 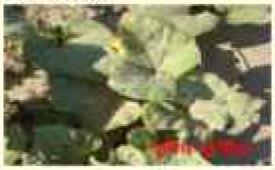	पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद या धुंधले धूसर, गोल व छोटे धब्बे बनते हैं जो बाद में पूरी पत्ती पर फैलकर सफेद चूर्ण की तरह ऊपरी सतह को ढक लेते हैं। तीव्र संक्रमण होने पर पत्तियाँ गिर जाती हैं।	रोग की प्रारम्भिक अवस्था पर कैराथेन (1–2 ग्राम / लीटर पानी) या एजोक्सीस्ट्रोबिन (1.0 मिली / लीटर पानी) का छि ड़काव करना चाहिए।
फल विगलन	इस रोग से ग्रसित फलों पर गहरे नीले रंग के धब्बे बन कर फल सड़ने लगते हैं तथा उनमें दुर्गंध आने लगती है।	1.फलों के नीचे घासफूस बिछाकर उनको मिट्टी की सतह के सम्पर्क से बचाना चाहिए या बेलों को सहारा देना चाहिए। 2.बुवाई से पहले बीज का उपचार ट्राईकोड्रमा (4–5 ग्राम / किग्रा बीज) अथवा थीरम (2 ग्राम / किग्रा बीज) से करना चाहिए। 3.खड़ी फसल मे बाविस्टीन (2.5 ग्राम / लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

श्यामवर्ण (एन्थ्रेक्नोज)	आरम्भ में पत्तियों पर पीले, गोल जलयुक्त धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे आपस में मिलकर बड़े व भूरे हो जाते हैं। रोग ग्रसित पत्तियाँ सूख जाती है। फलों पर धब्बे गोलाकार जलयुक्त व हल्के रंग के होते हैं।	1.बीज को थीरम या केप्टान (2ग्राम/किग्रा बीज) से उपचारित करके बोने चाहिए। 2.मैन्कोजेब या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2–2 .5 ग्राम/ लीटर पानी) का छिड़काव 7 दिन के अंतराल पर 2 बार करना चाहिए।
अल्टरनेरिया पत्ती झुलसा	पत्ती पर केन्द्रीय कृत गोल आकार के हल्के भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में गहरे रंग के व आकार में बड़े हो जाते हैं। पौधे की पत्तियाँ झुलसी हुई दिखाई देती है।	फसल पर इंडोफिल एम–45 (2 ग्राम/लीटर पानी) का 10–15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।
उकठा रोग (विल्ट)	पौधों का ऊपरी भाग किसी भी अवस्था पर मुरझा कर सूख जाता है। पत्तियाँ पीली हो जाती है। कॉलर वाला क्षेत्र सिकुड़ जाने से पौधा मर जाता है। पौधों की जड़ें व भीतरी भाग भूरा हो जाता है।	1.बुवाई से पहले बीज को बाविस्टीन (1–2 ग्राम/किग्रा बीज) से उपचारित करें। 2.खड़ी फसल मे बाविस्टीन की 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से ड्रेन्चिंग करना चाहिए।
विषाणु जनित		
मौजेक	पौधे छोटे व विकृत हो जाते हैं तथा उनकी वृद्धि रुक जाती है। पत्तियाँ सिकुड़ जाती है तथा इन पर एक पीला मौजेक या मोटिल क्रम दिखाई देता है जिसमें क्लोरोटिक धब्बे दिखते हैं। कुछ पुष्प, गुच्छों में परिवर्तित हो जाते हैं। फल छोटे व विकृत हो जाते हैं।	1.रोग रोधी किस्मों की बुवाई करनी चाहिए। 2.बीज को थीरम या केप्टान (2 ग्राम/किग्रा बीज) से उपचारित करके बोना चाहिए। 3. इमिडाक्लोप्रिड (0 .3–0.5 मिली /लीटर पानी) का खड़ी फसल पर 10 दिन के अंतराल पर 2–3 बार छिड़काव करें, जिससे रोग वाहक कीट नष्ट हो जाते हैं।
कलिका परिगलन (बड नेक्रोसिस)	रोग ग्रसित तने छोटे रह जाते हैं। कली में गलन हो जाती है तथा बाद में कलिका तथा कलिका वाली पूरी शाखा सूख जाती है। पत्तियाँ सिकुड़ कर पीली पड़ जाती है। तरबूज की फसल इस बीमारी से काफी प्रभावित होती है।	1.थीरम या केप्टान (2 ग्राम/किग्रा बीज) से बीज को उपचारित करके बोना चाहिए। 2.इस बीमारी के वाहक कीट को नियंत्रित करने के लिए इमिडाक्लोप्रिड (0.3–0.5 मिली /लीटर पानी) का खड़ी फसल पर 10 दिन के अंतराल पर 2–3 बार छिड़काव करना चाहिए।

थार वैभव : नींबू की एक नई किस्म

डी एस मिश्रा', संजय सिंह, विकास यादव और बी डी शर्मा

नींबू की उपयोगिता और औषधीय गुणों एवं पश्चिमी भारत में वर्षा आधारित गर्म अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में इसकी सहनसीलता को देखते हुए इस किस्म का चयन, केंद्र पर संरक्षित विभिन्न जनंद्रव्यों के मूल्यांकन के बाद चयन विधि से विकसित की गयी। मूल्यांकन के दौरान ऐसा देखा गया कि थार वैभव प्रजाति का विकास एवं फलन अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में उत्तम है। यह सूखा प्रतिरोधी है, फैलने वाली वृद्धि,कम कांटेदार, गुच्छों में फलन, गर्मी के महीनों (अप्रैल–मई) में जल्दी परिपक्वता, मध्यम मोटा छिलका, कम बीज, उच्च अम्लता के साथ अत्यधिक रसदार और फलों के रस में अधिक एस्कॉर्बिक एसिड होने के साथ ही साथ, फल गोल आकार के एवं हल्के हरे रस के पुटिकाओं और फल आकर्षक पीले रंग के तथा छिलका चिकना होता है। यह साइट्रस कैंकर और लीफ माइनर से तुलनात्मक रूप से कम प्रभावित होता है और यह गर्मी के महीनों के दौरान जीवन रक्षक सिंचाई के साथ वर्षा आधारित शुष्क भूमि की स्थिति में बढ़ने के लिए अत्यधिक उपयुक्त है। पश्चिमी भारतीय मैदानी इलाकों में किसानों द्वारा इस किस्म को अत्यधिक स्वीकार किया जाएगा क्योंकि इसके फल बड़े आकार के होते हैं और बहुतायत गुच्छों में फलन, अधिक अम्म्लीय एवं रसीले होते हैं और साइट्रस कैंकर और लीफ माइनर का संक्रमण नगण्य है।

नींबू वर्गीय फलों में कागजी नींबू अपने सुस्वाद और औषधीय गुणों के कारण सबसे अधिक लोकप्रिय है। मुख्यतया इसका उत्पादन गुजरात, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं बिहार में किया जा रहा है। इसकी खेती लगभग 2.9 लाख है. क्षेत्रफल की जा रही है, जिससे लगभग 31.5 लाख टन उत्पादन प्रति वर्ष मिलता है। यहाँ यह बताना उचित होगा कि गुजरात नींबू उत्पादक राज्यों में अग्रणी है। नींबू वर्गीय फलों में कागजी नींबू अपने उपयोगित्ता और औषधीय गुणों के कारण सबसे अधिक लोकप्रिय फल है। इसकी उपयोगिता और मुख्यतया औषधीय गुणों एवं घरेलू बाजार में मांग को ध्यान में रखते हुए इस केंद्र ने गुजरात तथा इससे लगे हुए राज्यो का गहन सर्वेक्षण करके 34 जनन्द्रव्यो को केंद्र के फील्ड जीन बैंक में स्थापित कर उसका मुल्यांकन किया गया। जिसमें से चयन पद्धति से थार वैभव प्रजाति विकसित की गयी। इस किस्म की फलन गुच्छेदार एवं अधिक उत्पादन देनी वाली है। इसके फल आकर्षक पीले रंग के चिकने छिलके वाले गोल होते हैं। फल रसदार (49%), अम्लीय (6.84%) तथा फलों में बीज की संख्या कम (6–8) होती है। यह रोपण के तीसरे वर्ष के दौरान फूलने और फलने लगता है। औसतन, इसमें 3–9 फल/गुच्छे होते हैं और देश के नींबू उत्पादकों द्वारा ऐसी किस्मों की बहुत मांग है, इसलिए इसे उत्पादकों की जरूरतों को पूरा करने के लिए इस किस्म का विकास किया गया।

थार वैभव के विशेष गुण

इस किस्म मे नियमित शाखाओं के साथ फैलने वाली वृद्धि होती है तथा टहनियों पर काँटे कम पाये जाते हैं। इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की, अण्डाकार, पत्ती का डंठल पंखों वाले और पत्ती का शीर्ष कुंद होता है। पांच वर्ष के पेड़ की ऊंचाई (5.98), तना घेरा (12.16 सेमी), पौधे का फैलाव (4.31 x 4.46 मीटर) व वार्षिक वृद्धि विस्तार (70–75 सेमी)। जबकि पत्ती ब्लेड का आकार (8.22 x 4.45 सेमी), पेटियोल विंग की लंबाई (1.43 सेमी), काँटे की लंबाई (4.0 सेमी) पायी गई। पेटिओल ओरिएंटेशन और पेटिओल विंग की चौड़ाई क्रमशः सीधी और मध्यम पाई गई। पुष्पक्रम अक्षीय लघु रेसमोस, 4–10 छोटे फूल (16.35 x 6.47 मिमी), सफेद रंग के होते हैं। लिंगानुपात (स्टैमिनेट/ हेर्मैफ्रोडाइट) 1/2.62 और पंखुड़ियाँ 5 की संख्या में होती हैं। इस किस्म मे रोपण के तीसरे वर्ष के दौरान फूल आना शुरू हो जाता है। हालांकि, इसमें फूल आना और फल लगना पूरे वर्ष जारी रहता है, हालांकि फूलों के आने का मुख्य समय जनवरी–मार्च, जून–जुलाई और अक्टूबर–नवंबर है। सामन्यतौर पर इसमें फल गुच्छों में आते हैं एवं उनका आकार गोल और बड़ा होता है।

पश्चिमी भारत में वर्षा आधारित गर्म अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में इस प्रजाति में रोपण के छठे वर्ष के दौरान प्रति वृक्ष प्रति वर्ष फलों की औसत संख्या 1425 (1300–1500) और औसत उपज 60.15 किग्रा. (55–65 किग्रा.) प्रति पौधा प्रति वर्ष प्रप्त होती है। इसके फलों का औसत वजन 42.57 ग्राम होता हैय फल का आकार 42.71

केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केंद्र (आईसीएआर–के. शु. बा. सं.), वेजलपुर, पंचमहल (गोधरा), गुजरात

मिमी x 42.82 मिमी, फल अक्ष ठोस, फाँक की संख्या 11, छिलके की मोटा 1.59 मिमी और फलों में बीज की संख्या कम (6–8) होती है। फलों के रस में अम्ल 6.84%, टी.एस.एस. 7.340 ब्रिक्स और एस्कॉर्बिक एसिड 43.45 मिग्रा/100 मिली होता है। ज्यादातर इसमें फल 3–9 गुच्छों में आते हैं, फलो का उनका आकार गोल, पकने पर पीले रंग के, चिकने और मध्यम मोटे छिलके वाले होते हैं। फल जुलाई–अगस्त, दिसंबर–जनवरी और अप्रैल–मई के दौरान तुडाई के लिए तैयार होते हैं। फल गर्मियों में 125–135 दिनों में पकते हैं जबकि बरसात और सर्दियों के मौसम में 145–155 दिन लग सकते हैं। इसे कमरे के तापमान पर 8–9 दिनों तक स्टोर किया जा सकता है।

थार वैभव मातृ प्रखण्ड

भूमि एवं जलवायु

नीबू की बागवानी हेतु मृदा का चुनाव सावधानी पूर्वक करनी चाहिए। इनको ऐसी किसी भी मृदा में उगाया जा सकता है, जिसका जल निकास अच्छा होने के साथ–साथ ही उसमें वायु संचार की उचित मात्रा हो तथा जडों को उचित गहराई तक जाने में कोई अवरोध उत्पन्न न करें। इसके साथ ही साथ पूरे वर्ष भर आन्तरिक जलस्तर 1.5 मी. के बीच बने रहने से नीबू के वृक्ष अधिक वृद्धि करते हैं, अन्यथा आन्तरिक जलस्तर अधिक ऊपर आ जाने से जड़ सड़न जैसी बीमारी की गंभीर समस्या उत्पन्न हो जाती हैं तथा पौधे सूखने लगते हैं। नीबू का उत्पादन 6.50 से 7.50 पी. एच. तक की भूमियों में इसकी खेती की जा सकती है।

आम तौर पर, 500–750 मिमी वार्षिक वर्षा पश्चिमी भारत की बारानी परिस्थितियों में फसल को संतोषजनक ढंग से उगाने के लिए पर्याप्त होती है क्योंकि उच्च और केंद्रित वर्षा से काली कपास मिट्टी में जड़ क्षेत्र में अवायवीय स्थिति उत्पन्न होती है जिससे नीबू की जड़ सड़ने लगती है। 13–37 डिग्री सेल्सियस तापमान इसकी वानस्पतिक विकास और पुष्पन के लिए उपयुक्त है। सामन्यतौर पर शुष्क जलवायु नीबू की टिकाऊ एवं अधिक उत्पादन के लिये उचित पाया गया है। इस प्रकार वे क्षेत्र जहां औसत आर्द्रता, तापमान और पाला, तेज हवा और अत्यधिक वर्षा से मुक्त हैं, नीबू के उत्पादन के लिए अनुकूल है।

प्रवर्धन

व्यवसायिक स्तर पर नीबू का प्रसारण गूटी व बीज के द्वारा करना चाहिए। मुख्य रूप से इसे बीज के माध्यम से प्रवर्धित किया जाना चाहिए क्योंकि इसमें उच्च बहु भरूण होते हैं (40–60%) इसी कारण बीजो से मातृ पौधों की तरह ही पौधे पैदा करते हैं, बीज द्वारा तैयार किये गये पौधे में फलन केवल 2–3 साल आ जाती है और ऐसे पौधे विपरित परिस्थितियों के प्रति अधिक सहिष्णु, दीर्घजीवी एवं विषाणु जनित रोगों से मुक्त होते हैं। बीज प्रवर्धन के लिए, ताजे कटे फलों से जुलाई–अगस्त के दौरान बीज एकत्र किए जा सकते हैं। बुवाई से पहले, बीज को कवक जनित बिमारियो से बचाने के लिए कवकनाशी (0.20% मैनकोजेब कार्बेन्डाजाइम) से उपचारित किया जाता है। बीज सितंबर–अक्टूबर में बोए जाते हैं और इसके 6 से 8 महीने बाद पौधे रोपाई रोपाई के लिए तैयार हो जाएगी।

गूटी तैयार करने की बिधि

मानसून की शुरुआत के बाद (जुलाई–अगस्त) गूटी तैयार करने के लिए पेन्सिल सी मोटाई वाली स्वस्थ शाखा चुननी चाहिए। शाखा पर कलिका से 1 सेमी. नीचे की ओर शाखाओं को 3 सेमी. लम्बा छिलका गोलाई से निकाल देते हैं। छिले हुए भाग पर वृद्धि हारमोन्स जैसे ई. बि. ए. और एन ए. ए. मे से किसी एक का प्रयोग, 1000 पी. पी. एम की दर से पानी में घोल बनाकर, मॉस घास को इस घोल मे भिगोकर अथवा लेनोलिन में वृद्धि नियामक का उपरोक्त दर पर से पेस्ट बनाकर लगाते हैं। इसके उपर मॅास घास को पानी में भिगाकर एवं हाथ से निचोड़कर 20 वर्ग सेमी. आकार के पोलीथीन के टुकड़े को लपेट कर दोनो सिरों को सुतली से अच्छी प्रकार से कसकर बाँध देते हैं। जिससे हवा व पानी प्रवेष न करे नही तो गूटीयों मे जड़े विकसित नही होगी व गूटी सूख जाएगी। बाँधने के 40–45 दिन बाद जड़े दिखाई देने पर इन गूटीयों को सावधानी से गूटी बॅंधे स्थान के नीचे से 1–2 सेमी. छोड़कर तेज स्केटियर की सहायता से काटना चाहिए। गूटी को काटने के बाद इनकी कुछ पत्तियों को काटकर, सावधानी से पोलीथीन की थैली में लगाकर छायादार स्थान पर रखें एवं समय–समय पर सिचाई करते रहे और इसके 6 से 9 महीने बाद रोपाई के लिए पौधे तैयार हो जाएगी।

गड्ढे की तैयारी एवं पौध रोपणः

नीबू की इस प्रजाति की रोपायी 5 मीटर की दूरी पर मृदा उर्वरकता के अनुसार करनी चाहिए। रोपण हेतु जुलाई–अगस्त माह अच्छा पाया गया है। पौधे लगाने के

लीये मई महीनो मे 5 मीटर के अंतराल पर 75 से 100 घन सें.मी. के गड्ढे तैयार कर लेते है। यदि जमीन में कंकड की तह हो तो उसे निकाल देना चाहिए। इन गड्ढों को 20–30 दिनों तक खुला छोड कर 4–5 टोकरी खाद में ट्राइकोडर्मा युक्त गोबर की सडी खाद (30–40 किग्रा.), 150 ग्राम एसएसपी और 150 ग्राम नीम केक के साथ गड्ढे की ऊपरी आधी मिट्टी को मिलाना चाहिए। पश्चिमी भारत में बारानी परिस्थितियों में नीबू की रोपायी का सर्वोत्तम समय जुलाई–अगस्त है।

शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई की समुचित व्यवस्था न हो वहाँ स्वस्थाने बाग स्थापन विधि को अपनाना चाहिये और रंगपुर लाइम के पौधे जुलाई–अगस्त मे लगाने चाहिये जिससे की पौधे बारिश के मौसम में ही आसानी से विकास करना प्रारंभ कर दे और अगले साल बारिश के मौसम में टी कलिकायन के द्वरा नयी बाग स्थपित की जा सके।

खाद एवं उर्वरक का प्रयोग

पौधों की अच्छी बढवार, अधिक फलन एवं पेड़ों को स्वस्थ रखने के लिये प्रत्येक पौधे में 10 कि.ग्रा. गोबर की सडी खाद, 200 ग्रा. नत्रजन, 150 ग्रा. फास्फोरस एवं 100 ग्रा. पोटास की मात्रा प्रति वर्ष डालनी चाहिए। खाद एवं उर्वरक की यह मात्रा पांच वर्ष तक गुणित अनुपात में बढाते रहना चाहिए। इस प्रकार 5 वर्ष या उससे अधिक आयु वाले वृक्ष को 1000 ग्रा. नत्रजन, 750 ग्रा. फास्फोरस और 500 ग्रा. पोटाश के अतिरिक्त 50 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद डालना उत्तम होता है। चूनायुक्त भूमि में लगाये गये पौधों में प्रायः लोहे की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। अतः ऐसे पेड़ों में फेरस सल्फेट प्रति वर्ष जून–जुलाई और जनवरी–फरवरी माह में छिडकाव करना चाहिये। शुष्क क्षेत्रों में गोबर की सडी खाद की पूरी मात्रा साल में एक बार मानसून (जुलाई) की शुरुआत में एवं उर्वरकों (एनपीके) को जुलाई और नवंबर में दो बराबर भागों में डालनी चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव फरवरी–मार्च और अक्टूबर–नवंबर के दौरान उचित वृक्ष शक्ति बनाए रखने और स्वस्थ फलों की फसल प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में जिंक की कमी एक गंभीर समस्या हो उन क्षेत्रों में मुख्यपोषक तत्वों के साथ जिंक सल्फेट 100 ग्रा0 प्रति वृक्ष की दर से थालों में मिला देना चाहिए।

सिंचाई

नीबू के पौधों में थोड़ा सूखा सहने की क्षमता होती है, इसलिए इसे बारानी परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, हालांकि, पौधे की स्थापना के 1–2 वर्षों के लिए पौधे की आवश्यकता के आधार पर सिंचाई की जा सकती है, खासकर गर्मियों के दौरान बेहतर स्थापना के लिए और फलने के दौरान 7 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिये। शीत ऋतु की फसल की सिंचाई 20 दिन के अन्तराल पर की जा सकती है। बारानी परिस्थितियों में वाष्पीकरण के माध्यम से पानी के नुकसान से बचने के लिए पेड़ के चारों ओर नियमित रूप से मिट्टी की गुडाई का काम उचित समय पर किया जाना चाहिए। आम तौर पर मानसून के मौसम के दौरान मध्य जून से अक्टूबर तक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। सिंचाई जल की मात्रा एवं संख्या मृदा का प्रकार, पादप एवं फल विकास पर निर्भर करती है। तीव्र वृद्धि, पुष्पन और फल लगते समय जलापूर्ति बाधित नही होनी चाहिए, अन्यथा इसके हानिकारक परिणाम सामने आते हैं। सिंचाई के जल की कमी वाले क्षेत्रों में ड्रिप विधि से सिंचाई करना चाहिए।

पलवार (मल्चिंग)

पश्चिमी भारत की वर्षा आधरित शुष्क परिस्थितियों में, नीबू की सफल खेती के लिए वृक्ष के तने के चारों ओर नीचे जैविक पलवार का प्रयोग लाभकारी पाया जाता है क्योंकि यह नमी संरक्षण में मदद करता है, खरपतवार की वृद्धि को रोकता है और मिट्टी की भौतिक स्थितियों में सुधार करता है। जैविक पलवार जैसे धान, मक्का तथा धास इत्यादि से पलवार करने से मिट्टी में केंचुआ और लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ जाती है तथा मिट्टी की नमी बरकरार रहती है, जिसका सीधा अनुकूल प्रभाव पौधों के विकास तथा पैदावार पर पड़ता है।

छत्रक प्रबंधनः

नीबू को ज्यादा कतायी कटाई छंटाई की जरूरत नहीं होती है, हालांकि, छत्रक के उचित विकास के लिए, जमीनी स्तर से 40–60 सेंटीमीटर तक बढ़ने वाले अंकुरों को हटाने की जरूरत होती है। रोपण के बाद प्रारंभिक वर्षों के दौरान मुख्य तने को बांस की छड़ी से सहारा दिया जा सकता है जो तेज हवाओं या बारिश के दौरान उन्हें सीधा खड़ा होने में मदद करता है। यह महत्वपूर्ण है कि शाखाओं को सभी दिशाओं में समान रूप से वितरित किया जाता है और प्रारंभिक अवस्था में क्रिसक्रॉस टहनियाँ को हटा दिया जाना चाहिए। रोगग्रस्त, झुकी हुई या क्षतिग्रस्त शाखाओं को समय–समय पर काटा जाना चाहिए, जबकि फल्दार पेड़ों में केवल अवांछित शाखाओं को हटाने की सिफारिश की जाती है।

अन्तरासस्य फसलें

पौध लगाने के शुरु के कुछ वर्षों तक अन्तराषस्य फसलें ली जा सकती हैं। अन्तराषस्य फसलों में मुख्यतया दलहनी

फसलों के लगाने से खरपतवार की वृद्धि रूक जाती है एवं भूमि की उर्वराषक्ति भी बढ़ जाती है। अन्तरासस्य फसलों से अतिरिक्त आमदनी भी प्राप्त होती है। मुख्य अन्तराषस्य फसलें कुछ इस प्रकार हैं। उड़द, मूंग, चना, मूंगफली एवं सोयाबीन। अन्तः फसल लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अन्तः फसलें ऐसी हों जिन्हें पानी की अधिक आवश्यकता न हो, अन्यथा मुख्य फसल प्रभावित होती हैं।

फलों की तुडाई एवं उपज

थार वैभव के परिपक्व फल पूरे वर्ष उपलब्ध होते हैं, हालांकि पश्चिमी भारत के वर्षा आधारित अर्ध–शुष्क पारिस्थितिकी तंत्र के तहत फल उपलब्धता की चरम अवधि अप्रैल–अगस्त के दौरान होती है। परिपक्व फलों को हरे पीले रंग की अवस्था में 3–4 चक्रों में तोड दिया जाता है। गर्मी में 125–135 दिन और बरसात और सर्दी के मौसम में फल लगने से लेकर कटाई तक 145–155 दिन लगते हैं। यह पश्चिमी भारत में वर्षा आधारित गर्म अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में रोपण के छठे वर्ष के दौरान इस किस्म में प्रति वृक्ष प्रति वर्ष औसत उपज 60 किग्रा. प्रति पौधा प्रति वर्ष प्रप्त होती है। पूर्ण परिपक्वता वाले फलों को कटाई के बाद 8–9 दिनों तक संग्रहित किया जा सकता है।

कीट और रोग प्रबंधन

आम तौर पर, पश्चिमी भारत की वर्षा सिंचित अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में कीटों और रोगों की अधिक समस्या थार वैभव में नहीं होता है। लेमन बटरफलाई पौधों के नए विकास चरण के दौरान नई उभरी पत्तियों को नुकसान पहुंचाती है और इसे 15 दिनों के अंतराल पर डाइमेथोएट / 1.5–2.0 मिली/लीटर के 1–2 छिड़काव द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। बरसात के मौसम में लीफ माइनर के नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसल (0.5/ली) का छिड़काव किया जा सकता है।

कभी–कभी, मुख्य तने और शाखाओं की छाल में ऊर्ध्वाधर विभाजन से गोंद के अधिक निकलने से पौधों को भारी नुकसान हो सकता है, हालांकि, यह किस्म वर्षा आधारित गर्म अर्ध–शुष्क परिस्थितियों में गमोसिस से मुक्त है। रोग को नियंत्रित करने के लिए, छाल के संक्रमित हिस्से को एक तेज चाकू की मदद से खुरचने का सुझाव दिया जाता है, जिसके बाद बोर्डो पेस्ट का प्रयोग करना चाहिए। बोर्डो मिश्रण 1% या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3%) का छिड़काव भी मासिक अंतराल पर करने की सलाह दी जाती है। बरसात के मौसम के दौरान कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3ग्रा./ली.) के एहतियाती स्प्रे से साइट्रस कैंकर की समस्या को रोका जा सकता है।

मैं मानता हूँ कि भारत की आधुनिक भाषाओं में हिन्दी ही सच्चे अर्थ में सदैव भारतीय भाषा रही है, क्योंकि वह निरन्तर भारत की एक समग्र चेतना को वाणी देने का चेतन प्रयास करती रही है और सभी भाषाओं में प्रदेश बोला है – कई बार बड़े प्रभावशाली ढंग से बोला है, हिंदी में आरंभ से ही देश बोलता रहा है – भले ही कभी–कभी कमजोर स्वर में भी बोला है।

–सच्चिदानंद वात्स्यायन

शुष्क एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में बेल की आधुनिक खेती

डॉ. राजेश जाटव, डॉ. पी. के. एस. गुर्जर, डॉ. राजेश लेखी, डॉ. प्रज्ञा सिंह

बेल भारत में उगाये जाने वाले प्रमुख प्राचीन फलों में से एक जो कि अपने औषधीय गुणों के लिए काफी महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके फलों में विभिन्न प्रकार के एल्कलॉइड सेपोनिन्स फ्लेवेनॉइडस फिनोल्स व कई प्रकार के फाइटोकेमिकल्स पाये जाते हैं। तथा इसके फलों के गूदे में अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा, प्रोटीन, फाइबर, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज एवं ऐन्टीऑक्सीडेन्ट पाया जाता है। इसके फलों से परिलक्षित पदार्थ जैसे शरबत एवं मुरब्बा आदि भी बनाये जाते हैं एवं इसके फल पेट से संबंधित बीमारी को दूर करने में भी सहायक होते हैं। बेल पतझड़ वाला पौधा है, जिसकी ऊँचाई 6–8 मीटर तक होती है।

जलवायु :– बेल सामान्यतः उपोष्णकटीयबंधीय जलवायु का पौधा है। फिर भी इसको समस्त प्रकार की जवायु में सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। बेल की बागवानी 1200 मीटर ऊँचाई तथ 10 से 44 डिग्री सेल्सियस तापमान तक आसानी से भी की जा सकती है। शुष्क जलवायु में फलों की खेती के लिए बेल का पौधा उपयुक्त होता है।

मिट्टी :– बेल का वृक्ष बहुत ही सहनशील किस्म का होता है। सामान्यतः इसकी खेती के लिए जल निकास युक्त रेतीली दोमट, मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। परन्तु इसकी कम उपजाऊ एवं समस्या ग्रस्त क्षेत्रों जैसे ऊसर, बंजर, कंकरीली खादर एवं बीहड़ आदि क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है। मृदा जिसका पी.एच. मान 5 से 8.5 तक हो उसमें बेल की खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है।

उद्यान विभाग, कृषि महाविद्यालय
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर–474002

प्रमुख किसमें :–

नरेन्द्र बेल 1 व 2 :– यह बेल सबसे अधिक उगायी जाने वाली एवं उपयोगी किस्में हैं। इसके फलों की उपज अच्छी होती है।

नरेन्द्र बेल 5 :– इस किस्म के पौधों की ऊँचाई मध्यम होती है तथा इसमें फलन पौधा रोपण के 4–5 वर्ष पश्चात् आरंभ हो जाता है। इसके फलों का भार औसतन (1.5 से 2.0 कि.ग्रा.) तक होता है। लगभग सात वर्ष पश्चात् प्रति पौधा फलों की संख्या 35–40 व 45–50 किलोग्राम तक हो जाती है। इसके फलों में ठोस घुलनशील पदार्थ 41 प्रतिशत तक होता है एवं किस्म में फलों के फटने से समस्या बहुत कम होती है।

नरेन्द्र बेल 7:– इस किस्म के फलों का आकार बहुत बढ़ा समतल एवं गोलाकार होता है।

नरेन्द्र बेल 9 :– इस किस्म पौधों की ऊँचाई मध्यम होती है तथा इसमें फलन 4–5 वर्ष बाद प्रारंभ होता है। इसके फल नाशपाती के समान होते हैं, जिनका औसतन भार 1.5 से 2 कि.ग्रा तक होता है। इसके पौधे सात वर्ष के होनेपर फलों की औसतन संख्या 25–30 एवं उत्पादन 45–50 कि. ग्रा. प्रति पौधा तथा ठोस घुलनशील पदार्थ 38 प्रतिशत तक है। इसके फलों में भी फटने की समस्या कम होती है।

सीआईएसएचबी–1:– यह बेल की एक मध्यम समय में फलन देने वाली किस्म है जो कि अप्रैल–मई के महीने में तैयार हो जाती है। इसका पौधा आकार में बढ़ा ओजस्वी सघन एवं सीधा बढने वाला एवं अधिक फलन वाला होता है। फलों का वजन 1.0 कि.ग्रा. तक होता है। यह किस्म डिब्बाबंदी के लिए उपयुक्त है।

सीआईएसएचबी–2:– इस किस्म का पौधा छोटा तथा मध्यम आकार का एवं फैलने वाला होता है। इसके पौधों में नियमित फलन होता है। फल गोलाकार एवं अण्डाकार होते हैं। यह किस्म प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

पूसा उर्वसी :– यह मध्यम समय में फलन देने वाली किस्म है। इसके पौधे बड़े फैलने वाले तथा अधिक फल देने वाले होते हैं। फलों का वजन 1.5 – 2..5 कि.ग्रा. तक होता है।

नरेन्द्र बेल 16:– यह एक उत्कृष्ट किस्म है। इसके फल अण्डाकार तथा फलों का गूदा पीछे रंग का होता है एवं रेशे की मात्रा कम होती है।

नरेन्द्र बेल 17:– इस किस्म की पैदावार भी बेहतरीन होती है, जिसके फल औसतन आकार होता है रेशे की मात्रा भी कम होती हैं।

पन्त अपर्णा :– यह उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश के लिये उपयुक्त किस्म है। इसके फल वृक्ष बोने आकार के साथ फैलने वाले एवं कांटों से रहित होते हैं। जिनमें फलन अधिक होता है। फल गोलाकार होते हैं। जिनका वजन लगभग 1 किलोग्राम प्रतिफल होता है।

पन्त शिवानी :– यह एक मध्यम समय में फल देने वाली किस्म हैं। इसके फल वृक्ष लम्बे सघन एवं सीधे बढ़ने वाले होते हैं तथा फलन अधिक होता है। इसके फलों का वजन 2 से 2.5 किग्रा. के लगभग होता है।

पन्त सुजाता :– इस किस्म के फल वृक्ष मध्यम ऊँचाई वाले सघन एवं फैलने वाले होते हैं। फलन अधिक होता है। फलों का आकार 1–1.5 कि.ग्रा. के लगभग होता है।

गोमा यशी :– इस किस्म क फल बड़े आकार के साथ–साथ अच्छी गुणवत्ता वाले होते हैं। फल अण्डाकार हरे पीले रंग के होते हैं तथा गूदे का रंग भूसे के समान होता है। यह किस्म राजस्थान में उगाने के लिये उपयुक्त मानी जाती है।

थार दिव्या :– यह किस्म चयन विधि द्वारा विकसित एक अगेती किस्म है। शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में इस किस्म में अच्छी वृद्धि, विकास एवं उत्तम फलन होता है। इसके साथ–ही साथ यह किस्म विभिन्न गुणों से भी भरपूर होती है। इसके फल वृक्षों कांटे बहुत ही कम होते हैं। इसके फलों का औसत वजन 1.51 से 2.00 किग्रा तक होता है। फलों का आकार गोल एवं आकर्षक तथा रंग पीला होता है। इसके फले के गूदे का टीएसएस 38° ब्रिक्स से अधिक होता है। फलों में बीज की मात्रा बहुत कम तथा फलों में गूदा लगभग 72–74 प्रतिशत तक एवं छिल्का पतला होता है। यह किस्म शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों की सभी किस्मों में सबसे पहले पककर (लगभग 260 दिन में) तैयार हो जाती है।

थार नीलकंठ :– यह किस्म भी विभिन्न प्रजातियों से चयन विधि द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के वृक्ष मध्यम आकार के होते हैं जिन पर कांटे बहुत कम होते हैं। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में भी यह किस्म अच्छी वृद्धि, विकास एवं उपज प्रदान करती है। फलों का आकार गोल, आकर्षक एवं पकने पर रंग पीला हो जाता है। फलों में टीएसएस 41° ब्रिक्स से अधिक होता है। फलों में बीज बहुत कम होता है एवं गूदा लगभग 75 प्रतिशत तक होता है। फल सुवासयुक्त एवं बहुत मिठासयुक्त होते है। एक 10 वर्ष आयु वाले वृक्ष से लगभग 101.60 किग्रा तक फल प्राप्त होते हैं।

प्रवर्धन :– बेल के पौधे का प्रवर्धन बीज तथा वानस्पतिक दोनों विधियों द्वारा किया जा सकता है। लेकिन साधारणतः इसका प्रवर्धन बीज द्वारा ही किया जाता है। बीज के द्वारा तैयार किये गये पौधों में भिन्नता आ जाती है। इसके लिए बीज द्वारा तैयार किये गये मूलव्रत के पर कलिकायन व ग्राफ्टिंग के द्वारा रोपण के लिए पौधे तैयार किए जाते हैं। बेल के पौधे पर लगने वाले फल मई से जून के महीने में पकने लगते हैं। पके हुए फलों के बीजों को निकालकर नर्सरी में जो कि 15–20 सेमी ऊँची एवं 1 मीटर चौड़ी एवं 10 मीटर लंबी (1x10) आकार वाली होती है। बीज को 1–2 सेमी की गहराई पर बो दिया जाता है। बीजों को बोने से पहले 12–24 घंटे तक के लिए पानी में भिगोया जाता है। फिर हवा में सुखाने के पश्चात् नर्सरी बोया जाता है। बेल के बीजों की बुवाई का उत्तम समय मई–जून ही माना जाता है।

जब पौधा 20 सेमी का हो जाये तो उसे दूसरी क्यारियों में 30 सेमी की दूरी पर रोपित कर देना चाहिए। व्यवसायिक स्तर पर बेल की खेती करने के लिए पौधे चश्मा विधि से ही तैयार करना चाहिए। चश्मा की विभिन्न विधियों में पैबंदी चश्मा विधि से जून–जुलाई में पौधे तैयार करने पर 80–90 प्रतिशत तक सफलता देती है तथा सांकुर डाली की वृद्धि भी अच्छी होती है। जब पौधे 1–2 वर्ष पुराने हो जाते हैं तब कलिकायन के लिए उपयुक्त होते हैं। चश्मा बांधने के लिए जिस पेड़ की कलम लेना चाहते हैं। स्वस्थ, तथा कॉटों से रहित अधपकी टहनी से आँख का चुनाव करना चाहिए, टहनी से 2–3 सेमी के आकार का छिलका आँख से निकालकर 1–2 वर्ष पुराने बीजू पौधे के तने पर 10–12

सेमी की ऊँचाई पर इसी प्रकार के हटाये हुए छिलके के खाली स्थान पर बैठा देना चाहिए। इसके बाद इस पर अलकायीन की 1 सेमी चौडी तथा 20 सेमी लंबी पट्टी में कसकर बांध देना चाहिए। इस क्रिया के 15 दिन पश्चात् बंधे हुए चश्मों के 8 सेमी ऊपर से बीजू पौधे के शीर्ष भाग को काटकर अलग कर देना चाहिए। जिससे कली सूखने न पाये।

पौधा रोपण :– बेल के पौधों का रोपण वर्षा के प्रारंभ में करना चाहिए जब भूमि में पर्याप्त नमी है। भूमि में पर्याप्त नमी होने से पौधों को नर्सरी से उखाड़ने में सुविधा होती है और साथ ही साथ पौधे आसानी से रोपित भी हो जाते हैं। उद्यान में पौधों को स्थाई रूप से रोपित करने के लिए गड्डों को गर्मी के महीनों में ही खोदना चाहिए। जिससे उनमें पर्याप्त धूप जा सके।

वर्ष	नत्रजन (ग्राम)	फास्फोरस (ग्राम)	पोटाश (ग्राम)	गोबर की खाद (कि.ग्रा. प्रति पौधा)
प्रथम वर्ष	50	25	50	20
द्वितीय वर्ष	100	50	75	40
तृतीय वर्ष	150	75	100	60
चतुर्थ वर्ष	200	100	125	80
पॉचवे वर्ष	250	125	150	100
छटे वर्ष	300	150	175	100
सातवें वर्ष	400	175	200	100
आठवें वर्ष	500	200	250	100
नवें वर्ष	00	250	300	100
दसवें वर्ष	700	300	500	100

चूँकि बेल के पोधे में जिंक की कमी के लक्षण पत्तियों पर दिखाई देते हैं। अतः जिंक की पूर्ति के लिए 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट प्रति पौधे के हिसाब से क्रमशः जुलाई, अक्टूबर और दिसंबर माह में पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। बेल के बागों में फलों के कटने की समस्या भी पायी जाती है। जिन बागों में यह समस्या पायी जाती है उनमें खाद्य एवं उर्वरकों के साथ बोरेक्स (सुहाना को प्रयोग 100 ग्राम/पौधे के हिसाब से बेल की जड से 0.75 से 100 मीटर दूर चारों ओर डालना चाहिए। खाद की मात्रा को दो बार, एक बार जुलाई में तथा दूसरी बार फरवरी में देना चाहिए।

सिंचाईः– सामान्यतः बेल के पौधे के लिए कम पानी की आवश्यकता होती है क्योंकि यह बहुत ही सूखा सहनशील पौधा होता है। बिना सिंचाई के भी रह सकता है। फिर भी अच्छी बढवार के लिए शुरू के एक दो वर्ष तक सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है। इसकी सिंचाई के लिए टपक सिंचाई एवं मटका सिंचाई विधि से करने पर नये पोधे सिंचाई जल का अच्छे से उपयोग कर लेते हैं और पौधों पर समान रूप से पानी का वितरण होता है। बेल का पौधा गर्मी के महीनों में सुसुप्तावस्था में चला जाता है और वर्षांत का मौसम आने पर फलन प्रारंभ हो जाता है, जो कि सर्दियों तक चलता है और इस प्रकार यह सूखे को सहन कर लेता है। सिंचाई के पानी की उपलब्धता होने पर मई–जून में नई पत्तिया आना आरंभ होने पर 20–30 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई कर देना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण :– बेल के पौधों में ज्यादा निदाई गुड़ाई की जरूरत नहीं होती है। फिर भी शुरूआत में पौधों के एक निंदाई गुडाई करें तथा दूसरी निंदाई गुडाई 02 वर्ष की अवस्था में करना चाहिए।

सधाई एवं कटाई–छटाई :– बेल के पौधों का मजबूती प्रदान करने और अच्छी आकृति प्रदान करने के लिए शुरू में 4–5 वर्षों तक सधाई की आवश्यकता होती है। पौधों की शुरूआत में ही 0.75 सेमी तक की शाखा काटकर तना रहित कर देना चाहिए। इसके बाद 4–6 मुख्य शाखाओं को चारों ओर बढने दिया जाताहै। बेल के पौधों में ज्यादा कटाई–छंटाई की आवश्यकता नहीं होती है। फिर भी अनावश्यक सूखी, कीट एवं बीमारियों से ग्रसित टहनियों को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए।

अन्तःवर्तीय फसलें :– बेल के पौधों में 4–5 वर्षो के बाद फलन शुरू होता है जिसमें पौधों की बढवार के समय में खाली जगह में कम समय में तैयार होने वाले फसलों को उगाया जाता है। जिससे की 4–5 वर्षो तक कुछ अतिरिक्त आय मिल सके। परन्तु अन्तवर्तीय फसलें लेते समय ऐसी फसलों को न उगाये जिन्हें अधिक पानी की आवश्यकता हो और वह बेल का फसल को किसी भी तरह से प्रभावित करे।

फलन :– बीज के द्वारा तैयार किये गये पौधे 8–9 वर्ष बाद फलने लगते हैं। जबकि वानस्पतिक या चश्मा विधि से तैयार किए गए पौधे 4–5 वर्ष में ही फल देने लगते हैं। जब बेल का पौधा 10–15 वर्ष पुराना हो जाता है तो उसमें पूरी तरह फलन होने लगता है और प्रति पौधा लगभग 150–175 फल प्राप्त होते हैं। बेल के पेड का फलन अवधि अधिक होती है इसमें फल जून–जुलाई में आते हैं और अगले वर्ष अप्रैल मई में पककर तैयार हो जाते हैं ।

फलों की तुड़ाई और उपज :– बेल के पौधे में जून–जुलाई में फल लगना प्रारंभ होते ही और अगले वर्ष जनवरी माह में जब पौधे पीले–हरे दिखने लगते हैं तब फलों की तुडाई करते हैं। इन तोडे हुए फलों को 08 दिनों तक के लिए रखते हैं जिससे उनका पीला हरा रंग चला जाये। फलों की तुडाई के पश्चात सावधानीपूर्वक रखना चाहिए क्योंकि फलों के गिरने पर इसमें दरार पड सकती है जिससे नुकसान की संभावना बढ़ जाती है। बेल के फल आकार में बड़े होते हैं तथा पेड पर इनकी संख्या कम होती है। पूर्णरूप से फलन आये हुए बेल से लगभग 1–1.5 क्विंटल फल प्रति पौधा उपज प्राप्त होती है।

श्रेणीकरण और पैकिंग :– बेल के फलों की अधिक कीमत प्राप्त करने के लिए उनके, आकार एवं अन्य आधार पर उनका श्रेणीकरण किया जाताहै। फलों की पैकिंग उनके बाजार की दूरी पर निर्भर करती है। फलों की जूट के बारों में भी पैक कर सकते हैं। लेकिन वायुरोधी थैले इनके लिए उपयुक्त माने जाते हैं। पैकिंग अच्छी तरह से होने पर परिवहन के समय चढाते उतारते समय फलों की क्षति नहीं होती है और फल खराब होने से बच जाते हैं।

भण्डारण और परिवहन :– सामान्य परिस्थितियों में बेल के पौधों को लगभग 15 दिन तक सुरक्षित रख सकते हैं। परन्तु फलों की कृत्रिम रूप से पकाकर 100 से 150 पी.पी. एम. ईथरॉल का उपयोग करके 30° तापमान पर 18–24 दिन तक सुरक्षित रख सकते हैं। अधिक समय तक भण्डारित करने के लिए फलों को सूखी जगह पर रखना चाहिए। बेल के फलों का परिवहन बाजार की पूरी पर निर्भर करता है। किसान सामान्यतः बैलगाडी और ट्रेक्टर के द्वारा बाजार ले जाते हैं। जबकि अधिक दूरी पर ले जाने के ट्रेक्टर ट्रॉली और रेल आदि का उपयोग करते हैं।

कीट एवं रोग :–

प्रमुख कीट :– पत्तों की खाने वाली सुड़ी या इल्ली :– यह बेल की सुडी नये पौधें निकलते समय अधिक हानि पहुँचाती है। इसकी रोकथाम के प्रोपेनोफॉस 35 ईसी का पर्णीय छिड़काव करें।

बेल की तितली (वेक्टोसेरा जोनाटा) :– यह बेल की फसल को नुकसान पहुंचाती है। इसकी रोकथाम के लिए पौधों पर स्पिनोसेड / 60 मिली का छिडकाव 10–15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

प्रमुख रोग :–

कैंकरः– बेल का यह रोग जैन्थामोनास बिल्वी नामक बैक्टीरिया के द्वारा होता है। इससे बीमारी से प्रभावित पौधे के भागों पर धब्बे बन जाते हैं जो बाद में बढ़ कर भूरे रंग के हो जाते हैं।

इस बीमारी की रोकथाम के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (200 पी पी एम) का पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अन्तराल पर छिडकाव करना चाहिए।

डाई बेक :– यह बीमारी लेसिया डिव्लोडिया नामक फफूँदी के द्वारा होती है। इस बीमारी के कारण पौधे की टहनियाँ ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती है।

इस बीमारी की रोकथाम के लिए कॉपर ऑक्सीक्लाराइड (0.3 प्रतिशत) का दो छिडकाव सूखी टहनियों की कटाई छंटाई के बाद 15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

फलों का गिरना और फलों फटना :– बेल की यह बीमारियाँ फलों की आकार और बनावट को बिगाड़ देती है। तथा फल फटने लगते हैं। इस बीमारी की रोकथाम के लिए बोरेक्स 0.1 प्रतिशत दो बार फूल के खिलने पर फलों के गुच्छे बनते–बनते समय छिड़काव करना चाहिए।

शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में शरीफा की वैज्ञानिक खेती

डॉ. राजेश जाटव*, डॉ. राजेश तिवारी**, डॉ. कमलेश अहिरवार*** एवं डॉ.राजेश लेखी*

परिचय

शरीफा या सीताफल एक छोटा, पर्णपाती एवं अर्धसदाबहार फलवृक्ष होता है। जिसका वानस्पतिक नाम एनोना स्क्वेमोसा होता है और यह एनोनेसी कुल का सदस्य है। यह उष्ण क्षेत्रों के प्राचीनतम फलों में से एक बहुत ही स्वादिष्ट एवं पौष्टिक गुणों से भरपूर फल है। इसको गरीबों का फल भी कहा जाता है। शरीफा परिवार के अन्तर्गत बहुत से फल शामिल किये जाते हैं परन्तु हमारे देश में सबसे लोकप्रिय शरीफा है। इस फल का उत्पत्ति स्थान उष्ण अमेरिका माना जाता है तथा अमेरिका में इसको "शुगर एप्पल" के नाम से भी जाना जाता है। शरीफा फल का उत्पादन विश्व के लगभग सभी उष्ण एवं उपोष्ण देशों में किया जाता है। जहाँ पर पाले का प्रकोप कम होता है या नहीं होता है। इनमें प्रमुख रूप से ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, म्यांमार, भारत, चिली, इजराइल, मैक्सिको, स्पेन एवं फिलीपीन्स आदि सम्मिलित है।

भारत में शरीफा की खेती सीमित क्षेत्रफल में ही की जाती है। और यह कुछ राज्यों जैसे– आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु और मध्यप्रदेश में अधिकतर जंगली अवस्था में ही पाया जाता है लेकिन असम, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश के कुछ भागों में इसकी खेती भी की जाती है। इसकी आसानी से की जा सकने वाली खेती तथा कम लागत में प्राप्त होने वाली अच्छी आय को देखते हुये हम कह सकते है कि मध्यप्रदेश में शरीफा की बागवानी के विकास की अपार संभावनायें हैं।

पोषक गुण

शरीफा के फलों में शर्करा अधिक मात्रा में पायी जाती है, इसलिए इसको "शुगर एप्पल" के नाम से भी जाना जाता है। फल मीठा स्वादिष्ट, बलवर्धक रक्तवर्धक, शीतलता दायक, दाहशामक, पित्तरोधक एवं हृदय के लिए लाभदायक होता है। इसमें सुक्रोज और ग्लूकोज समान मात्रा में पाये जाते हैं। यह विटामिन–बी कॉम्पलेक्स, विटामिन– सी के साथ–साथ केल्शियम फॉस्फोरस और लोहा जैसे खनिज तत्वों का अच्छा स्त्रोत होता है। इसके फलों में कार्बोहाइड्रेट–23.5 प्रतिशत, प्रोटीन –1.6 प्रतिशत, वसा–0.3 प्रतिशत एवं रेशा–2.4 प्रतिशत तक पाया जाता है। साथ ही प्रति 100 ग्राम फल में फॉस्फोरस–47.0 मिलीग्राम, लोहा–1.5 मिलीग्राम, विटामिन–सी 37.0

*उद्यान विभाग, कृषि महाविद्यालय, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)
**उद्यान विभाग, कृषि महाविद्यालय, रीवा, जवाहर लाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)
***कृषि विज्ञान केंद्र, नौगांव, छतरपुर, जवाहर लाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

मिलीग्राम तक होता है। शरीफा के प्रति 100 ग्राम खाने वाले गूदे से लगभग 114–कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। जिसको या तो ऐसे ही खाया जाता है या दूध या आइसक्रीम के साथ मिलकर खाया जाता है। इसके फलों से प्राप्त बीजों से तेल बनाया जाता है जिसका उपयोग साबुन तथा रंग उद्योग में होता है।

जलवायु

शरीफा उष्ण जलवायु का फल है। अतः उपोष्ण जलवायु में इसमें फलन अच्छा नही होता है। इसके पौधे अत्यधिक सहिष्णु या कठोर प्रवृत्ति के होते है। शुष्क एवं गर्म जलवायु इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। सुखा सहन करने की क्षमता अच्छी तथा थोड़ा बहुत पाला सहन करने की क्षमता भी होती है। अत्यधिक सर्दी में इसके फल पकते नही है तथा कड़े हो जाते हैं। यद्यपि इसके वृक्ष सदाबहार होते हैं किन्तु अधिक सर्दी और ठण्ड के दिनों में प्रायः इसके पौधों की पत्तियां गिर जाती हैं। फूल आते समय शुष्क मौसम होना आवश्यक होता है। और इस समय सूखी एवं गर्म हवायें फलन को प्रभावित करती हैं। और तापमान 40^{0} से डिग्री सेल्सियस से अधिक होने पर फूल झड़ने लगते हैं। परन्तु बरसात आरंभ होने के साथ ही साथ फल आना शुरु हो जाते हैं। शरीफा की खेती के लिए 50–75 सेमी औसत वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है। शरीफा की खेती उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में गर्मी के दिनों में अधिक तापमान व लू के प्रकोप के कारण सफलतापूर्वक नहीं की जा सकती है। जबकि दक्षिण भारत की नीलगिरी की पहाड़ियों में इसकी बागवानी 1200 मीटर तथा इससे अधिक ऊँचाई पर सफलतापूर्वक की जा सकती है।

मृदा

शरीफा प्रजाति के पौधे मृदा के प्रति काफी सहिष्णु होते है। सामान्यतः इसकी खेती सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। किन्तु जीवांशयुक्त बलुई दोमट मृदा जिसका जलनिकास एवं वायु संचार अच्छा हो उपयुक्त मानी जाती है। शरीफा के पौधे की जड़े अधिक गहराई तक नही जाती हैं। इसलिये इसकी खेती के लिए अधिक गहरी मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती है। फिर भी इसके पौधे उपजाऊ और गहरी मृदा में अच्छी वृद्धि करते हैं। अधिकतर फल वाले पौधे की तरह शरीफा की खेती के लिए भी 5.5 से 6.5 मृदा का पी.एच. मान उपयुक्त माना जाता है। परन्तु थोड़ी क्षारीय और अम्लीय मृदा होने पर भी इसके पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

शरीफा की किस्में

शरीफा का वर्गीकरण स्थान, फल का आकार रंग एवं बीज की मात्रा के आधार पर कर सकते है। इसका प्रवर्धन मुख्य रुप से बीज द्वारा किया जाता है। इसलिये इसकी प्रमाणिक किस्मों का अभाव है फिर भी फलन एवं गुणवत्ता के आधार पर प्रमुख चयनित किस्में निम्नलिखित हैं –

1. **बालानगर** – यह किस्म झारखण्ड क्षेत्र के लिये उपयुक्त है। इसके फल हल्के हरे रंग के होते है। फलों का औसत भार 137 ग्राम तथा उपज 5 से 7 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष होती है। झारखण्ड के जंगलों में इस किस्म के अनेक स्थानीय जननद्रव्य पाये जाते हैं।
2. **अर्का सहन** – यह भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित एक संकर किस्म है। यह किस्म अपने मीठे स्वाद, सफेद गूदे तथा उन्नत भण्डारण क्षमता व कम बीजों (9 ग्राम बीज प्रति 100 ग्राम फल भार) के कारण पहचानी जाती है। इस किस्म के फल में औसत शर्करा 22.8, प्रोटीन 2.49 प्रतिशत फॉस्फोरस 42.49 मिलीग्राम, केल्शियम 225 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम तक पाया जाता है।
3. **लाल शरीफा** – इस किस्म के फल लाल तथा हल्के गुलाबी रंग के होते हैं तथा औसत उपज लगभग 40–50 फल प्रति पेड़ होती है। इसके फलों में बीजों की संख्या अधिक होती है। फलों में गूदा 30.5 प्रतिशत एवं कुल विलेय ठोस (TSS) कुल घुलनशील पदार्थ 22.3 प्रतिशत एवं अमलता 0.24 प्रतिशत होती है।
4. **मैमथ** – इस किस्म की उपज लाल शरीफा की अपेक्षा अधिक होती है। इसकी उपज लगभग 60–80 फल प्रति पेड़ होती है एवं फलों में बीजों की संख्या भी लाल शरीफा की अपेक्षा कम होती है। फल गोलाकार तथा फलों की आँखें भी गोलाकार एवं बड़ी होती हैं। फलों की फाँके गोलाई लिये काफी चौड़ी होती हैं। फलों मे गूदा 44.8 प्रतिशत, कुलविलेय ठोस 20 प्रतिशत एवं अम्लता 0.24 प्रतिशत होती है।
5. **बारबडोज सीडलिंग** :– इसके फलों का भार 137 ग्राम तथा औसत उपज 5 से 7 किलोग्राम प्रतिवृक्ष होती है।
6. **ब्रिटिश ग्वाईना** :– इसकी उपज 4–5 किलोग्राम प्रति वृक्ष होती है एवं फलो का औसत भार 150 ग्राम प्रति फल होता है।

भूमि की तैयारी

इसकी खेती हेतु सबसे पहले भूमि में उपस्थित कंकड़, पत्थर और अनावश्यक कचरा आदि को मृदा से हटाने के बाद मिट्टी पलटने वाले हल से भूमि की एक–दो

गहरी जुताई करते हैं। इसके बाद कल्टीवेटर आदि की सहायता से मृदा को भुरभुरी तथा खरपतवारों से रहित कर देते हैं।

गड्डे तैयार करना

शरीफा का बगीचा लगाने के लिये गड्डे खोदने की आवश्यकता होती है। पौधे लगाने के लिए जुलाई का समय उपयुक्त रहता है। गड्डों को खोदने का कार्य रोपण के 2 माह पूर्व किया जाना चाहिए। इसके लिए 4.5 से 5 मीटर कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी पर 50X50X50 घन से.मी. आकार के गड्डे बनाये जाते हैं। इसके बाद खुदे हुये गड्डों को एक महीने तक खुला रहने देते हैं। फिर 10–15 किलो ग्राम पकी हुई गोबर की खाद तथा 250 ग्राम सुपर फॉस्फेट और 50 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश को मिट्टी में मिला कर भरने हेतु तैयार करते हैं। पौधों को दीमक से बचाने के लिए नीमखली 500 ग्राम प्रति गड्डा या क्लोरोपाइरीफॉस 1.5 प्रतिशत का घोल बना कर मिट्टी को उपचारित करना चाहिये। गड्डे की खुदाई करते समय यह भी ध्यान रखा जाता है। कि 25 से.मी. की गहराई वाली ऊपरी मिट्टी को एक तरफ तथा निचली 25 से.मी. की गहराई वाली मिट्टी का दूसरी तरफ डालते है तथा गड्डे को भरते समय ऊपर की मिट्टी को गड्डे में नीचे भरा जाता है तथा नीचे वाली 25 से.मी. मिट्टी के साथ खाद को मिलाकर गड्डे के ऊपरी भाग में भर दिया जाता है।

पौध प्रवर्धन

शरीफा का प्रवर्धन बीज तथा वानस्पतिक दोनों ही विधियों द्वारा किया जाता है। किन्तु बीज से तैयार किये गये पौधों का विकास धीरे–धीरे होता है और तैयार पौधे मात्र वृक्षों के समान नहीं होते है। जबकि वानस्पतिक विधि से प्रवर्धित किये गये पौधे मात्र वृक्ष के समान ही होते हैं। इनकी वृद्धि एवं विकास बीजू पौधों की अपेक्षा शीघ्र होता है तथा फलन भी जल्दी होने लगता है। इसलिये व्यवसायिक रुप से प्रवर्धन के लिये वानस्पतिक विधियों को ही ज्यादा महत्व दिया जाता है। वानस्पतिक प्रवर्धन की विधियों में से बडिंग तथा ग्राफ्टिंग विधि का प्रयोग शरीफा के प्रवर्धन के लिये किया जाता है।

ग्राफ्टिंग विधि से पौधे तैयार करने के लिये अक्टूबर–नवम्बर जबकि बडिंग विधि द्वारा पौधे तैयार करने के लिये फरवरी–मार्च का महीना उपयुक्त माना जाता है। शरीफा में शील्ड बडिंग द्वारा पौधे तैयार करना आसान होता है। बडिंग की यह विधि जनवरी से जून तथा सितंबर से अक्टूबर के महीने में काफी सफल रहती है। इसके लिये एक ऋतु पुरानी स्वस्थ एवं परिपक्व कलिका (बड) का चयन करते हैं। जिसको एक वर्ष पुराने और पेंसिल की मोटाई वाले मूलवृन्त पर प्रतिरोपित कर पॉलीथीन या केले के रेशे की सहायता से बाँध दिया जाता है। प्रतिरोपण के लगभग 15 दिन पश्चात् नया पौधा तैयार हो जाता है।

खाद एवं उर्वरक –

सामान्यतः शरीफा की बागवानी कमजोर एवं कम उपजाऊ भूमि में की जाती है। इसलिये अच्छे फल उत्पादन के लिये पर्याप्त मात्रा में खाद एवं उर्वरकों की आवश्यकता होती है। शरीफा के पौधों के रोपण के बाद पोषक तत्वों की पूर्ति के लिये प्रत्येक वर्ष निम्नलिखत मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिये–

पौधे की आयु	गोबर की खाद कि.ग्रा. / पौधा	नाइट्रोजन (ग्राम / पौधा)	फॉस्फोरस (ग्राम / पौधा)	पोटाश (ग्राम / पौधा)
1–3 वर्ष	10–15	50	100	25
4–7 वर्ष	20–25	100–125	200	50
8 वर्ष या अधिक	25	125–150	300	75–100

शरीफा में खाद अन्य फल वृक्षों की तरह सामान्य निम्नानुसार ही दिया जाता है। मानसून आरम्भ होते समय ही बगीचों में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग लाभदायक रहता है। इसके अलावा संभव हो तो वर्षा के प्रारंभ में ही हरी खाद वाली फसलें जैसे– सनई, मूँग, उड़द आदि उगाकर फूल आने के पहले मिट्टी पलटने वाले हल से मिट्टी में मिलाना चाहिये।

सिंचाई

पौधो के रोपण के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करना चाहिये। चूँकि शरीफा के पौधे सूखा के प्रति सहनशील होते हैं और अच्छा फल उत्पादित कर सकते हैं। परंतु फलन के समय पानी की ज्यादा आवश्यकता होती है और फलन की अवस्था शरीफा में वर्षा के दौरान आती है। इस समय में वातावरण एंव मिट्टी में नमी अच्छी रहती है। जिससे सिंचाई करने की आव यकता नहीं होती है परंतु शरीफा

में वर्षा ऋतु आरंभ होने से पहले 2 से 3 सिंचाई प्रति सप्ताह अवश्य करना चाहिये, जिससे पौधो में फल धारण करने की क्षमता बढ़ती है तथा वर्षा के उपरांत सितम्बर से नवम्बर के बीच एक से दो सिंचाई (15–20 दिन अन्तराल) करने पर फल का आकार बड़ा होता है।

खरपतवार नियंत्रण

शरीफा के बगीचे की समय–समय पर सफाई करते रहना चाहिये। सितम्बर के माह में एक बार जुताई करना चाहिये। जिससे खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ नमी संरक्षण भी हो सकेगा।

अन्तर्वत्तीय फसलें

शरीफा का पौधा शुरु के 4–5 वर्षों तक अपनी वानस्पतिक वृद्धि करता है ।इस बीच में शरीफा से आर्थिक पैदावार नही होती है। इस दौरान पौधों के बीच में बची हुई खाली जगह का उपयोग करते हुये कम अवधि वाली अन्य फसलों का उगाया जाता है। जिससे किसानों को अतिरिक्त आय मिल सकें और मृदा की उर्वरा शक्ति में वृद्धि के साथ कटाव कम होगा है तथा खरपतवारों की संख्या में भी कमी आती है।

अन्तरवर्तीय फसलों के रुप में दलहनी फसलें जैसे मटर एवं बरवटी उगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। वर्षा ऋतु में मूँगफली, सोयाबीन एवं अलसी आदि एवं शरद ऋतु में मटर, चना, मसूर एवं तिलहन आदि फसलों को उगाया ला सकता है।

सधाई एवं काट–छाँट

पौधों को उचित ढाँचा देने के लिये शुरु के 2–3 वर्ष तक पौधो की सधाई की जाती है। जिससे पौधे फसल भार को सहन कर सके। पौधो की सधाई करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि तने पर 50–60 से.मी. की ऊँचाई तक किसी भी शाखा को नही निकलने देना चाहिए। उसके ऊपर 3–4 अच्छी शाखाओं को चारों तरफ बढ़ने दिया जाता है। जिससे पौधा अपना मजबूत ढाँचा तैयार कर सके।

शरीफा के पौधों पर फलन मुख्यतः नई–नई शाखाओं पर होता है। अतः पौधो में अधिक संख्या में नई शाखायें विकसित करने के लिये पुरानी, सूखी, कीट व बिमारी से ग्रसित एवं एक–दूसरे से उलझी हुई शाखाओं को काट देना चाहिये जिससे उस स्थान पर नई शाखायें वृद्धि कर सकें।

पुष्पन एवं फलन –

पौधों की वानस्पतिक वृद्धि के साथ फूल आने शुरु हो जाते है। शरीफा के पौधे में पुष्पन की क्रिया लम्बे समय तक चलती है। पुष्प की कलिका के आँखों से दिखाई पड़ने की स्थिति से लेकर पूर्ण पुष्पन में लगभग एक महीने का समय तथा पुष्पन के बाद फल बनने में लगभग 4 महीने का समय लगता है। उत्तर भारत में मार्च से ही फूल आना प्रारम्भ हो जाते हैं जो कि अगस्त तक आते हैं। इसके बाद फल बनने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है एवं सितंबर – अक्टूबर माह तक पके हुये फल मिलना शुरु हो जाते है। बीज से तैयार किये गए पौधों मे तीन से चार वर्ष बाद फलन प्रारंभ हो जाता है। जबकि वानस्पतिक विधियों जैसे बडिंग एवं ग्राफ्टिंग द्वारा तैयार पौधो से दूसरे वर्ष में ही अच्छा फलन प्राप्त होने लगता है। पादप वृद्धि नियामक जैसे जिब्रेलिक एसिड के 50 पी पी एम घोल को फूल खिलने के तुरन्त बाद छिड़काव करने से फलन अधिक होता है।

शरीफा में पुष्पन एवं फलन

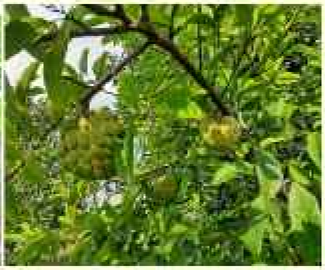

शरीफा में फलन

परागण

पौधों की वानस्पतिक वृद्धि के साथ फूल आना प्रारंभ हो जाते हैं जो कि अगस्त माह तक आते है। सर्वाधिक फूल गर्मी के आरंभ में आते हैं जो कि धीरे–धीरे कम होने लगते हैं। तापमान एवं आद्रता अधिक होने पर पराग कम बनते हैं। मई–जून माह में जब तापमान बहुत अधिक एंव हवा में नमी की मात्रा कम होती है। तब परागण सिकुड़ कर बंध्य हो जाते हैं। इसके फूलों की बनावट भी कुछ इस प्रकार की होती है। जिससे परागकण आसानी से छिटक नहीं पाते है और इसके कारण फलन पर बुरा असर पड़ता है। शरीफा के पुष्प अनाकर्षक होते है और इनमे मधु (शहद) की मात्रा भी कम होती है। जिसके कारण फूलों पर कीटों का भ्रमण बहुत ही कम होता है। परागों के समूह में न होने के कारण वायु परागण की सफलता भी सीमिति होती है। इस प्रकार भारीफा के पौधों में कम फलन के प्रमुख कारणों में फूल के नर और मादा भागों का अलग–अलग समय पर परिपक्व होना पुश्पन या फूल आने के समय अधिक तापमान एवं कम आर्द्रता का होना परागण एवं फूल की विचित्र बनावट जिससे पराग का न जमना, परागण में बहुत कम परागकणों का पैदा होना एवं परागण की बंध्यता आदि है। इन कारणों से प्राकृतिक पर परागण प्रभावित होता है। अतः प्राकृतिक परागण के स्थान पर हाथ के द्वारा (हस्त परागण Hand Pollination) कृत्रिम परागण से बेहतर परिणाम प्राप्त होते है। शरीफा पर किये गये विभिन्न प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि हाथ से परागण करने पर लगभग 44 से 60 प्रतिशत फूलों पर फल लगते हैं। जबकि प्राक्रतिक रुप से परागण के लिये फूलों को छोड़ने पर मात्र 1.3 से 5.8 प्रतिशत फूलों पर ही फल लगते हैं।

हस्त परागण

शरीफा में हस्त परागण करने के लिये एक प्लास्टिक के कप में शरीफा के नये विकसित (एक दिन पहले खिले हुये) फूल जिसकी पंखुड़ियाँ सूखना शुरु हो गई हों से परागण एकत्रित कर लेते हैं। परागण को इकठ्ठा करने के लिए फूल को हिला कर अंगुलियों को बीच में रगड़ कर निकालते हैं। यह कार्य सुबह 6:00 बजे से 7:00 बजे के बीच में किया जाता है और इस परागण युक्त कप को भार्ट की जेब में रखकर एक 2 या 3 नंबर वाले ब्रश की सहायता से परागण की क्रिया करते हैं जो कि सुबह 9.00 बजे से पहले करना बहुत अच्छा माना जाता है। इसके बाद एक हाथ की सहायता से फूल की पंखुडियों को दूर करते हैं और दूसरे हाथ से स्त्रीकेशर पर परागकण को छिटकते हैं। इस क्रिया को करते समय ध्यान रखते हैं कि जिस फूल पर पराग कण स्थापित करना है वह अधखुला हो या फिर कुछ समय बाद खुलने वाला हो। जब अधिकतम पुष्प विकसित हो तभी परागण को स्थापित करें। ऐसा करने से शरीफा के पौधों पर अधिकतम फल बनने की संभावना रहती है।

फलों की तुड़ाई

सामान्यतः फूल आने से फल पकने में 4 महीने का समय लगता है। फलों की तुड़ाई सितम्बर से नवंबर के महीने तक करते हैं। फलों की तुड़ाई का समय फूल आने पर भी निर्भर करता है। फलों की तुड़ाई परिपक्वता की उचित अवस्था पर करना चाहिए। जब फल पकने लगता है तब हल्का कड़ा होने के साथ ही रंग हल्के हरे से पीले रंग में परिवर्तित हो जाता है। इस अवस्था में फलों की फँाकों अथवा उभारों के बीच में रिक्त स्थान बढ़ जाता है तथा दरार सी दिखाई देने लगती है। फलों के ऊपर दिखाई देने वाली आँखें चपटी हो जाती हैं, जिसका रंग पीला सफेद होने लगता है। फलों को इस अवस्था में सावधानीपूर्वक तोड़ना चाहिये। अन्यथा फल फट कर सड़ना शुरु हो जायेगें। फल तुड़ाई के एक सप्ताह के भीतर खाने योग्य हो जाते हैं। इनको सावधानी पूर्वक बाँस और लकड़ियों की बनी टोकरियों में घास एवं धान का पुआल बिछाकर उनमे भर कर बाजार के लिये भेज दिया जाता है।

उपज

पौधा रोपण करने बाद बीजू पौधे 4 से 5 वर्ष में तथा वानस्पतिक विधियों द्वारा तैयार पौधे 2 से 3 वर्ष में फल देना प्रारंभ कर देते हैं और लगभग 12 से 15 वर्ष तक अच्छी उपज देते हैं। 4 से 5 वर्ष पुराने पौधे से लगभग 50–60 फल प्रति पौधा प्राप्त होते हैं। जबकि पूर्ण विकसित पौधे से लगभग 100 फल प्रति पौधा तक उपज प्राप्त होती है।

भण्डारण

शरीफा के फल शीघ्र खराब होने वाले होते हैं फिर भी इसके पके हुये फलों को 5° सेलसियस तापमान पर 5 से 6 सप्ताह तक भंडारित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पके हुये फलों को 8% वेक्स अथवा 400 पीपीएम 2,4,5–टी के घोल से उपचारित करके भी एक सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है।

एयर लेयरिंग द्वारा कम लागत में अमरूद का प्रवर्धन

आनंद साहिल, शीतल रावत एवं रामकेश मीणा

अमरूद का वैज्ञानिक नाम सीडीएम गुआजावा है। शरद ऋतु के समय अधिक उपज एवं बाजार में इसका मूल्य कम होने के कारण इसे गरीबों का सेब भी कहा जाता है। अमरूद की उत्पत्ति स्थल समान्यतः अमेरिका के उष्णकटिबंधीय भाग एवं वेस्टइंडीज के क्षेत्र को माना जाता है। अमरूद के पौधों का भारत में प्रसारण समान्यतः 17 वीं सदी में हुआ था। भारत की जलवायु अमरूद की खेती के लिए एकदम सटीक मानी जाती है। अमरूद के पौधे सूखा सहिष्णु प्रकृति के होते हैं जिसके कारण इसकी खेती कम पानी वाले जगहों पर भी आसानी से की जा सकती है। समान्यरूप से इसकी खेती के लिए विशेष प्रकार की मिट्टी की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु आधिक उपज एवं प्रति क्षेत्र में आधिक उत्पादकता लेने के लिए बलुई दोमट मिट्टी उपर्युक्त मानी जाती है। इसकी उचित पैदावार हेतु मृदा ना तो अधिक अम्लीय एवं अधिक क्षारीय हो परन्तु उचित पीएच मान लगभग 4.5 से 8 इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम है। उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पौधों की वृद्धि एवं उचित पैदावार होती है परन्तु उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में भी इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा रही है। उष्ण क्षेत्रों में तापमान एवं नमी प्रयाप्त मात्रा में होने के कारण वर्ष भर फल लगे रहते हैं। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी खेती उपर्युक्त नहीं होती है क्योंकि अमरूद का पौधा जल के प्रति संवेदनशील होता है। छोटे पौधों पर पाले का प्रभाव अधिक होता है जबकि पूर्ण विकसित पौधे 44 डिग्री सेल्सियस तक तापमान सहन कर सकते हैं। यह भारत का चौथा सबसे महत्वपूर्ण फल है। यह स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण एवं लाभदायक फल सिद्ध हुआ है। अमरूद में पोषक तत्व जैसे विटामिन, प्रोटीन, डायटरी फाइबर, ऊर्जा, कार्बोहाइड्रेट, सोडियम, पोटैशियम, लौह, जिंक, इत्यादि प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसमें विटामिन सी, विटामिन ए एवं विटामिन बी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यह रसीला एवं स्वादिष्ट फल है जोकि स्वास्थ्य के लिए वरदान साबित होता है। अमरूद में एंटी ऑक्सीडेंट पॉलीफिनॉलिक और फ्लेनोइड्स कंपाउंड प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यह लायकोपीन, ल्यूटिन और क्रिप्टोजैनथिन का भी अच्छा स्रोत है। अमरूद के फलों का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा जैसे कैंसर, डायबिटीज, त्वचा रोग, ब्लडप्रेशर आदि रोगो के नियंत्रण हेतु किया जाता है।

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर

अमरुद में पाए जाने वाले पोषक तत्व इस प्रकार है –

पोषक तत्व	मात्रा प्रति 100 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	14.3 ग्राम
प्रोटीन	2.55 ग्राम
फाइबर	5.4 ग्राम
वसा	0.95 ग्राम
विटामिन "ए"	624 आई यू
विटामिन "सी"	228 मिली ग्राम
सोडियम	2 मिली ग्राम
पोटैशियम	417 मिली ग्राम
कैल्शियम	18 मिली ग्राम
लौह	0.26 मिली ग्राम
जिंक	0.23 मिली ग्राम

भारत में अमरूद की खेती लगभग सभी राज्यों में की जाती है परन्तु उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ इत्यादि राज्यों में इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जा रही है। अमरूद की खेती किसानों की आय का एक अच्छा स्रोत बन गया है। किसान भाई बड़े पैमाने पर इसकी खेती कर आसानी से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर रहे हैं। किसान भाई मुख्य रूप से अमरूद को बाजार में भेज कर अच्छी आय अर्जित कर रहे हैं साथ–ही–साथ अमरूद से जेली, जूस एवं अन्य उत्पाद बनाकर भी अपनी आय में बढ़ोत्तरी कर रहे हैं। किसान भाई नर्सरी मे एकतरफ विभिन्न किस्मों के मातृ पौधों को उचित प्रबंधन मे लगाकर और उचित प्रबंधन से नई–नई पौधों को तैयार कर विभिन्न जगहों पर भेजकर अपनी आमदनी मे बढ़ोत्तरी कर सकते है। नर्सरी तैयार करने के लिए पौधो की उचित प्रबंधन जैसे पानी का स्रोत, पोषक तत्व, मातृ पौधे, प्रशिक्षित व्यक्ति एवं मजदूर होने पर अत्यधिक लाभ अर्जित कर सकते है।

अमरूद की खेती करने में अग्रणी राज्य निम्न प्रकार हैं–

राज्य	क्षेत्रफल (हे.)	उत्पादन (टन)
उत्तरप्रदेश	52.22	983.06
मध्यप्रदेश	46.06	875.66
बिहार	29.80	434.41

पश्चिम बंगाल	18.23	198.79
छत्तीसगढ़	20.24	185.81

सफलता से तैयार होते हैं अमरूद के पौधे –

अमरूद के पौधे का प्रवर्धन लैंगिक और अलैंगिक दोनों विधियों से किया जाता है। लैंगिंग विधियों से पौधों को बीजों के माध्यम से तैयार जाता है जबकि अलैंगिक विधि में अमरूद को मुख्यतः ग्राफ्टिंग, वड़िंग, कटिंग एवं एयर लेयरिंग विधि से तैयार किया जाता है।

ग्राफ्टिंग

यह विधि अमरूद के पौधों का प्रवर्धन के लिये महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि के द्वारा पौधे को तैयार करने के लिए मूलवृन्त एवं सायन की अवश्यकता होती है। इस विधि मे सर्वप्रथम बीजों से पौधे तैयार किए जाते है। जब पौधा 6–12 माह का हो जाता है तब स्वस्थ्य मातृ पौधे से शयान जिसकी मोटाई पेंसिल के समान हो उपयोग मे ली जाती है। मूलवृन्त को 15–20 सेमी की ऊंचाई तक छोडकर शेष भाग को काट कर हटा देते है एवं मूलवृन्त मे तेज धारदार विषाणु रहित चाकू से बीच मे चीरा लगाते है फिर सायन भी उसी के आकार का लेकर एक पतली पोलिथीन से टाइट बांध देते है ताकि इसमे हवा का प्रवाह ना हो सके। इस प्रकार बंधे पौधों को छायादार जगह पर रखना चाहिए एवं समय–समय पर पानी देते रहना चाहिए। इस प्रकार 20–25 दिन के बाद शयान से पत्तियाँ निकलने शुरू हो जाती है। इस विधि से पौधे तैयार करने के तकनीकी व्यक्ति एवं मजदूर की अधिक जरूरत होती है एवं मूल बृन्त का कभी–कभी अभाव होने के साथ–साथ इसकी कीमत अपेक्षाकृत अधिक हो जाती है जिससे इस विधि मे अधिक खर्चा हो जाता है।

बडिंग

समान्यतः पैच बडिंगके द्वारा पौधे तैयार किए जाते है। इस विधि से तैयार अमरूद के पौधे की वंशक्रम में परिवर्तन लाने के लिये किसी भी पौधे जो पहले से लगे हो का चयन करते हैं। चयनित पौधों में मातृ पौधे के जीवित नोड्स को लेकर तेज धारदार चाकू से चीरा लगाकर स्थापित कर के पतली पोलिथीन से टाइट बांध देते हैं, ताकि इसमें हवा का प्रवाह न हो सके। इस विधि से कम फल देने वाले पौधे या एक ही पौधे में अलग–अलग किस्मों के फल पाने हेतु इस विधि का प्रयोग कर के पौधों की सन्तति में सुधार करते हैं। इस विधि में ज्यादा तकनीकी व्यक्ति एवं मजदूर की आवश्यकता होती है, क्योंकि नोड्स को मातृ पौधे से लाकर एवं नए पौधों में स्थापित किया जाता है।

एयर लेयरिंग

यह विधि भी अमरूद के पौधों का प्रवर्धनके लिये उपर्युक्त एवं महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि के द्वारा पौधे आसान तरीके तैयार किए जा सकते हैं इस विधि में अपेक्षाकृत कम तकनीकी व्यक्ति की आवश्यकता होती एवं इसकी रखरखाव मे भी अपेक्षाकृत कम खर्च होता है। इस विधि द्वारा तैयार पौधे स्वस्थ्य एवं बाग में लगाने पर अधिक सफल होते हैं।

इस विधि से पौधे तैयार करने के लिए एक वर्ष पुराना या पिछली ऋतु में विकसित ऐसी शाखा का चयन करते हैं जोकि पेंसिल की मोटाई के सामान हो एवं कीटों और बीमारियों से रहित हो। चयनित शाखा में दो नोड्स के बीच 2.5–3 सेमी (गार्डनिंग) आकार के छाल को स्वच्छ चाकू से हटा दिया जाताहै एवं घर पर रखे गेहूं के भूसे से तैयार एक माह पुराना कंपोस्ट से उस कटे हुए भाग को ढक देते है कंपोस्ट में नमी होनी चाहिए जिससे कि अनुकूल वातावरण मिलने के कारण जड़ों का फूटान जल्द हो सके। उसके बाद घर पर रखी पतली पारदर्शी पॉलिथीन पट्टी से उस कटे हुए भागों को ढककर सुतली या घर पर रखे कपड़े से बांध दिया जाता है जिससे कि उसके अंदर वायु का प्रवाह न हो सके यह विधि बरसात के समय जैसे– बिहार, उत्तरप्रदेश, इत्यादि राज्यों में जुलाई से सितंबर माह अपनाते हैं जिससे कि जड़ों का फूटान जल्द होने लगते हैं। लगभग 1.5–2 माह के अंदर पारदर्शी पॉलिथीन से जड़ें दिखाई देने लगती है। उसके बाद प्रवर्धित पौधों को मातृ पौधों से अलग कर लेते हैं। उसके बाद प्राप्त नये तैयार पौधों को पोलिथीन मे मिट्टी एवं कम्पोस्ट को अच्छी तरह मिला कर लगाकर छायादार स्थान मे रखते है। इस प्रकार प्राप्त पौधे मे समय–समयपर पानी देते है ताकि इसकी वृद्धि एवं स्वस्थ्य अच्छा हो।यह एक ऐसी विधि है जिससे किसान भाई खुद भी आसानी से बिना कोई खर्च के घर पर रखे सामान का प्रयोग कर आसानी से कर सकते हैं एवं पौधे तैयार कर आसानी से बाजार में भेज कर लाभ अर्जित कर सकते है और अपनी इच्छा के अनुसार नए बगीचे स्थापित कर सकते हैं।

सावधानियाँ

- एयर लेयरिंग के लिए अधिक उत्पादन वाले मातृ वृक्ष का चयन करना चहिये।
- मातृ पौधा कीट एवं रोगों से रहित होना चहिये।

- एयर लेयरिंग बरसात मे जुलाई से सितंबर माह मे करना चहिये ताकि उस समय वातावरण में नमी अधिक होने के कारण शत प्रतिशत जड़ों का फुटान संभव हो।
- गेहूं के भूसे से बनी कंपोस्ट को प्रयोग से पहले इसमें अच्छी नमी बनाए रखना चाहिए।
- पॉलिथीन को अच्छी तरह लपेट कर सुतली या पतले कपड़े से बाँधना चाहिये ताकि भुसे से बने कंपोस्ट अपनी जगह बनी रहे और हवा का परवाह ना हो सके।
- जब पॉलीथीन से जड़ निकल जाए तो मातृ पौधे से अलग कर पॉलिथीन बैग में लगा देना चाहिए और छायादार क्षेत्र में रखना चाहिए।

एयर लेयरिंग के लाभ

- एयर लेयरिंग से प्राप्त पौधे शत–प्रतिशत मातृ पौधों से गुणों मे समान होते हैं एवं एयर लेयरिंग की गयी शाख से जड़ों का फूटान की दर लगभग 95–100% तक होती है।
- बीजू फल् के पौधों की तुलना में शीघ्र और अधिक फल लगते हैं।
- एयर लेरिंग से प्राप्त पौधे आकार में बीजू पौधे की तुलना में छोटे होते है जिसके कारण उद्यानिकी क्रियाओं जैसे– कटाई, तुडाई आदि में आसानी होती है।
- इस विधि द्वारा कम समय में अधिक पौधे तैयार किया जा सकते है जिससे किसान भाई अपनी आय में बढ़ोतरी कर सकते हैं।

हिन्दी खेतों–खलिहानों में पली है, सारे देश के तीर्थ स्थान में खेली है, राज सिंहासन की अपेक्षा जनता के सिंहासन पर बैठी है। प्रेम, राष्ट्र–सेवा व कुर्बानी के उसने गीत गाए है। हिन्दी को हिन्दुस्तान की प्रतिध्वनि बनाना पड़ेगा।

–महादेवी वर्मा

शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में खेती की दृष्टि से लाभदायक : लसोड़ा

मोहनी परमार, अमित कुमार एवं पी.के.एस. गुर्जर

भारत में लसोड़ा प्रमुख रूप से अर्ध पर्णपाती वनों वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। लसोड़ा का वृक्ष लगभग 12–14 मीटर ऊँचा एवं सदाहरित रहता है। सामान्यतः लसोड़ा को लसोरा, गूंदो, भौलु, इण्डियन चेरी, क्लेमी चेरी, सीबेस्टीयन प्लम, लेहसुआ आदि नामों से जाना जाता है। इसका उपयोग मुख्य रूप से पारंम्परिक सब्जी एवं आचार के रूप में होता है। लसोड़ा वृक्ष में सूखा सहन करने की क्षमता अत्यधिक होती है, जिसके कारण इसे उत्तर एवं उत्तर पश्चिम भारत के शुष्क व अर्ध शुष्क क्षेत्रों में बहुतायात में उगाया जाता है। सामान्यतः इसकी खेती की तकनीकी व प्रजातियों के बारे में बहुत कम ही जानकारी उपलब्ध है। इसकी खेती के लिए व्यावसायिक उत्पादन की दृष्टि से भारत के भुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए एक नया आयाम स्थापित कर सकते हैं।

प्रस्तावना–: लसोड़ा (कॉर्डिया मायक्सा) भारत के शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में संभावित रूप से खेती के लिए कम उपयोग होने वाला फलीय पौधा है, जो बोरिजिनेसी परिवार के अंतर्गत आता है। यह एक बहुउद्देशीय पौधा होने के कारण लंबे समय से स्वास्थ्य, पोषण के साथ–साथ अन्य कई मानवीय रोगों के इलाज में उपयोग में लाया जा रहा है। लसोड़ा के कच्चे फलों का स्वाद तीखा या कसैला होता है। इसलिए इसके फलों का उपयोग मुख्य रूप से सब्जी और अचार बनाने में करते हैं, जिसे ऐसे समय पर उपयोग करते हैं। जब पारंपरिक सब्जियों की उपलब्धता (अप्रैल–मई) में दुर्लभ होती है। इसके कच्चे फलों का उपयोग आचार एवं सब्जी बनाने में पके हुए ताजे फलों से शराब बनाने में, लकड़ी का ईधन के रूप में एवं इसकी पत्तियों का उपयोग मवेशियों के लिए चारे के रूप में किया जाता है। बाजार में भरमार होने की स्थिति में इसके फलों को ब्लांच करने के बाद आसानी से निर्जलीकृत किया जा सकता है, ताकि बे–मौसम के समय इसके फलों के द्वारा अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकें। लसोड़ा एक बार स्थापित हो जाने के बाद यह बहुत ही कम सिंचाई के साथ शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में किसानों को अच्छा लाभ दे सकता है। इसकी एक दूसरी प्रजाति कॉर्डिया गरफ जल प्रणाली के साथ शुष्क या सूखे क्षेत्रों में बड़ी आसानी से जीवित रह सकती है या कॉर्डिया मायक्सा से अधिक रोग प्रतिरोधी है। सामान्यतः लसोड़ा के फल मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। जो क्रमशः छोटे फल वाले (2–4 ग्राम) और बड़े फल वाले (7–10 ग्राम) के होते हैं, परन्तु सब्जी और अचार बनाने के लिए हमेशा बड़े फलों का ही व्यवसायिक महत्व है। यह राजस्थान के विभिन्न प्रकार के जंगलों और पश्चिमी घाट के नाम पर्णपाती जंगलों में होता है। महाराष्ट्र में यह नम मानसूनी जंगलों में भी उगता है। इसका व्यवसायिक पौधरोपण राजस्थान के पाली, सिरोही, उदयपुर, अजमेर, जोधपुर और जालौर में देखने को मिलता है।

पोषक तत्व–: लसोड़ा के परिपक्व फल काफी स्वास्थ्यवर्धक होते हैं, क्योंकि वे उच्च औषधीय मूल्यों के साथ कार्बोहाइड्रेड (खाद्य भाग 12.2 ग्राम/100ग्राम) विटामिन, भार्करा और खनिज लवणों से भरपूर होते हैं। इसके कम अम्लीय कच्चे फलों का उपयोग सब्जी और अचार बनाने में किया जाता है। हरे आम के साथ मिश्रित अचार अत्याधिक स्वादिष्ट होता है। लसोड़ा के फल कृमिनाशक, मूत्रवर्धक दाहक और कफ निवारक के लिए लाभप्रद होते हैं।

इसमें पोषक तत्वों की मात्रा निम्न प्रकार है :

पोषक तत्व	पोषक तत्वों की मात्रा (प्रति 100 ग्रा. फलों में)
जिंक	0.02 मिलीग्राम
कॉपर	0.16 मिलीग्राम
कैलोरी (उर्जा)	65 किलो कैलोरी
प्रोटीन	1.8–2.0 ग्राम
वसा	1.0 ग्राम

राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश

कार्बोहाइड्रेट	12.2 ग्राम
आक्जेलिक एसिड	25 मिलीग्राम
राख	2.13 ग्राम
पोटेशियम	1.66 ग्राम
रेशा	0.3 ग्राम
कैल्शियम	40 मिलीग्राम
पेक्टिन	4.5 प्रतिशत
फॉस्फोरस	60 मिलीग्राम
आयरन	0.5 मिलीग्राम

मृदा एवं जलवायु–: लसोड़ा को गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है और 48–50 डिग्री सेंटीग्राट तापमान तक आसानी से जीवित रह सकता है। हालांकि यह ठंड के लिए अतिसंवेदन ील है। इसकी सफल खेती के लिए 250–300 मि.ली. औसत वार्षिक वर्षा पर्याप्त है। इसकी सफल वानस्पतिक वृद्धि, पुष्पन और मौसम में अत्याधिक गर्म स्थिति होती है। यह 1600 मीटर की ऊँचाई उष्णकटिबंधिय के साथ–साथ उपोष्ण कटिबंधिय क्षेत्रों में अच्छी तरह पनपता है।

लसोड़ा के पौधे सीमांत भूमि में उगाए जा सकते हैं, हलांकि, नम, बलुई दोमट मिट्टी जोरदार वृद्धि और इसकी उत्पादकता के लिए सबसे उपयुक्त है। इसे लवणीय भूमि में आसानी से उगाया जा सकता है, जलभराव वाली मृदा इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती है।

किस्में एवं आनुवांशिक परिवर्तनशीलता–: लसोड़ा में देश के विभिन्न हिस्सों में उपज, परिपक्वता का समय, फलों की गुणवत्ता, बीज, गूदे का अनुपात आदि के संबंध मे बडी परिवर्तन शीलता पाई गई है। आई.आई.एच.आर. बंगलौर में लसोड़ा के 15 संग्रहों का मूल्यांकन किया गया । सामान्य तौर पर लसोड़ा दो प्रकार के होते हैं छोटे एवं बड़े प्रकार के फल, छोटे फलों का वजन 2–4 ग्राम तथा इसकी अंकुरण क्षमता 50–60 प्रतिशत तक होती है। इनके बीजों का उपयोग मूलवृन्त तैयार करने के लिए किया जाता है। बड़े फलों के प्रकार में फलों वजन 7–10 ग्राम तथा गूदे की मात्रा 85–90 प्रतिशत तक होती है, बडे फलों के बीजों की अंकुरण क्षमता 20–40 प्रतिशत तक होती है।

वर्तमान में लसोड़ा की मुख्य रूप से दो किस्में उपलब्ध हैं।

1. थार बोल्ड–: इस किस्म को भा.कृ.अनु.प–सी.आई.एच., बीकानेर के द्वारा विकसित किया गया है। इसके फलों का आकार बड़ा एवं फल गुच्छे में आते हैं। इस किस्म की उत्पादन क्षमता 1.5 से 2.0 क्विंटल फल प्रति वर्ष तक प्राप्त होती है। इसके फलों का उपयोग अचार निर्जलीकरण और अन्य प्रसंस्करण उत्पाद बनाने में किया जाता है, यह किस्म शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त है।

2. मरू समृद्धि–: लसोड़ा की इस किस्म को भा.कृ.अनु.प., काजरी, जोधपुर द्वारा विकसित किया गया है, इसमें फल गुच्छों में लगते हैं तथा एक गुच्छे में लगभग 12–15 फल लगते हैं। इस किस्म से प्रति पेड़ 90 किलो तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

पृवर्धन–: लसोड़ा के पौधे व्यावसायिक रूप से बीजों के द्वारा ही उगाए जाते है ताजे पके फलों को काटकर बीज निकालने के बाद उनको तुरन्त बो दिया जाता है, क्योंकि लसोड़ा के बीज रिकेलसीट्रेन्ट प्रकार के होते हैं। जिनके कारण इसके बीजों को फल से अलग करने पर यह बहुत कम समय में ही अपनी अंकुरण क्षमता को खो देते हैं। अगर किसी इच्छित किस्म से हमें उसी के समान नए पौधों का विकास करना हो तो हमेशा ऐसी स्थिति में वानस्पितिक पृवर्धन का उपयोग करना चाहिए। इसके लिए टी–बडिंग, क्लेप ग्राफ्टिंग, वेज ग्राफ्टिंग जैसे विभिन्न प्रकार की विधियाँ उपयोग में लाई जा सकती हैं पैच और आई बडिंग का उपयोग जुलाई–अगस्त के माह में 1 साल पुरानी शाखा से कलिका का चुनाव करके 1000 पी.पी.एम.–आई.बी.ए. के साथ करना चाहिए। लसोड़ा में टी–बडिंग की सफलता लगभग 96–97 प्रतिशत तक देखी गई है।

पौधरोपण–: लसोड़ा के पौधों को वर्गाकार विधि के माध्यम से 5–6 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है एवं भारी मृदा में लसोड़ा के पौधे से पौधे की दूरी 8X8 मीटर रखते हैं, जिससे बागों मे अंतरा सस्यन क्रियाएं आसानी से की जा सके। लसोड़ा के पौधे को रोपने के लिए 60X60X60 से.मी. आकार के गड्डे तैयार करने के बाद मिट्टी और अच्छा सड़ी हुई गोबर की खाद के मिश्रण से भर दें। तत्पश्चात् मानसून के शुरू होते ही पौधों का रोपण तैयार गड्ढों में किया जाना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक–: पौधे रोपने के पहले वर्ष के समय 100 ग्राम नाइट्रोजन एवं 50 ग्राम फास्फोरस और पोटाश की मात्रा प्रति पौधे के हिसाब से देना चाहिए और पोषक तत्व की मात्रा को पौधे की उम्र के साथ–साथ उसी दर से बढ़ाना चाहिए, जिससे पौधे के लिए 5 साल बाद पोषक तत्वों की निश्चित मात्रा तय हो सके, अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की एक किलो खाद को एन.पी.के. की आधी मात्रा के साथ दिसम्बर–जनवरी के दौरान एवं बची हुई शेष एन.पी. के. की मात्रा को मानसून सत्र के प्रारंभ में देना चाहिए।

सिंचाई–: लसोड़ा आमतौर पर शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में उगाया जाता है। इसलिए इसे अत्याधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। सूखे क्षेत्रों में नमी को संरक्षित

करने के लिए पौधे के चारों तरफ मृदा को पॉलिथिन से मल्च कर देना चाहिए तथा कभी–कभी आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई करना चाहिए।

इंटरक्रॉपिंग–: ऐसे क्षेत्र जो वर्षा आधारित एवं शुष्क परिस्थियों वाले हो वहाँ उनमें लसोड़ा के साथ मूंग और ग्वार जैसे दलहनी फसले खरीफ ऋतु में उगाई जा सकती है, जबकि रबी ऋतु में सरसों एवं तारामीरा को इंटरक्रॉप के रूप मे लिया जा सकता है। रबी ऋतु में जो क्षेत्र सिंचित हो उनमें धनिया, जीरा एवं मैंथी जैसी फसलों को भी उगाया जा सकता है और केवल 2 प्रतिशत फूलों से ही फल बनाते हैं जिबरेलिक एसिड की 100 पी.पी.एम. मात्रा का छिड़काव करने से उच्चतम फल सेट (59 प्रतिशित) फूल आने के बाद तक किया जा सकता है।

प्रशिक्षण एवं छंटाई–: लसोड़ा के युवा पौधों को शुरूआती समय के दौरान जमीन से 21 मीटर की ऊँचाई पर 4–6 मचान शाखाओं की अनुमति देकर एक मजबूत ढाँचा प्रदान करने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। लसोड़ा के पौधे से मुख्य तने से निकलने वाले अन्य शाखाओं को हटा देना चाहिए तथा कमजोर, सूखी एवं रोगग्रस्त शाखाओं को भी प्रतिवर्ष समय–समय पर हटाते रहना चाहिए।

लसोड़ा में पुष्पन अवस्था

पुष्पन एवं फलन–: लसोड़ा पौधे रोपण के 5–6 साल बाद फूलने एवं फलने लगते है। फूल आने का समय दक्षिण भारत में दिसंम्बर से मार्च होता है। फूल हमेशा गुच्छो में बनते है। जो छोटे 0.5 से 1 से.मी. आकार एवं आकर्षक हल्के सफेद रंग के होते है। लसोड़ा के फूल सुबह के समय (6–9 बजें तक) खुलते है जिनमें परागण मधुमक्खियों एवं अन्य कीटों के द्वारा होता है और केलव 2 प्रतिशत फूलों से ही फल बनते है, जिबरेलिक एसिड की 100 पी.पी.एम मात्रा का फूल आने के बाद छिड़काव करने से उच्चतम फल सेट (59 प्रतिशत) तक प्राप्त किया जा सकता है। फलों के पकने मे 2 से 3 माह का समय लगता है। प्रारम्भ की अवस्था मे फल गहरे हरे रंग के होतें है। और पकने के बाद फल गुलाबी सुनहरे रंग के हो जाते है। सामान्यतः फल जून से अगस्त माह तक पकते है। परन्तु देश के विभिन्न क्षेत्रों मे फलों की परिपक्वता का समय अलग–अलग हो सकता है।

रोग एवं कीट–: सामान्यतः लसोड़ा रोग एवं कीटों की समस्याओं से मुक्त है इसलिए लसोड़ा में रोग एवं कीटों की समस्याओं का अध्ययन ज्यादा नहीं किया गया है। हालांकि यह लाख कीट के लिए उत्कृष्ट भोजन होता है, जिससे फलों को आर्थिक नुकसान हो सकता है एवं लीफ गाल मिज लसोड़ा की पत्तियों को खाकर पौधे को गंभीर हांनि पहुँचाता है, जिसके नियंत्रण के लिए 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस या किसी अन्य कीटनाशक दवा से करना चाहिए। लसोड़ा की पत्तियाँ अक्सर फफूंद जनित रोगों से सक्रंमित देखी जाती है, इसकी रोकथाम के लिए लसोड़ा के पौधों पर 1–2 बार तांबायुक्त कवकनाशी का छिडकाव करना चाहिए।

लसोड़ा के परिपक्व कच्चे फल

तुडाई, उपज एवं भंडारण–: लसोड़ा के फल का सामान्यतः उपयोग आचार एवं सब्जी बनाने में किया जाता है। फल मई से जून के मध्य तुडाई के लिए तैयार हो जाते हैं। तुडाई के समय भी इसके फलों का रंग हरा होता है। फलों को हमेशा ढंठल के साथ तोड़ना बेहतर माना जाता है, जिससे फल लंबे समय तक ताजे एवं विपणन योग्य बने रहते हैं। लसोड़ा के एक बडे पेड़ से 150–200 कि.ग्रा. तक फल प्राप्त होते है। फलों की तुडाई के बाद भंडारण करने के लिए उपयुक्त मानक उपलब्ध नहीं है, परन्तु दूरदराज के परिवहन हेतु फलों को बांस की टोकरी में रखना बेहतर होता है। कमरे के तापमान पर फलों को लम्बे समय तक संग्रहित नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह फल पीले हो जाते हैं, जिससे अचार एवं सब्जी बनाने के लिए अनुपयुक्त हो जाते हैं इसके फलों का उपयोग प्रसंस्करण में शराब बनाने के लिए किया जाता है।

संतरे में फायटोप्थोरा (गमोसिस) रोग एवं प्रबंधन

डॉ. आर.के.झाड़े, डॉ. डी.सी.श्रीवास्तव, डॉ. पी.एल.अम्बुलकर, श्रीमती रिया ठाकुर एवं डॉ. सुरेंद्र पन्नासे

फायटोप्थोरा एक फफूंद है, जो कि नर्सरी से लेकर फल बागानो तक कई तरह के रोगो का संचार करता है। इसके द्वारा होने वाले रोगो में मुख्यतः नर्सरी अवस्था में डेम्पिंग ऑफ, जड़ गलन तथा बगीचो में तना गलन, गमोसिस फीडर जड़ गलन एवं भूरा गलन तथा भण्डारण गृहो में फलो का भूरा गलन रोग होते है। भारत देश में फायटोप्थोरा के मुख्य रूप से तीन वर्ग पाये जाते है : –

1. फायटोप्थोरा निकोटियाना
2. फायटोप्थोरा सिट्रोप्थोरा
3. फायटोप्थोरा पाल्मीवोरा

गमोसिस : –

गमोसीस एक पादप रोग है, जिसमें गोंद का अधिक मात्रा में स्त्राव पौधे के द्वारा होता है। यह मुख्य रूप से संतरे वृक्षों के तनों में होता है।

महत्वपूर्ण लक्षण : –

फायटोप्थोरा द्वारा नींबूवर्गीय फल वृक्षो में तना गलन, क्राउन रॉट, गमोसिस, पत्र झड़न एवं भूरा गलन जैसे रोग होते है। तना गलन में क्षति के निशान फलवृक्षो के तने में जमीन सतह से लगभग 60 सेंमी. ऊपर उत्पन होते है, फिर धीरे–धीरे नीचे की ओर बढ़ने लगते है। तने की छाल धीरे–धीरे भूरे रंग में परिवर्तित होकर झड़ने लगती है, यह तना क्षेत्र में फायटोप्थोरा रोगकारक के कारण ऊत्तको के मरने से होता है। कुछ सूत्रीय क्षति हुये स्थान से ठहरा हुआ (गम) गोंद स्त्रावीत होता है, जो कि तने से रिसता हुआ दिखाई देता है, इस व्याधि को गमोसिस कहते है।

यदि नर्सरी अवस्था में इस रोग का आक्रमण होता है, तब पौधे पीले होकर सूखने लगते है, यदि इन्ही पौधो को उखाड़कर देखे तो इनमें जड़ो की सड़न पाई जाती है। फल बागानो में काले, भूरे रंग के धब्बों के साथ शुरूआत होने वाली इस व्याधि से वृक्षों की बढ़वार रूकने के साथ–साथ, वह धीरे–धीरे सूखकर मरने लगते है। इस रोग की गंभीर अवस्था में तने व जड़ो के क्षतिग्रस्त स्थान की कोशिकाओ को क्षति पहुँचने से वह पूर्ण रूप से झड़कर मर जाती है, और उक्त शाखा टूटकर नीचे गिर जाती है, मुख्यतः यह रोगकारक फीडर जड़ो के विगलन तक ही सीमित रहता है। निम्न या मन्द रूप से होने वाला ऊतकक्षय इस रोग का प्रथम लक्षण है। लगातार नमी युक्त मौसमो वातावरण फलवृक्षो में पत्रझड़न व फलो के भूरे विगलन को बढ़ावा देता है।

रोग पूर्वकारक : –

अत्याधिक एवं स्थगन जल निकास वाली मृदा, अधिक मात्रा में सिंचाई, रोग ग्राही मूलवृंतो का उपयोग, अधिक समय तक पानी का तने के संपर्क में रहना जिससे रोगकारक का वृक्षो में प्रवेश हो जाता है। रोग प्रभावित बगीचो के आस पास नर्सरी तैयार करना एवं एक ही स्थान में बार–बार नर्सरी तैयार करना।

रोग फैलाव : –

1. रोगी पौध सामग्री के द्वारा यह रोग प्राथमिक रूप से फैलता है।
2. इस रोग का रोग कारक मृदा में या ग्रसित जड़ो में उपस्थित रहता ही है। चाहे इसके लक्षण शीघ्र दिखे या न दिखे।
3. यह फंगस खेतो के औजारो द्वारा एवं मशीनो व उपकरणो द्वारा भी प्रकट होता है।
4. सिंचाई जल भी इस रोग का संचरण फरो व बहाव पद्धति से करने पर करता है।
5. सस्य क्रियाओ द्वारा जड़ो या तनो में होने वाली सूक्ष्म क्षति भी इस रोग के फैलाव में मूख्य भूमिका अपनाती है।

रोग प्रबंधन : –

इस रोग के प्रबंधन के लिऐ रोग प्रबंधन के एकीकृत प्रस्ताव का पालन करना आवश्यक है, जिसमें कि पूर्ववर्ती क्रियात्मक के उपाय एवं रोग–नाशक उपायो का समावेश हो, जो इस प्रकार है : –

1. ऐसे स्थान का चयन जहाँ समुचित जल निकास का प्रबंध हो, जलभराव न होता हो।
2. रोग रहीत पौध सामग्री का प्रयोग।
3. अधिक सिंचाई एवं जड़ो की क्षति होने से रोकना।
4. मूलवृंत में ऊँचाई पर बडिंग हो जो कि 9 इंच से कम न हो।

ज.ने.कृ.वि.वि, कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगॉव, छिंदवाड़ा, मध्यप्रदेश

5. पौधरोपण भी ऊँचाई पर हो, जिसमें बडिंग द्वारा जुड़ा भाग जमीन की सतह से समुचित ऊँचाई पर हो।
6. सिंचाई हेतु डबल रिंग पद्धति का उपयोग हो, जिससे कि तना, पानी के संपर्क में न आये। सूक्ष्म टपक सिंचाई, पद्धति का प्रयोग करना चाहिये।
7. वर्षा पूर्व व बाद में बोर्डो पेस्ट का लेप वृक्षो के तनो में लगाये, जिसमें कि रिडोमिल या एलाइट का भी इस्तेमाल किया जा सकता है।
8. पौध शाला की मिट्टी को भी निर्जिविकृत करके उपयोग करना चाहिये।
9. बडिंग के लिऐ प्रतिरोधि मूलवृंत का उपयोग करना चाहिये।
10. पौध शाला में पौधो की जड़ो को कार्बेन्डाझिम 1 प्रतिशत(1 ग्राम प्रति 1 ली. पानी) के घोल से उपचारित कर लगाना चाहिये।

<u>रोगनाशक उपाय</u> : –

रोग ग्रसित, (गोंद स्त्रावित भाग) को तेज चाकू की सहायता से छिलकर (तने के रोगित भाग को निकालकर छाल के अन्दर के भाग को नुकसान न हो) उसमें मेटालेविझल एम जेड 72 या रिडोमिल का पेस्ट लगाये, एवं उक्त रोगित छाल को खेत से दूर ले जाकर नष्ट कर दे।

- रोगग्रसित वृक्षो में रिडोमिल या इलाइट का फव्वारा करे साथ ही ड्रेंचिंग भी करे।
- नर्सरी सदैव शेडनेट में तैयार करने चाहिये जिसकी मिट्टी को निजंतुकृत्वा होना चाहिये।
- रोपण सामग्री को मेकोजेब एम झेड 68 डब्ल्यू.पी. (2.50 ग्रा./ली.) + कार्बेन्डाझिम 1 ग्राम/ली. पानी में 10 मिनिट तक डुबोकर रखे उसके बाद लगाये।
- बडिंग का स्थान जमीन की सतह से 9 इंच ऊपर होना चाहिये।
- संतरा बागो से नर्सरी दूर होनी चाहिये, तथा अच्छी जल निकास वाली भूमि में पौध लेनी चाहिये।
- एक स्थान में दोबारा नर्सरी तैयार करने से पहले वहां की मिट्टी का पूर्ण निजंतुकृत होना अति आवश्यक है।
- रोग प्रतिरोधी एवं रोगमुक्त तथा प्रमाणित मूलवृंत पर तैयार पौध सामग्री का ही प्रयोग करे।
- बगीचो में जलभराव की स्थिति नहीं होने पाये तथा वृक्षो के तनो में जल का स्पर्श न हो इसका ध्यान रखना आवश्यक है।
- सिंचाई के लिऐ दोहरी वाली पद्धति का प्रयोग करें।
- वर्षा पूर्व एवं वर्षा के बाद वृक्षो में बोर्डोपेस्ट का उपयोग करें।

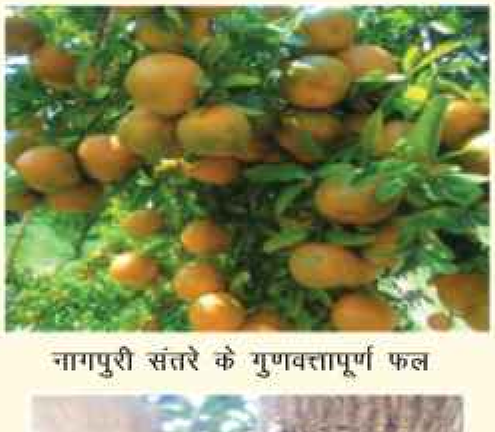

नागपुरी संतरे के गुणवत्तापूर्ण फल

फयटोफ्थोरा रोग से ग्रसित पौधा

संतरे का गमोसिस रोग

वैज्ञानिक द्वारा कृषक को संतरा पौध प्रबंधन की समझाइश

खेती एवं औषधीय रूप से अत्यधिक लाभकारी है: 'पीलू फल'

अमित कुमार, मोहनी परमार एवं पी.के.एस. गुर्जर

पीलू (साल्वोडोरा स्पशीज) एक तेल उत्पादक प्रजाति है, जो साल्बाडोरेसी परिवार से संबंधित है। साल्वोडोरा जीनस के अन्तर्गत पीलू के अलावा और भी कई सदाबहार पेड़ आते हैं, जो अत्याधिक लवणता (नमक) के प्रति सहनशील होते हैं। भारत के शुष्क क्षेत्रों में पीलू की मुख्यतः दो प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जो क्रमशः साल्वोडोरा पर्सिका एवं साल्वोडोरा ओलियोइड्स यह भारत के शुष्क क्षेत्रों राजस्थान, हरियाणा, पंजाब एवं गुजरात में पाए जाने वाले ऐच्छिक हैलोफाइट है यह पौधे उच्च तापमान हल्की ठंड एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में आसानी से जीवित रह सकते हैं। इसकी जड़ें भू-जलस्तर तक गहराई से प्रवेश करती है। पीलू एक महान शक्तिशाली मूल्यों वाला औषधीय पौधा है। वर्तमान समय में पानी की कमी एवं बदलते मौसम को ध्यान मे रखते हुए खेती की दृष्टि से भी कभी लाभप्रद है। इसके फल स्थानीय निवासियों द्वारा खाए जाते हैं। इनके बीज तेल से भरपूर होते हैं, जिसकी मात्रा 40–50 प्रतिशत तक होती है। यह तेल उपयोग करने की दृष्टि से मनुष्य के लिये अखाद्य होता है, परन्तु इसका औषधीय एवं औद्योगिक मूल्य बहुत अधिक होता है।

पीलू वृक्ष

प्रस्तावना–: पीलू एक बहुत ही सामान्य पेड़ है, यह पेड़ अफ्रीका, दक्षिण एशिया के राजस्थानी इलाकों में विशेष रूप से राजस्थान एवं गुजरात में पाया जाता है। लगभग 900 मीटर के मैदानी इलाकों और कम ऊँचाई तक सीमित भाुश्क जल मार्ग एवं चट्टानी गड्डों में पाया जाता है, पीलू फल की बंजर भूमि एवं रेगिस्तानी परिस्थितियों में बढ़ने की क्षमता अद्भुत है।

भारत में यह राजस्थान और गुजरात के अलावा, पंजाबा, हरियाणा, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश के शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है, इनमें राजस्थान एवं पंजाब प्रमुख राज्य है ये राज्य 47000 टन से अधिक की अनुमानित क्षमता वाले मुख्य संग्रहण केंद्र भी है। पीलू (साल्वोडोरा पर्सिका) को आमतौर पर टूथब्रश ट्री, मासर्टड ट्री, मिस्वाक, पिलुडी, मोतीजल (गुजरात), कोटुमगो, टोबोटा के रूप में जाना जाता है। इसका बड़ा ही औषधीय का महत्व है। इसके अलावा वर्तमान एवं भविष्य के लिए अपार संभावनाएं हैं।

फल संरचना–: पीलू के फल मीठे होते हैं, जिसका आनंद आमतौर पर स्थानीय लोग लेते हैं। पीलू की पत्तियां ऊंटों के लिए मुख्य भोजन होती हैं। पीलू का फल उसके बीज की अपेक्षा कम महत्व रखता है, इसके फलों में बीज 44–45 प्रतिशत तक होता है, जिसमें 28 प्रतिशत नमी, 45 से 48 प्रतिशत वसा, 18 प्रतिशत एल्बुमिनोइड, लगभग 23 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 5.5–5.8 प्रतिशत वसा एवं 3.5 प्रतिशत राख होती है। इसके ग्लूकोज, फ्रुक्टोज और सुक्रोज से भरपूर होते है।

उपयोगिता–: प्रकृति ने दुनिया में हर बीमारी के लिए औषधी बनाई है जिनमें से पीलू की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका है। पीलू के फल, बीज, पत्तियाँ, जड़ एवं तना सभी भाग औषधीय एवं औद्योगिक रूप में बहुत महत्वपूर्ण होते हैं, जिनका उपयोग निम्न प्रकार है।

- इसकी टहनियाँ, दाद संबंधी रोगों के लिए अच्छी मानी जाती है, क्योंकि जिसमें एंटी–बैक्टीरियल, एंटी–डायबिटिक, एंटी–फंगल, एंटी–कैंसर, एंटी–अलसर आदि गुण पाए जाते हैं।
- इसकी पत्तियों का उपयोग खांसी के लिए एवं घोड़ों में रेचक बीमारी के लिए किया जाता है।
- इसके फूल द्वारा तेल निकाला जाता हैं जो उत्तेजक और रेचक होता है। फूलों के तेल का उपयोग कीटों, कुष्ठ रोग, सूजन एवं सिर दर्द के इलाज में करते है।
- इसके पीले फलों का उपयोग बढ़ी हुई तिल्ली, जठर भाोध, पित्त, गठिया एवं मूत्र संबंधित रोगों में किया जाता है। इसके फल मीठे व खाने योग्य होते हैं। जिसके गूदे में ग्लूकोज, फ्रक्टोज व सुक्रोज पाया जाता है। दुधारू पशुओं को पीलू का फल खिलाने से दूध की मात्रा बढ़ जाती है।

राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्यप्रदेश

- शुद्ध तेल का उपयोग मोमबत्ती के लिए, आमवात दर्द में, साबुन या डिटर्जेंट उद्योगों में एवं नारियल तेल के पूरक के रूप में किया जाता है।

- पीलू के पौधों की तने की छाल का उपयोग गैस्ट्रिक परेशानी एवं एस्केरिफ्यूज के रूप में किया जाता है।

मृदा एवं जलवायु—: पीलू उगाने के लिए बलुई से हल्की बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है। यह लवणता को भी सहन कर सकता है। यह अंतर्देशीय गैर लवणीय मिट्टी में समुद्र तट के साथ अत्यधिक लवणीय मिट्टी में अच्छी तरह से बढ़ता है।

यह उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की शुष्क जलवायु में अच्छी तरह से फलता एवं फूलता है। इसके लिए वार्षिक वर्षा 200 मि.मी. पर्याप्त होती है। यह अधिक ठण्ड के प्रति संवेदनशील होता है। इसे 3 से 48 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान तक आसानी से उगाया जा सकता है।

किस्में—: पीलू की अभी तक कोई वर्णनात्मक किस्में उपलब्ध नहीं हैं, हालांकि प्राकृतिक रूप से पीलू की भारत में दो प्रजातियाँ उपलब्ध है। जिनका व्यावसायिक उद्देश्य के लिए सर्वेक्षण और दोहन किया जाना चाहिए। वर्तमान में पीलू की नई किस्म विकसित करने के लिए उच्च तेल वाले मीठे फल, डिबेंजिल थायोयूरिया, डिबेंजिल यूरिया और थियो ग्लूकोसाइड ग्लूकोट्रोपोलिन जैसे यौगिकों के निम्न स्तर वाले पेड़ों का चयन किया जाना चाहिए। जिससे तेल को अखाद्य से खाद्य बनाया जा सके। पीलू की वैज्ञानिक खेती की शुरूआत करने के साथ–साथ किसानों को लाभ दिलाने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि जल्द से जल्द इसकी नई उन्नतशील किस्में विकसित की जाएँ।

प्रवर्धन—: पीलू को आमतौर पर बीज एवं जड़ सकर्स के द्वारा प्रसारित किया जाता है। पीलू के ताजे बीज आसानी से अंकुरित हो जाते हैं। जुलाई से अगस्त के माह में पॉलीथिन की थैलियों में मिट्टी एवं गोबर के तैयार मिश्रण को भरकर बीजों की बोवनी कर देना चाहिए। जिससे अच्छे स्वस्थ नए पौधे तैयार हो जाते हैं, रोपण के लिए 10–11 माह पुराने पौधों का उपयोग करना चाहिए। पीलू का प्रवर्धन एयर लेयरिंग (गूटी) के द्वारा भी किया जा सकता है। वर्तमान में नए पौधे विकसित करने के लिए सूक्ष्म प्रवर्धन विधि का उपयोग भी सफल साबित हुआ।

पौधरोपण—: पीलू के एक साल पुराने पौधों को मानसून की शुरूआत में रोपण के लिए उपयोग करना चाहिए। ताकि पौधों को स्थापित होने के लिए पर्याप्त समय मिल सके, जिससे एक बार स्थापित होने बाद उन्हें बाद में विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं होती। पीलू के पौधों का रोपण 5–6 मीटर की दूरी पर किया जाता है। जिसके लिए 60X60X60 से.मी. आकार के गड्डों को अप्रैल–मई माह में तैयार करके 1:1 के मिट्टी एवं गोबर की खाद के मिश्रण से भर दिया जाता है।

सिंचाई—: पीलू के पौधों की प्रारंभ अवधी के दौरान सिंचाई आवश्यक है। एक बार पौधा स्थापित होने के बाद तने के चारों ओर ढलान देकर मल्चिंग और जल संचयन ही पेड़ों की भाक्ति और उत्पादन के लिए बागानों में गर्मी के महीनों में नियमित सिंचाई आवश्यक है।

प्रशिक्षण और सिंचाई—: पीलू में एक साल से अधिक पुरानी भाखाओं पर फूल एवं फल आते हैं, इसलिए पीलू में नियमित छंटाई की आवश्यकता नहीं होती है। एक दूसरे में उलझी हुई भाखाएँ, रोगग्रस्त, क्षतिग्रस्त एवं टूटी शाखाओं को हटा देना चाहिए, जिससे पौधों को सूर्य का प्रकाश एवं हवा पर्याप्त मात्रा मिल सके। कुछ शाखाओं को तीन साल में एक बार 50 प्रतिशत तक काटने से उत्पादन में बढ़ावा मिलता है।

खाद एवं उर्वरक—: पीलू की जड़ें मृदा में काफी गहराई तक जाती हैं, जिससे यह आसानी से पोषक तत्व एवं पानी ले लेती हैं। मानसून के दौरान प्रतिवर्ष 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फास्फोरस एवं पोटाश के साथ 10–15 कि.ग्रा. गोबर की खाद प्रति पेड़ की दर से देना चाहिए, जिससे पेड़ों की वृद्धि एवं फलों की उपज मे बढ़ोत्तरी होती है।

इंटरक्रॉपिंग—: पीलू के पौधों को मिश्रित रोपण के रूप मे कृषि वानिकी प्रणाली में लगाया जा सकता है। अंतरवर्तीय फसल के रूप मे पीलू के साथ चना, ग्वार, मोंठ एवं तिल को उगाया जा सकता है। जिससे अतिरिक्त आय मिल सके।

पुष्पन एवं फलन—: पीलू में पुष्पन एवं फलन रोपण के लगभग 4 साल बाद होने लगता है, इसमें फूल जनवरी से मार्च में आते हैं और फल मई से जून में पक जाते हैं। जैसे–जैसे फल परिपक्व होते हैं। गूदे की मात्रा बढ़ती जाती है एवं बीज में तेल मात्रा कम होती जाती है।

पुष्पन एवं प्रारंभिक फलन अवस्था

रोग एवं कीट—: पीलू में फाइलोडी रोग फाइटोप्लाज्म के कारण होता है। पीलू की साल्वाडोरा प्रजाति में यह रोग अधिक होता है। पीलू में रस चूसने वाले कीट रोग जनक के वाहक के रूप में काम करते हैं। पित्त कीट शाखाओं पर गॉल बनाते हैं और वृद्धि को रोकते हैं। पित्त कीट और रोग वाहकों के प्रबंधन के लिए इमिडाक्लोप्रिड 0.03 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

तुड़ाई एवं उपज—: पीलू के फल पकने पर छोटे, गोलाकार, सुगंधित जामुनी पीले से लाल हो जाते हैं। इसके फल बहुत मुलायम, त्वचा मुलायम होती है, इसलिए फलों की तुड़ाई हाथों से करना चाहिए, जब 80 प्रतिशत से अधिक फल पक जाए, क्योंकि पीलू एक गैर–जलवायु फल है। प्रारंभिक अवस्था में बीज उत्पादन कम होता है। (1.5 कि.ग्रा.) औसतन 10 साल के पेड़ से लगभग 10 किलो बीज एवं 20 साल के पेड़ से 35 किलो बीज प्रति पेड़ प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सकता है। एक हेक्टेयर पीलू के बगान से 10 वें वर्ष में 4 टन बीज एवं 20वें वर्ष में 12–14 टन बीज प्राप्त किए जा सकते हैं।

औषधीय गुणों से भरपूर

सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है।

– भारतेन्दु हरिशचन्द्र

शुष्क राजस्थान में फालसा की खेती

डॉ. रमेश सांवल[1], श्री राकेश[2], डी. के. जाट[3] एवं रेखा रेगर[4]

फालसा (ग्रेविया ऐसियाटिका) भारत के शुष्क क्षेत्रों में उगाया जाने वाला एक फलदार पौधा है जो कि टीलिएसी कुल में आता है। फालसा को शरबत बेरी या छरबेरी भी कहते हैं। इसका उत्पति स्थान भारत को ही माना गया है। फालसा भारत में मुख्य रूप से पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान में की जाती है। फालसा की खेती व्यवसायिक स्तर पर मुख्यतः बड़े शहरों के आस पास ही की जाती है ताकि इसके फलों को जल्दी से जल्दी मंडी में ले जाया जा सके, क्योंकि इसका फल पकने के बाद जल्दी खराब हो जाता है। यह एक सहिष्णु सूखारोधी पौधा है जो अनुपजाऊ एवं अधिक नमक वाली मिट्टी में आसानी से उगाया जा सकता है। फालसा में जल्दी एवं नियमित फलन और बौनापन होने के कारण इसको दूसरे फलों के बाग में फिलर फसल के तौर पर भी उगाया जाता है, जिससे बागवान को मुख्य फसल के उत्पादन से पहले एवं अतिरिक्त आमदनी होती है। फालसा को शुष्क क्षेत्रों में जहाँ पर पानी की उपलब्धता बहुत ही कम और मिट्टी में नमक की अधिक मात्रा होती है, में आसानी से उगाया जा सकता है और बहुत ही कम देख–रेख के साथ अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। फालसा का फल करीब एक सेंटीमीटर व्यास वाला गोलाकार होता है। कच्चे फालसा का रंग मटमैला लाल और जामुनी होता है। मई– जून में पूरी तरह पकने पर फालसा का रंग काला हो जाता है। इसका स्वाद खट्टा–मीठा या चटपटा होता है। फल में बीज पर गूदे की पतली परत होती है। फालसे की झाड़ी में काँटे नहीं होते। इन्हें हाथों से तोड़ते हैं।

फालसा का उपयोग

फालसा के फलों का उपयोग मुख्यतः जूस, शरबत और पुष्टिकारक पेय आदि बनाने के लिए किया जाता है। फालसा के पके हुए फल स्वाद में थोड़े खट्टे–मीठे होते हैं, जो कि विटामिन ए और सी का अच्छा स्रोत होते हैं। फलों में 50–60 प्रतिशत जूस की मात्रा, 10–11 प्रतिशत शुगर और 3.63–4.64 प्रतिशत अम्लीयता होती है।यह मैग्नीशियम, पोटेशियम, सोडियम, फॉस्फोरस, कैल्शियम, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, लोहा और एंटीऑक्सीडेंट आदि का भी अच्छा स्त्रोत होने के कारण स्वास्थ्य के लिए काफी लाभदायक माना जाता है। फालसा के फलों में सिट्रिक एसिड, एमीनो एसिड, फ्रेडीलिन, किम्फेराल,बेटयूलीन, ग्रेवियानोल, बीटा एमिरिदीन, क्वेरसेटिन, ल्यूपियाल, ल्यूपिनोन, सायनीडीन, डेल्फीनिडीन और टैरेक्सास्टेरोल तत्व भी होते है। फालसा के सेवन से रक्तचाप और कोलेस्ट्रॉल के स्तर को नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे ह्रदय के रोग का खतरा कम हो जाता है। फालसा में मौजूद पोषक तत्वों में कैंसर से लड़ने की क्षमता होती है। फालसा के सेवन से रक्त में हीमोग्लोबिन के स्तर में सुधार होता है जिससे एनीमिया का खतरा कम हो जाता है। फलों

[1]सहायक प्राध्यापक, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय कृषि महाविद्यालय, देवली टोंक
[2]वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, शस्य विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर
[3]सहायक प्राध्यापक, उद्यान विज्ञान विभाग, पंडित दीनदयाल उपाध्याय कृषि महाविद्यालय, देवली टोंक
[4]कृषि पर्यवेक्षक, कृषि विभाग, जयपुर

की तासीर ठंडी होने के कारण यह उमस भरी गर्मी और उससे होने वाले बुखार से बचने में लाभदायक होता है। फालसा का रस आसानी से पचने और गर्मी में प्यास से राहत पहुंचाने वाला होता है। फालसा शरीर से अतिरिक्त अम्लता कम करके पाचन संबंधी विकार, पित्ताशय और जिगर की समस्याओं को दूर कर, भूख को बढ़ाता है। ठसकी शाखाएँ लम्बी एवं सीधी होती हैं जिसके कारण इनका उपयोग टोकरियाँ और रस्सियाँ बनाने व अंगूर के बगीचों में बेलों को चढ़ाने के लिए जाल बनाने के लिए भी किया जाता है। इसकी पत्तियों का उपयोग बकरी और पशुओं के लिए हरे चारे के रूप में किया जाता है।

किस्में

सामान्यतः फालसा की दो तरह की किस्में क्रमशः देशी एवं शरबती के तौर पर उगाया जाता है। फालसा की किस्मों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है – लम्बी और बौनी किस्में **(तालिका –1)**, जिसमें से लम्बी किस्मों से ज्यादा पैदावार प्राप्त होती है।

तालिका 1: लम्बी और बौनी किस्मों की विशेषताएँ

विशेषताएँ	लम्बी किस्म	बौनी किस्म
पौधे की लम्बाई (मी.)	4.5	3.4
तने में गांठों में बीच की लम्बाई (सेमी.)	101.6	97.6
पत्ती का आकार (सेमी.)	20 18	18 15
पत्ती के निचले हिस्से का रंग	हल्का हरा	हरा सफेद
पैदावार (किलोग्राम)	5.2	3.5
फल का आकार (सेमी.)	2.07	2.26
फल का वजन (ग्राम)	0.47	0.54
गूदा (प्रतिशत)	81.5	60.3
जूस (प्रतिशत)	50.4	34.6
टी. एस. एस. (प्रतिशत)	14.0	12.1
अम्लीयता (प्रतिशत)	4.64	3.63

प्रवर्धन

बीज द्वारा – फालसा का प्रवर्धन बीज के द्वारा किया जाता है। बीज से तैयार किये गए पौधे 20–25 महीने के बाद फल देना शुरू कर देते हैं। इसके बीजों में साधारण भण्डारण पर जीवन क्षमता 90–100 दिन तक रहती है लेकिन शीत भण्डारण पर बीजों की जीवन क्षमता 180 दिन तक बढ़ जाती है। बीजों का अंकुरण 15 से 20 दिन में हो जाता है। बीजों में अंकुरण की समयावधि को कम करने के लिए इनको 24 घंटे के लिए पानी में डुबोया जाता है।

वानस्पतिक प्रवर्धन – फालसा में कई प्रकार के वानस्पतिक प्रवर्धन की तकनीकों से सफलतापूर्वक प्रवर्धन किया जाता है, लेकिन व्यावसायिक स्तर पर कलम के द्वारा प्रवर्धन ही प्रचलित है। कलम से उत्पन्न पौधे ज्यादातर एक जैसे और मातृ पौधे के समान होते है। आई.बी.ए. के उपयोग से कलम द्वारा किये गए प्रवर्धन में सफलता की दर बढ़ायी जा सकती है और यह पाया गया है कि आई.बी.ए. (200 पी.पी.एम.) घोल से उपचारित कलमों में सबसे ज्यादा जड़ें निकलती हैं।

रोपण – फालसा में रोपण के लिए जुलाई–अगस्त के महीने सबसे उपयुक्त होते हैं, हालांकि फरवरी–मार्च के महीनों में भी रोपण किया जा सकता है। छह से आठ महीने के बीजीय पौधे रोपण के लिए अच्छे माने जाते हैं। फालसा का रोपण 2.5 से 3.0 मीटर दूरी पर किया जाता है, लेकिन सघन पौध रोपण (युगल पंक्ति रोपण प्रणाली) में पौधे से पौधे व पंक्ति से पंक्ति की दूरी क्रमशः 0.60 x 0.60 x 0.60 मीटर रखी जाती है। इस विधि में पौधों की संख्या लगभग दोगुनी हो जाती है और उत्पादन 25 प्रतिशत बढ़ जाता है। फालसा फसल उत्पादन के लिए कटाई एवं छंटाई एक महत्वपूर्ण शस्य क्रिया है, क्योंकि फालसा में फल केवल नई शाखाओं पर गुच्छों में आते हैं।

कटाई एवं छंटाई – फालसा में प्रतिवर्ष कटाई एवं छंटाई की आवश्यक होती है। इससे पैदावार अच्छी और फल उत्तम गुणवत्ता के साथ बड़े आकार के होते हैं। कटाई–छंटाई के लिए वांछनीय ऊंचाई मिट्टी की सतह से 0.8 से 1.2 मीटर रखते हैं। कटाई–छंटाई का सबसे उत्तम समय 15 दिसंबर से 15 जनवरी होता है, क्योंकि इस समय

पर पौधे सुप्तावस्था में होते हैं।

सिंचाई – फालसा एक सूखारोधी फसल है, लेकिन अच्छी पैदावार और उच्च गुणवत्ता के फल लेने के लिए इसमें सिंचाई की आवश्यकता होती है। साधारणतयाः इसमें सर्दी के मौसम में सिंचाई की जरूरत नहीं होती है, लेकिन फरवरी के दूसरे या तीसरे सप्ताह में खाद व उर्वरक देकर पहली सिंचाई करनी चाहिए और उसके बाद मार्च से मई तक पंद्रह से बीस दिन के अंतराल पर पानी देते रहना चाहिए।

खाद व उर्वरक – प्रतिवर्ष 60 से 80 ग्राम नाइट्रोजन, 20 से 25 ग्राम फॉस्फोरस और 10 से 20 ग्राम पोटाश प्रति पौधा के साथ–साथ 15 से 20 किलो गोबर की खाद फरवरी के दूसरे या तीसरे सप्ताह में अच्छे फल उत्पादन के लिए देनी चाहिए। इसके अलावा सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है जो फल के आकार और जूस की मात्रा को प्रभावित करते हैं। इसलिए फूल खिलने से पहले और फल ठहराव के समय जिंक सल्फेट और आयरन सल्फेट का 0.5 प्रतिशत की दर से छिड़काव करना चाहिए।

अंतःवर्तीय फसलें – शुरूआती दो–तीन सालों में बारिश के मौसम में हरी खाद वाली फसलें जैसे कि मूंग, उड़द, ग्वार आदि को लगाना चाहिए। इन हरी खाद वाली फसलों को फूल आने के समय डिस्क हैरो से मिट्टी में दबा दिया जाता है जो कुछ दिनों के बाद सड़कर खाद बन जाती है और मिट्टी की उर्वरता व उत्पादकता शक्ति को बढ़ाने के साथ–साथ पैदावार को भी बढ़ाती है।

निराई–गुड़ाई – खरपतवार नियंत्रण और फार्म क्षेत्र की खाद या कम्पोस्ट को मिलाने के लिए कटाई छंटाई के बाद एक से दो हल्की जुताई करनी चाहिए और उसके बाद यदि जुताई की और आवश्यकता हो तो वह पहली सिंचाई के बाद करनी चाहिए जो खाद को मिट्टी में मिलाने और खरपतवार नियंत्रण में सहायता करती है।

फूल और फलन – फालसा में फूल आने का समय फरवरी–मार्च होता है तथा फूल नयी शाखाओं पर आते हैं। इसके फूल में परपरागण मधुमक्खियों के द्वारा होता है। फल अप्रैल–मई में पकते हैं। फलों का रंग पकने के समय लाल–गुलाबी, आकार 2.0–2.5 सेमी. और स्वाद खट्टा–मीठा होता है। वृद्धि हार्मोन के उपयोग से फालसा के फलों की गुणवत्ता एवं उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। इथरेल (1000 पी.पी.एम.) के छिड़काव से जल्दी और एक समान फल पकते हैं। जिब्रेलिक अम्ल (100 पी.पी.एम.) के उपयोग से फलों का आकार और उपज को बढ़ा सकते हैं।

फलों की तुड़ाई एवं भण्डारण – फालसा के फल अप्रैल महीने के अंतिम सप्ताह से पकने शुरू हो जाते हैं और जून के प्रथम सप्ताह तक फलों की तुड़ाई होती रहती है। केवल पके हुए फलों को रोजाना तोड़ना चाहिए क्योंकि कच्चे फल तुड़ाई के बाद नहीं पकते हैं। पके हुए फलों का भण्डारण सामान्य (कमरे के) तापमान पर एक या दो दिन से ज्यादा नहीं किया जा सकता, इसलिए तुड़ाई के तुरंत बाद इनकी बिक्री करना अत्यंत आवश्यक होता है। जबकि शीत भंडारण सात डिग्री सेंटीग्रेट तापमान पर सात से आठ दिनों के लिए किया जा सकता है। फालसा से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए इसके मूल्य संवर्धित उत्पाद जैसे जूस, शरबत, तैयार पेय पदार्थ और नेक्टर आदि भी बनाये जाते हैं। लगभग चार–पांच साल पुराने पौधे से छह से सात किलो प्रति पौधा फल की पैदावार होती हैं, लेकिन सघन पौध रोपण में यह उपज चार से पांच किलो प्रति पौधा होती है।

कीट एवं बीमारियाँ

तना छेदक इल्ली – तना छेदक कीड़े की इल्ली तना और शाखाओं में छेद करके अंदर से कैंबियम को खाती रहती है। यह पानी एवं खनिज लवणों को अवशोषित करने की क्षमता को प्रभावित करती है, जिसके बाद पौधा तुरंत सूखकर मर जाता है। इसके नियंत्रण के लिए छेद में केरोसीन का तेल या पेट्रोल के इंजेक्शन डालकर रूई एवं गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिए। यह प्रक्रिया कटाई छंटाई के तुरंत बाद दिसंबर–जनवरी के महीने में करनी चाहिए।

अनार की उन्नत उत्पादन तकनीकी

दुर्गाशंकर मीना,[1] मूलाराम[1], और मनोहर लाल मीना[2], अशोक कुमार मीना[3] और विक्रम सिंह मीना[4]

परिचय

अनार (Punica granatum L.) भारत में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण फल फसल है। पुनिकेसी कुल की इस फसल को विश्व के उष्ण एवं उपोष्ण क्षेत्रों में उगाया जाता हैं। इसका उत्पत्ति स्थान ईरान है। इस फल में गुणसूत्रों की संख्या 2n=2x=18 हैं तथा फल का प्रकार बलुस्टा सरस हैं। इस फल का खाये जाने वाले भाग को एरिल के नाम से जाना जाता हैं। अनार उपोष्ण जलवायु का फल वृक्ष होने के कारण यह सूखा सहनशील होने के साथ–साथ कम लागत में अधिक आमदनी देता है। अनार के फल कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम, लौह तत्व तथा सल्फर के अच्छे स्रोत हैं। इसका प्रयोग खाने एवं रस के रूप में किया जाता हैं। विश्व में अनार की खेती स्पेन, मोरक्को, मिस्र, ईरान, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान जैसे भूमध्यसागरीय देशों में बड़े पैमाने पर की जा रही है। इसकी खेती म्यांमार, चीन, अमेरिका और भारत के कुछ हिस्सों में की जाती है। भारत दुनिया में अनार की खेती करने में प्रथम स्थान रखता है। भारत में प्रमुख अनार उत्पादक राज्य महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु और राजस्थान हैं।

भारत में अनार उगाने वाले राज्यों में महाराष्ट्र अग्रणी राज्य है। इस राज्य में अनार का कुल क्षेत्रफल 90 हजार हेक्टेयर तथा उत्पादन 9.45 लाख मेट्रिक टन एवं उत्पादकता 10.5 मेट्रिक टन है। महाराष्ट्र राज्य भारत में अनार के कुल क्षेत्रफल का 78 प्रतिशत और देश में कुल उत्पादन में 84 प्रतिशत योगदान देता है। राजस्थान में अनार को जोधपुर, बाड़मेर बीकानेर, चूरू तथा झुंझुनू में व्यवसायिक स्तर पर उगाया जाता हैं। अनार सबसे पसंदीदा टेबल फल में से एक है। ताजे फल का उपयोग टेबल के उद्देश्य के लिए किया जाता है और इसका उपयोग फल रस, सिरप, स्क्वैश, जेली, रस केंद्रित, कार्बोनेटेड कोल्ड–ड्रिंक्स, अनार दाना की गोलियाँ, अम्ल आदि जैसे प्रसंस्कृत उत्पादों की तैयार के लिए भी किया जा सकता है। अनार फल पौष्टिक, खनिज, विटामिन और प्रोटीन से भरपूर होता है। कुष्ठ पीड़ित रोगियों के लिए इसका रस बहुत उपयोगी होता है।

अनार एक पतझड़ी झाड़ी है जो 6–10 मीटर की ऊंचाई तक बढ़ती है। इसमें बहुत सारी छोटी छोटी सकड़ी व अंडाकार पत्तियाँ होती है तथा इसके फूलों में 3–7 लाल रंग की चमकीली पंखुड़ियाँ होती है। यह एक स्वपरागित फल हैं। वानस्पतिक रूप से इसके फल को बेरी कहा जाता है क्योंकि इसमें बीज और गूदा दोनों एक ही फूल से विकसित होते हैं। इस फल की त्वचा के मुख्य रूप से दो भाग होते हैं

1. पेरिकार्प– यह फल का सबसे बाहरी भाग होता है।
2. मेसोकार्प– यह फल का आंतरिक भाग होता हैं और इससे फल एरिल जुड़े हुए होते हैं। इनकी संख्या एक फल में 200–1400 तक हो सकती हैं।

जलवायु

अनार एक उपोष्ण जलवायु का पौधा है तथा पाला व शुष्कता के प्रति सहिष्णु है। फल विकास एवं पकने के समय गर्म एवं शुष्क जलवायु होने पर उत्तम गुणवत्ता के फल लगते हैं। कम सर्दी वाले क्षेत्रों में यह पर्णपाती होता है, जबकि उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में सदाबहार होता है। समुद्र तल से 500 मीटर ऊपर का क्षेत्र अनार की खेती के लिए सबसे उपयुक्त होता है। अनार फल की सफलतापूर्वक खेती के लिए शुष्क और अर्ध–शुष्क मौसम आवश्यक होता है। ऐसे क्षेत्र जहां ठंडी सर्दिया और उच्च शुष्क गर्मी की उपस्थित रहती है.। इन क्षेत्रों में गुणवत्तायुक्त अनार के फलो का उत्पादन होता है। अनार का पौधा कुछ हद तक ठंढ को सहन कर सकता है। इसे सूखा–सहिष्णु फल भी माना जा सकता है, क्योंकि एक निश्चित सीमा तक सूखा तथा क्षारीयता एवं लवणता को सहन कर सकता है, परन्तु यह पाले के प्रति सवेंदनशील होता है। इसके फलों के

[1,3,4]कृषि अनुसंधान केंद्र, मंडोर (कृषि वि ववविद्यालय, जोधपुर)
[2]कृषि महाविद्यालय, बायतु, बाड़मेर (कृषि वि ववविद्यालय, जोधपुर)

विकास के लिए अधिकतम तापमान 35°–38°c आवश्यक होता है। इसके फल के विकास एवं परिपक्वता के दौरान गर्म एवं शुष्क जलवायुवीय दशाएँ आवश्यक होती है।

मिट्टी

जल निकास युक्त गहरी, भारी दोमट भूमि इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहती है। मिट्टी की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इसे कम उपजाऊ मिट्टी से लेकर उच्च–उपजाऊ मिट्टी तक विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है। हालांकि, गहरी दोमट मिट्टी में यह बहुत अच्छी उपज देता है। यह कुछ हद तक मिट्टी में लवणता और क्षारीयता को सहन कर सकता है। अनार की खेती के लिए मृदा का पीएच मान 6.5 से 7.5 के बीच उपयुक्त रहता हैं। अनार के पौधे 6.0 डेसी साइमन्स प्रति मीटर तक की लवणता तथा 6.78 प्रतिशत विनिमयशील सोडियम को सहन कर सकते हैं। इसके अच्छे उत्पादन के लिए मिट्टी उचित जल निकास युक्त होनी चाहिए हैं। यह फल मृदा नमी के उतार–चढ़ाव के प्रति सवेंदनशील होता हैं जिसके कारण फल फटने की एक गंभीर समस्या पैदा हो जाती हैं जो इस फसल की एक प्रमुख समस्या हैं।

भूमि तैयारी

भूमि में मोल्ड बोल्ड हल से 2–3 गहरी जुताई करें। इसके तुरन्त बाद हैरो से जुताई करें ताकि मिट्टी महीन हो जाये इसके बाद समतलीकरण कर देवें।

प्रवर्धन विधि

अनार के पौधे को व्यावसायिक रूप से कलम, गूटी और टिश्यू कल्चर के माध्यम से प्रसारित किया जा सकता है।

कलम विधिः यह आसान तरीका है लेकिन इसकी सफलता दर कम है, इसलिए यह विधि किसानों के बीच लोकप्रिय नहीं है। कटिंग या कलम के लिए 9 से 12 इंच (25 से 30 सेमी) लम्बी एक साल पुरानी शाखा जिसमें 4–5 कलियां हो का चयन कर लें। कलम लगाने के लिए सबसे उपयुक्त समय फरवरी माह होता हैं।

गूटी या एयर लेयरिंग विधिः नए पौधों को बढ़ाने के लिए किसानों द्वारा इसका सबसे आम अभ्यास है। एयर लेयरिंग विधि में सबसे पहले 2–3 साल पुराने सवस्थ पौधों का चुनाव कर लेवें। एयर लेयरिंग विधि में बेहतर रूटिंग के लिए 2 से 3 साल पुराने स्वस्थ पौधों का चयन करें। इसके बाद पेंसिल आकार की शाखा का चुनाव करें। इसके बाद चुनी गयी शाखा में से 2.5– 3.0 सेमी. छाल को उतार लेवें, इसके बाद जड़ फुटान हार्मोन से 1.5– 2.5 ग्राम की दर से उपचारित करके नम मॉस घास या फिर कोकोपिट से छिले हुयी शाखा को लपेट देवें। इसके बाद 300 गेज की पॉलीथिन शीट से घास या फिर कोकोफिट से लपेट देवें। पॉलीथिन सीट पारदर्शी होनी चाहिए, इसका फायदा यह है की जड़ें आसानी से दिख जाती है। एयर लेयर या गूटी बांधने के बाद IBA और सेराडेक्स B (1,500 से 2,500 पीपीएम) से उपचार करें। इस प्रकार अच्छी रूटिंग 25 –30 दिन में संम्पन्न हो जाती है। एकल पौधे से लगभग 150 से 200 गूटी पौंधे प्राप्त किये जा सकते हैं। बारिश का मौसम गूटी के लिए सबसे उपयुक्त है। जड़ों के लिए लगभग 30 दिन का समय लगता हैं। 45 दिनों के बाद, गूटी किये पौधों को मातृ पौधे से अलग कर देना चाहिए। जब गूटी किये गए भाग की जड़ें भूरे रंग की होने लग जाये तब गूटी किये भाग से तुरन्त नीचे भाग से कट लगाकर मातृ पौधे से अलग कर लेना चाहिए। इसके बाद इन्हें पॉलीबैग में उगाया जाता है और शेड नेट या ग्रीनहाउस के तहत 90 दिनों तक सख्त करने के लिए रख दिया जाता है।

ऊतक संवर्धन विधिः ऊतक संवर्धन पौधों के गुणन की एक अग्रिम और तीव्र तकनीक है। इस तकनीक का उपयोग करके थोड़े समय के भीतर रोग मुक्त एवं पर्याप्त रोपण सामग्री प्राप्त की जा सकती हैं। इस विधि में अनार के पौधे को विश्वसनीय स्रोत से खरीदना चाहिये।

उन्नत किस्में

अनार की उन्नत किस्मों में नरम बीज वाली किस्में– गणेश, जालौर सीडलेस, मृदुला, जोधपुर रेड, G–137 के साथ–साथ वर्तमान में गहरे लाल बीजावरण वाली भगवा (सिंदूरी) किस्म भारतवर्ष में उगाई जा रही हैं। गणेश किस्म के फल गुलाबी–पीले रंग से लाल–पीले रंग के होते हैं। इस किस्म में नरम बीज होते हैं।

एन. आर. सी. हाइब्रिड –6 और एन. आर. सी. हाइब्रिड –14 दोनों ही अनार की किस्मे वर्तमान में प्रचलित किस्म भगवा से उपज एवं गुणवत्ता बेहतरीन है

एन. आर. सी. हाइब्रिड –6 इस किस्म में फल के छिलके एवं एरिल का रंग लाल,नरम बीज, फल का स्वाद मीठा, न्यूनतम अम्लता (0. 44 प्रतिशत) तथा अधिक उपज 22.52 किलोग्राम प्रति पौधा एवं प्रति हेक्टेयर उपज 15.18 टन तक होती है

एन. आर. सी. हाइब्रिड –14 इस किस्म में फल के छिलके का रंग गुलाबी एवं एरिल का रंग लाल, नरम बीज, फल का स्वाद मीठा, न्यूनतम अम्लता (0.45 प्रतिशत) तथा अधिक उपज 22.62 किलोग्राम प्रति पौधा एवं प्रति हेक्टेयर उपज 16.76 टन तक होती है

भागवा –अनार की भागवा किस्म उपज में बाकि अन्य किस्मों से उत्तम है। यह किस्म 180–190 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसके फल आकार में बड़े, स्वाद में मीठे बोल्ड ,आकर्षक , चमकदार तथा केसरिया रंग के उच्च गुणवत्ता युक्त होते हैं। फल के एरिल का रंग गहरा लाल

और बोल्ड आर्टिल वाले आकर्षक बीज होते हैं, जो टेबल और प्रोसेसिंग दोनों उद्देश्यों के लिए उपयुक्त होते हैं।

यह किस्म दूरस्थ के बाजारों के लिए भी उपयुक्त उपयुक्त है। यह किस्म अनार की अन्य किस्मों की तुलना में फलों के धब्बों और थ्रिप्स के प्रति कम संवेदनशील पाई गई। इन सभी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए, महाराष्ट्र के क्षेत्रों में बढ़ते अनार में इसकी खेती के लिए भागवा किस्म की सिफारिश की जाती है।

गणेश – अनार की यह किस्म डॉ चीमा के द्वारा विकसित कि गयी। इस किस्म के फल गुलाबी –पीले रंग से लाल –पीले रंग के होते हैं। इस किस्म में नरम बीज होते हैं। इसके फलो का औसत वजन 225 – 250 ग्राम तथा TSS मध्यम होता हैं।

रूबी – इस किस्म के फलो की त्वचा लाल एवं नरम बीज होते हैं। इसके फलो का औसत वजन 225 –275 ग्राम तथा TSS अधिक होता हैं।

अरकत्ता – इस किस्म के फलो का रंग गहरा लाल एवं नरम बीज होते हैं तथा TSS अधिक होता हैं।

अन्य किस्में– बेदाना, मस्कट, ज्योति, दारू, वंडर और जोधपुर लोकल। यह कुछ महत्वपूर्ण किस्में हैं जिनको व्यवसाहिक स्तर पर रोपण सामग्री के रूप में काम में लिया जाता हैं।

गढ्डे की तैयारी एवं रोपण

नब्बे दिन पुराने अनार के पौधे मुख्य खेत में रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं। पौधों को लगाने के लिए गड्ढे का उपयुक्त आकार 60 सेमी लम्बा, 60 सेमी चौड़ा, 6060 सेमी गहरा रखा जाता है। अनार को लगाने के लिए सबसे अधिक वर्गाकार विधि काम में ली जाती है। सामान्यत रोपण दूरी मृदा के प्रकार और जलवायु के आधार पर निश्चित की जाती है। किसानों द्वारा सबसे ज्यादा काम में ली जाने वाली सबसे आदर्श रोपण दूरी पौधों के बीच 10 से 12 फीट (3.0 से 4.0 मीटर) और पंक्तियों के बीच 13–15 फीट (4.0 से 5.0 मीटर) है। गड्डों की खुदाई के बाद इन्हे 10 से 15 दिन तक धूप में खुला छोड़ दिया जाता है ताकि गड्ढों में हानिकारक कीड़े–मकोड़े व कवक ईत्यादि मर जाये। मानसून के दौरान, गड्ढों को गोबर की खाद या कम्पोस्ट या वर्मीकम्पोस्ट (10 किग्रा), सिंगल सुपरफॉस्फेट (500 ग्राम), नीम की खली (1 किग्रा) तथा क्युनॉलफॉस 50–100 ग्राम से भर दिया जाता है। अनार रोपण के लिए इष्टतम समय बारिश का मौसम (जुलाई–अगस्त) होता है। इस समय पौधों की इष्टतम वृद्धि के लिए मिट्टी में पर्याप्त नमी उपलब्ध होती है। यधपि अनार का कम उपजाऊ मिट्टी में भी उगाया जा सकता है परन्तु अच्छे उत्पादन एवं गुणवत्ता युक्त फलों के लिए कार्बनिक एवं रासायनिक खाद का प्रयोग किया जाता है।

अंतरासस्यन – अनार का बगीचा लगाने के बाद एक से दो वर्ष अफलन में अवस्था रहता है अतः किसान को इस अवधि के दौरान कोई भी अतिरिक्त आय प्राप्त नहीं होती हैं। इसलिए इस फसल प्रणाली में कम या धीरे उगने वाली सब्जियों, दालों या हरी खाद वाली फसलों को इंटर–क्रॉप के रूप में लेना फायदेमंद रहता है। शुष्क क्षेत्रों में, बारिश के मौसम में ही अंतर–फसल संभव है, जबकि सिंचित क्षेत्रों में सर्दियों की सब्जियां भी अन्तर सस्यन के रूप में ली जा सकती हैं। इस प्रकार किसान अंतरासस्यन को अपनाकर बगीचे की अफलन अवस्था पर अतिरिक्त आय कमा सकते है।

खाद एवं उर्वरक

खाद एवं उर्वरक की संस्तुत खुराक के तौर पर 600–700 ग्राम नाइट्रोजन, 200–250 फॉस्फोरस और 200–250 पोटाश प्रति पौधे के हिसाब से प्रत्येक वर्ष देना चाहिए। इसके पश्चात खाद की मात्रा को निम्नलिखित तालिका के अनुसार देवें तथा पाँच वर्ष के बाद खाद की मात्रा को स्थिर कर देवें।

देशी खाद, सुपर फॉस्फेट व पोटाश की पूरी मात्रा एवं यूरिया की आधी मात्रा फूल आने के करीब 6 सप्ताह पूर्व देवें। यूरिया की शेष मात्रा फल बनने पर देवें। अम्बे बहार के लिए उर्वरक दिसम्बर माह में देने चाहिए तथा मृग बहार के फलों के लिए उर्वरक मई माह में देने चाहिए।

सारणी 1: अनार में खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

गोबर की खाद प्रति पौधा	नाइट्रोजन प्रति पौधा	फॉस्फोरस प्रति पौधा	पोटाश प्रति पौधा
10 किग्रा	100 ग्राम	250 ग्राम	500 ग्राम
20 किग्रा	200 ग्राम	500 ग्राम	500 ग्राम
30 किग्रा	300 ग्राम	750 ग्राम	100 ग्राम
40 किग्रा	400 ग्राम	1000 ग्राम	1500 ग्राम
50 किग्रा	500 ग्राम	1250 ग्राम	1500 ग्राम

सिंचाई

अनार एक सूखा सहनशील फसल है जो कुछ सीमा तक पानी के अभाव में भी पनप सकती हैं। इस फसल में फल फटने की एक प्रमुख समस्या हैं। इसलिए इससे बचने के लिए नियमित सिंचाई आवश्यक होती है। सर्दियों के दौरान 10–12 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें जबकि गर्मियों के मौसम में 4–5 दिन के अंतराल में सिंचाई अवश्य करें। सिंचाई के लिए ड्रिप पद्धति का प्रयोग करें, इससे 40 से 80 प्रतिशत तक पानी की बचत कर सकते है तथा पानी के साथ उर्वरक का भी प्रयोग कर सकते है जिसे फर्टिगेशन के नाम से जाना जाता है। अगर पानी की सुविधा हो तो अम्बे बहार से उत्पादन लें क्योंकि इस बहार के फल अधिक गुणवत्ता युक्त होते हैं अन्यथा मृग बाहर ही काम लेवें।

कटाई और छंटाई (Training and Pruning)

यह वानस्पतिक वृद्धि को नियंत्रित करने एवं पौधे के आकर तथा ढांचे को बनाये रखने की एक आशाजनक तकनीक है। इस विधि का सबसे मुख्य फायदा यह है कि सूर्य का प्रकाश पौधे के सभी भागों अथवा पौधे के केंद्र तक आसानी से पहुँचता है, कृषण कार्य जैसे पादप रसायनों का छिड़काव एवं फलों की तुड़ाई भी आसान हो जाती है।

अनार में संधाई (Training) की मुख्य रूप से दो विधियां काम में ली जाती है।

1. एकल तना विधि–इस विधि में, अनार के पौधे के अन्य शूट हटाकर केवल एक शूट रखा जाता है।

2. बहु तना विधि–बहु तना विधि में, पौधे के आधार में 3–4 शूट रखकर पौधे को झाड़ीनुमा आकर में बनाये रखा जाता है। यह विधि बहुत लोकप्रिय और किसानो द्वारा व्यवसायिक खेती हेतु अपनाई जाती है, क्योंकि शूट मेदक के आक्रमण का असर कम होता है और बराबर उपज प्राप्त हो जाती हैं।

पौध–संरक्षण

कीट

1. अनार की तितली या फल छेदक–यह अनार का एक प्रमुख कीट है जो अनार के विकास शील फलों में छेद कर देता हैं तथा फलों को अंदर से खाता रहता है जिसके कारण फल फफूँद एवं जीवाणु संक्रमण के प्रति अतिसंवेदनशील हो जाते है।

नियंत्रण – शुरुवाती अवस्था में फलों को पॉलीथिन बैग से बेगिंग करके या ढककर नियंत्रित किया जा सकता है। फॉस्फोमिडॉन का 0.03 प्रतिशत या सेविन का 4 ग्राम प्रति लीटर पानी में गोल बनाकर छिड़काव करके भी इस कीट से छुटकारा पाया जा सकता है।

2. छाल भक्षक– यह कीट रात्रि को तने की छाल को खाता हैं। कीट द्वारा बनाये गए छेद इसके मल मूत्र से भरते जाते है जिसके कारण इसके लक्षणों को भी पहचान पाना बहुत मुश्किल होता है। यह कीट मुख्य तने पर छेद बनता है तथा तने के अदंर सुरंगो का एक जाल बना लेता है, जिसके कारण पौधे की शाखाएं तेज हवा चलने पर टूट जाती हैं।

नियंत्रण–इस कीट के प्रभावी नियंत्रण के लिए, कीट द्वारा बनाये गये छेदों को डीजल अथवा केरोसिन में रूई भिगोकर बंद कर देते है तथा कीट द्वारा बनाये हुए छेद में केरोसिन का तेल भर देते हैं। आजकल किसानों द्वारा फलों की बैगिंग की जाती है जो फलों की गुणवत्ता में सुधार करती है।

व्याधियाँ

1. जीवाणु पत्ती दब्बा रोग या ऑयली दब्बा रोग– यह रोग जेंथोमोनास औक्सोनोपोडिस पीवी पुनिका नामक रोगकारक के द्वारा फैलता हैं। इस रोग की सबसे अधिक समस्या बारिश के मौसम में आती है। इस रोग में पादप के तने, पतियाँ एवं फलों पर छोटे गहरे भूरे रंग के पानी से लथपथ दब्बे बनते हैं। जब संक्रमण अधिक हो जाता है तो फल फटने लग जाते हैं।

नियंत्रण – इसके प्रभावी नियंत्रण के लिए स्ट्रेप्टोमाइसीन 0.5 ग्राम प्रति लीटर और कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2.0 ग्राम प्रति लीटर के हिसाब से मिश्रण करके छिड़काव करें।

2. फल फटना या फल फूटना – यह अनार का एक गंभीर दैहिक विकार हैं जो सामन्यतया अनियमित सिंचाई, बोरोन की कमी और दिन अथवा रात के तापमान में अचानक उतार–चढ़ाव के कारण होता हैं। इस विकार में फल फट जाते है जिसके कारण फलों का बाजार मूल्य कम हो जाता हैं जिसका सीधा नुकसान उत्पादक को होता है।

नियंत्रण– इसके नियंत्रण के लिए बोरोन का 0.1% की दर से और GA_3 का 250 पीपीएम की दर से पर्णीय छिड़काव करें। इसके अलावा मृदा में उपयुक्त नमी बनाये रखें। प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।

3. सनबर्न– यदि फलों की उचित अवस्था में तुड़ाई नहीं की जाये तो यह विकार भी एक समस्या के तौर पर उबरता है। इस विकार में फलों की ऊपरी सतह पर काले रंग का गोल स्थान दिखाई देता है। यह फलों की सुंदरता व गुणवत्ता दोनों में कमी करता है जिसके कारण फलों का बाजार मूल्य कम हो जाता हैं।

नियंत्रण – फलों की बैगिंग करें।

फलों की तुड़ाई

अनार के फलों की तुड़ाई फूल आने से लेकर फल की परिपक्वता तक 150 से 180 दिनों के बाद शुरू होती हैं। लेकिन यह जीनोटाइप, जलवायु स्थिति एवं उगाने के

क्षेत्र पर निर्भर करता है। फलों की तुड़ाई इष्टतम परिपक्व अवस्था पर करनी चाहिए क्योंकि जल्दी तुड़ाई से फल अपरिपक्व और अनुचित पकने लगते है, जबकी देरी से तुड़ाई करने पर विकारों का प्रकोप अधिक होने लगता है, इस प्रकार अनार एक नॉन क्लाईमैट्रिक (ऐसे फल जिन्हे तोड़कर नहीं पकाया जा सकता) हैं। जिससे फलों को पकने के बाद एक उचित अवस्था में तोडना चाहिए। फलों की परिपक्वता और तुड़ाई का आकलन करने के लिए अनेक प्रकार के संकेतो का उपयोग किया जाता हैं जैसे कि गहरा गुलाबी रंग फल की सतह पर विकसित होना। गहरे गुलाबी रंग का निशान ज्यादातर उपभोक्ताओं द्वारा पसंद किया जाता हैं। अनार के फलों के तल में स्थित कैलिक्स का अंदर की तरफ मुड़ जाना। एरिल का गहरे लाल या गुलाबी रंग में बदलना। इन निशानों के अतिरिक्त फल ज्यादा नहीं पकने चाहिए। फलों की तुड़ाई स्कैटर्स या क्लिपर की मदद से करनी चाहिए क्योंकि फलों को मरोड़कर खींचने से फलों को नुकसान हो जाता है।

उपज

एक स्वस्थ अनार का पेड़ पहले वर्ष में 12 से 15 प्रति किग्रा पौधा उपज दे सकता है। दूसरे वर्ष से, प्रति पौधे से उपज लगभग 15 से 20 किलोग्राम प्राप्त होती हैं।

तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन

सफाई और धुलाई: इस विधि में कटाई के बाद, फलों को छांट लिया जाता हैं तथा रोगग्रस्त और फटे हुए फलों को हटा दिया जाता है एवं शेष बचे हुए स्वस्थ फलों को आगे के उपचार के लिए चुन लिया जाता है। छंटाई के बाद, फलों को सोडियम हाइपोक्लोराइट के 100 ppm पानी के घोल से धोना चाहिए। यह उपचार माइक्रोबियल संदूषण को कम करने और लंबी शैल्फ–जीवन को बनाए रखने में मदद करता है।

पूर्व ठंडा: यह फलों के भंडारण से पहले एक आवश्यक ऑपरेशन है, इसलिए यह फलों से प्रक्षेत्र ऊष्मा व महत्वपूर्ण गर्मी को हटाने में मदद करता है, जिसके परिणामस्वरूप फलों की शेल्फ–लाइफ में वृद्धि होती है। अनार के फलों के लिए, मजबूत हवा शीतलन प्रणाली को पूर्व शीतलन के लिए उपयोग किया जाता है। इसलिए इसे 90 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता के साथ 5°c तापमान के आसपास बनाए रखा जाना चाहिए।

फलों की ग्रेडिंग: फलों को उनके वजन, आकार और रंग के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। विभिन्न ग्रेड फल सुपर, किंग, क्वीन और प्रिंस–आकार में वर्गीकृत किये जाते हैं। इसके अलावा अनार को और भी दो ग्रेडों में वर्गीकृत किया जाता है– 12 ए और 12 बी। 12–ए ग्रेड के फल आमतौर पर दक्षिणी और उत्तरी क्षेत्र में पसंद किए जाते हैं। ग्रेडेड फल उपभोक्ताओं को आकर्षित करते हैं, जो घरेलू बाजार के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में अधिक कीमत पाने में मददगार साबित होते हैं। अनार के फल आमतौर पर उनके आकार और वजन के अनुसार वर्गीकृत किए जाते हैं। हालाँकि, ग्रेडिंग मानक देश–दर–देश भिन्न होते हैं। निर्यात उद्देश्य के लिए राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड के अनुसार ग्रेड विनिर्देश निम्नानुसार हैं।

सारणी 2: फलों की ग्रेडिंग

अनुक्रमांक	ग्रेडिंग का नाम	फलों का वजन
1	सुपर आकार	750 ग्राम
2	राजा का आकार	500–700 ग्राम
3	रानी का आकार	400–500 ग्राम
4	राजकुमार का आकार	400–500 ग्राम

अनार की पैकेजिंग: अनार के फल घरेलू और स्थानीय बाजारों के लिए लकड़ी के या प्लास्टिक के बक्से में पैक किए जाते हैं। अंतरराष्ट्रीय बाजार के लिए मुख्य रूप से नालीदार फाइबरबोर्ड बक्से का उपयोग किया जाता हैं और बॉक्स की क्षमता 4 किग्रा या 5 किग्रा होनी चाहिए। AGMARK के विनिर्देशों के अनुसार 4 किलो क्षमता वाले बॉक्स का आयाम 375 × 275 × 100 मिमी 3 है और 5 किलो के लिए बॉक्स 480 × 300 × 100 मिमी 3 है।

भंडारण: अनार की शेल्फ–लाइफ के लिए तापमान सबसे महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि अनार जल्दी खराब होने लग जाते हैं, इसलिए दीर्घकालिक भंडारण के लिए एक इष्टतम तापमान की आवश्यकता होती है। बहुत कम तापमान फलों में ठंड लगने की चोट को प्रेरित कर सकता है, इसलिए ताजा अनार के फल को भंडारण के लिए एक आदर्श तापमान 5° से 6° और 90 से 95% सापेक्ष आर्द्रता में भण्डारित किया जाता है। इस तापमान पर, अनार के फल 3 महीने तक संग्रहीत रखे जा सकते हैं।

विपणन

घरेलू बाजारों में अनार के फल 60 से 80 प्रति किग्रा फलों की थोक दर पर बिक्री कर सकते हैं जबकि दूर के बाजार में इसकी कीमत 90 से 150 रु. तक होती है।

पश्चिमी राजस्थान में खींप (लेप्टाडेनिआ पीरोटेक्निका) का आर्थिक संभाव्य

जे.पी. सिंह* एवं अनिल पाटीदार**

थार मरूस्थल के वानस्पतिक परिवार में एसकेलपिडिएसी पादप कुल एक बहुत समृद्ध कुल है तथा स्थानीय वासियों की जीवन शैली में इसका बहुत अधिक महत्व रहा है। इस पादप कुल का एक वंशज लेप्टाडेनिआ के नाम से जाना जाता है जोकि व्यापक रूप से उष्णकटीबंधीय अफ्रिका तथा भारतवर्ष में वितरित है। लेप्टाडेनिआ वंश में यहाँ दो प्रजातियां मिलती हैः पहली प्रजाति लेप्टाडेनिआ पीरोटेक्निका जिसे खींप कहते हैं जोकि बहुधा पत्तीरहित वृहत झाड़ी है तथा उष्ण शुष्क क्षेत्र में मिलती है। दूसरी प्रजाति लेप्टाडेनिआ रेटीकुलाटा है जोकि एक पत्ती युक्त आरोही झाड़ी होती है जिसे जीवंती के नाम से जाना जाता है तथा अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में मिलती है। मरूस्थल में खींप एक बहुउपयोगी झाड़ी के नाम से जानी जाती है जबकि जीवंती प्रजाति का आयुर्वेदिक औषधियों में अपना महत्व है। प्रस्तुत आलेख में खींप प्रजाति के संबंध में विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है साथ ही पश्चिमी राजस्थान के संदर्भ में इसके संभाव्य का प्रयास किया गया है।

खींप का वानस्पतिक नाम लेप्टाडेनिआ पीरोटेक्निका है और यह एसकेलपिडिएसी कुल का सदस्य है। स्थानीय जन इसे खिंपड़ो तथा खिम्पड़लो के नाम से भी जानते हैं। भारतवर्ष में यह प्रजाति पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तरी गुजरात एवं मध्यप्रदेश राज्यों के रेतीले क्षेत्रों में पाई जाती है। पश्चिमी राजस्थान में 9 कृषि–पारिस्थितिक खंडों का विस्तृत रूप से उल्लेख मिलता है। इन खंडों में, **फोग–लाना–खींप खंड** (काल्लीगोनुम पोलीगोनॉइडेज–हेलोजीलान सेलीकार्निकम–लेप्टाडेनिआ पाइरोटेक्निका जोंन) की यह प्रमुख प्रजाति है। इस खंड में जैसलमेर तथा बाड़मेर जिलों का पश्चिम तथा उत्तर–पश्चिम भाग तथा बीकानेर व श्रीगंगानगर जिलों का पश्चिम भाग आता हैं जहाँ कि औसत वार्षिक वर्षा 100 से 150 मि.मी. है। यह खंड बहुत ही शुष्क तथा उच्च रेतीले टिब्बों से आच्छादित है। अतः इस क्षेत्र में खींप प्रमुखता से जैसलमेर, बीकानेर, चूरू व नागौर जिलों में मिलती है। यह लवणीय, पहाड़ी और पथरीली भूमि पर कम ही मिलती है। जिस भूमि पर खींप पाई जाती है, उत्पादकता की दृष्टि से उसे ज्यादा अच्छा नहीं माना जाता है।

*भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
**भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान केन्द्र, जैसलमेर

वानस्पतिक विवरण

खींप एक उर्ध्व बहुशाखीय झाड़ी है जो कि लगभग 1 से 2 मीटर ऊंचाई की होती है जो कभी कभी 3 से 4 मीटर तक भी हो जाती है (चित्र 1क, ख) । इसका जड़तन्त्र काफी मजबूत तथा गहरा होता है जो कि रेतीली मृदा को बांधने हेतु श्रेष्ठतर है। इसकी शाखाएं जलीय रसयुक्त होती हैं एवं तना हरा होता है। पत्तियां आशुपाती होती है, लेकिन जब मौजूद होती हैं तो सूचिकार, अवृंतीय, 2.5 से 6.5 से.मी. लम्बी व 0.2 से 0.3 से.मी. चौड़ी, रेखाकार, भालाकार होती हैं। इसके पुष्प छोटे व हरे–पीले रंग के होते है जो अगस्त से नवम्बर तक आते हैं। इसकी फलियां (फालिकिल) 7.0 से 14.0 से.मी. लम्बी व 0.5 से 0.8 से.मी. चौड़ी, भालाकार व अरोमिल होती है। बीज हल्के 5 से 7 मि.मी. लम्बे, अण्डाकार–भालाकार होते हैं।

परम्परागत उपयोग

खाद्य पदार्थः खींप की कच्ची फलियां जिन्हें खिंपोली कहते हैं, ग्रामीण क्षेत्रों में सब्जी बनाने हेतु स्वादिष्ट व पोष्टिक मानी जाती है (चित्र 1घ)। आज भी पुराने लोग इसकी सब्जी चाव से खाते हैं। ऐसा उल्लेख मिलता है कि कुछ स्थानों पर इसकी कन्दिल जड़े भी उबाल कर खाते हैं। गुजरात के ग्रामीण क्षेत्रों में जड़ो को शाक–भाजी में उपयोग लेते हैं।

औषधीय गुणः परम्परागत रूप से स्थानीय जन खींप का उपयोग विभिन्न औषधियों में करते हैं। इसके रस का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में शरीर पर कांटो को निकालने या गलाने के लिए प्रयुक्त करते हैं एवं फोड़े फुन्सियों के उपचार हेतु इसका लेप करते हैं। पश्चिमी राजस्थान के ग्रामीण अंचलों में ऐसा माना जाता है कि प्राचीन समय में जब ज्वर निवारक औषधियों का अभाव था, उस समय सभी प्रकार के ज्वर को कम करने के लिए खींप की हरी शाखाओं का बिस्तर बनाकर रोगी को उस पर लिटाते थे, जिससे बुखार उतर जाता था। खींप को पशुओं के इलाज के भी परम्परागत रूप से उपयोग में लेते है। इसके तने का क्वाथ गायों को प्रसव (डिलीवरी) के बाद देते हैं जिससे जार (प्लेसेंटा) आसानी से निकल जाता है।

चारा: सामान्यतया पशुपालक खींप को चारे में प्रयुक्त नहीं करते, परन्तु सूखे व अकाल के समय जब अन्य चारे वाली वनस्पतियों का अभाव रहता है तो बकरी व ऊटँ इसकी तरूण शाखाओं को खाते हैं। ऐसा उल्लेख मिलता है कि प्राचीन समय में सिन्ध क्षेत्र में खींप का उपयोग घोड़ों व ऊँटों के चारे के लिए करते थे। बीकानेर जिले में पशु पालक खींप को अच्छा नहीं मानते हैं और ऐसी धारणा है कि यदि ऊँटनी अधिक खींप खा लेती है तो गर्भ धारण की समस्या आ जाती है। इसके अधिक खाने के ऊटँ व बकरी में खाज–खुजली की समस्या हो जाती है।

रेशा: पश्चिमी राजस्थान में परम्परागत रूप से रेशो के लिए खींप का बहुत अधिक उपयोग रहा है। सिंध में इसे कुओं से पानी निकालने हेतु रस्सी में बहुत उपयोग करते थे, क्योकि ऐसा मानते थे कि यह पानी से गलती/सड़ती नही थी। इससे रस्सियां जोकि बैलगाड़ियों हेतु, इंधन लकडियों को बांधने या घासों के गठ्ठरो को बांधने में प्रयुक्त करते हैं। इससे चारपाइयों की रस्सी भी बनाते हैं। ऐसा माना जाता है कि तने में जो हरा जलीय क्षीर/लैटेक्स होता है वह रेशों को सड़ने से रोकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी इसकी रस्सी का प्रचलन है, इसकी रस्सी को मजबूत माना जाता है।

जैविक बाढ़: कुछ किसान खींप को खेतों के चारों ओर बाड़ के लिए उपयोग करते हैं जो कि मृदा अपरदन रोकने में मदद करती है। लेकिन अधिकतर किसान इसकी बाड़ को अच्छा नहीं मानते। ऐसा माना जाता है कि वर्षा के समय जब पानी इसकी शाखाओं से जमीन पर गिरता है तो यह जमीन को खराब करता है। जिसका प्रतिकूल प्रभाव फसल उत्पादकता पर पड़ता है।

ईंधन: वर्तमान में खींप का अधिक प्रसार हो जाने से इसकी लकड़ियों का काफी उपयोग हो रहा है क्योंकि अन्य वांछनीय झाड़ियां जैसे फोग, बावली, लाना आदि कम होती जा रही हैं। सामान्यतः घरेलू ईंधन में खींप को अच्छा नहीं मानते क्योंकि इससे धुंआ अधिक निकलता है जो कि स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

अन्य उपयोग: इसकी शाखाओं का उपयोग बहुतायत से झोपड़ी व पशु बाड़ा की सीमा बनाने में किया जाता है (चित्र 1च)। इसकी पतली टहनियों से झाडू भी बनाते हैं जो कि रेतीली सतहों को अच्छा साफ करती है। टिब्बा स्थिरिकरण कार्यक्रम की प्रक्रिया में पादप रोपण से पूर्व जो चैकरबोर्ड पद्धति में रेत के आवागमन को रोकने हेतु सुक्ष्म वायु अवरोधक लगाने के लिए जो स्थानीय पादप सामग्री उपयोग में लेते हैं उसमें खींप का बहुत अधिक महत्व है, क्योकि रेतीले क्षेत्रों में यह आसानी से उपलध प्रजातियों में रही है (चित्र 1ङ)।

खींप का संभाव्य

रेशा उद्योग: उपरोक्त परम्परागत उपयोगों से यह सुस्पष्ट है कि मरूस्थलीय परिवेश में प्राचीन समय से ही स्थानीय स्तर पर रेशों हेतु खींप प्रजाति का योगदान रहा है। शुष्क क्षेत्र में शोध कार्यो में इस प्रजाति को अपेक्षित स्थान नही मिल पाया, लेकिन पश्चिमी राजस्थान में परम्परागत रूप से यह रेशों का प्रमुख स्रोत रहा है। खींप के रेशो की गुणवत्ता पहलू पर महत्वपूर्ण शोध कार्य की आव यकता है। इसके लिए आवश्यक है कि खींप के प्राकृतिक आवासीय परिवेश से इसके विविध उपलब्ध जननद्रव्यों को एकत्र करके विस्तृत रूप से मूल्यांकन किया जाय जिससे अधिक रेशे गुणवत्ता युक्त जीनप्ररूपों का चयन किया जा सके तथा साथ ही शस्य संभाव्य को भी देखा जाय जिससे अधिक उत्पादन लिया जा सके।

खाद्य शाक: खींप प्रजाति का जो दूसरा आर्थिक संभाव्य है वह इसकी तरूण फलियों जिन्हे खिपोली कहते हैं का हरी शब्जी के लिए एक औषधीय शाक के रूप में पहचान बनाना। इसके लिए कुछ ऐसे जीनप्ररूपों का चयन किया जाय जोकि अधिक फलियों वाले एवं उच्च पौषक तत्व युक्त हों।

जैव–रसायन योगिक: खींप प्रजाति के उपरोक्त वर्णित परम्परागत औषधीय उपयोग इस प्रजाति के औषधीय संभाव्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। इन तथ्यों की पुष्टी इससे भी होती है कि दूसरे देशों में जो खींप प्रजाति पर शोध आलेख प्रकाशित हुए हैं उनके निष्कर्ष भी यह स्पष्ट करते हैं कि इस प्रजाति में विविध प्रकार के जैवरसायन विद्यमान हैं जिनका भेषजीय/औषधीय (फार्मास्यूटिकल) में उपयोग किया जा सकता है।

चारा: पशु चारा में खींप प्रजाति की सीमित भूमिका हैं लेकिन अन्य देशों में खींप को चारे हेतु उपयोग में लेते हैं। यदि खींप में कोई इस प्रकार का जीनप्ररूप मिलता है जिसमें गैर पौषक तत्व सीमित मात्रा में हो तो अभाव के समय तथा अकाल के समय चारे में विशेषकर ऊँटो के लिए उपयोग किया जा सकता है।

झोपड़ी निर्माण सामग्री: थार मरूस्थल क्षेत्र में प्राचीन समय से ही खीप का झोपड़ी निर्माण की सामग्री हेतु अग्रणी भूमिका रही है जोकि ग्रामीण क्षेत्रों में वर्तमान में भी प्रचलन में है। लेकिन कालांतर जो खींप सुगमता से उपलब्ध थी, आज वह परिस्थिति नही है, शनैः शनैः इसका भी जलाऊ ईंधन हेतु विदोहन हो रहा है, क्योंकि दूसरी प्रमुख ईंधन प्रजातियों में से मुख्याया फोग (केलिगोनम पोलीगोनाइडिस)

पहले से ही संकटाग्रस्त स्थिती में है। अतः भविष्य में स्थानीय स्तर पर झोपड़ी निर्माण सामग्री हेतु इसका मांग को पूरा करने के लिए इसके रोपण की आवश्यकता है।

स्थापनः

प्राकृतिक रूप से खींप का पुनरूत्पादन बीज द्वारा होता है। इसके बीज हल्के होने के कारण हवा से वितरित हो जाते हैं तथा अनुकूल स्थिति आने पर बरसात में आसानी से उग जाते हैं। इसकी पौध को बीजों द्वारा नर्सरी में उगाया जा सकता है तथा 4–5 महिने की पौध को प्रक्षेत्र में रोपित किया जा सकता है (चित्र 1ग)।

निष्कर्ष

प्राचीन समय से ही खींप पश्चिमी राजस्थान में एक बहुउपयोगी झाड़ी रही है विशेषकर इसके रेशो के उपयोग तथा झोपड़ियों के निर्माण में इसका बहुत महत्व है। इस क्षेत्र में इसके महत्व को नकारा नही जा सकता क्योंकि यहाँ की प्रतिकूल विषम परिस्थितियों के प्रति यह प्रजाति भलिभांति अनुकूलित है। वैश्विक जलवायु परिवर्तन के शुष्क पर्यावरण परिदृश्य में सूखारोधी होने के कारण इस प्रजाति की महती भूमिका रहेगी, क्योंकि कम व अनियमित वर्षा में भी यह झाड़ी हरित वनस्पति का आभास कराती हैं। इस क्षेत्र में इसके रेशों के उपयोग का बहुत अच्छा संभाव्य है तथा इसे भलिभांति लघु कुटीर उद्योग में उपयोग किया जा सकता है। इसके साथ ही इसके भोज्य, औषधीयों में इसमें विद्यमान विभिन्न जैवरसायन, अभाव/सूखे की स्थिति में चारा उपयोग तथा स्थानीय स्तर पर झोंपड़ी निर्माण सामग्री हेतु मांग जैसे महत्वपूर्ण पहलूओं पर भी ध्यान आकर्षण की आवश्यकता है। इसके लिए तत्कालिक आवश्यकता है कि खींप प्रजाति के प्राकृतिक क्षेत्रो से जहाँ कि आज भी प्रचुर विविधता विद्यमान है, उन चयनित क्षेत्रों से इसका जननद्रव्य एकत्र करके विशेष प्रयोजनों हेतु मूल्यांकन किया जाय। इस प्रकार खींप के श्रेष्ठतम जीनप्ररूपों का चयन किया जा सकता है। जैसा कि दूसरे देशों में शुष्क क्षेत्रों में खींप प्रजाति को रोपण में स्थान दिया गया है, इसी प्रकार कृषि के अनपयुक्त जो रेतीली बंजर रेंजभूमियां खींप रोपण हेतु उपयुक्त हैं उनको चिन्हित किया जा सकता हैं। वहाँ पर बंजरभूमि विकास कार्यक्रम के अंतर्गत यदि खींप का रोपण किया जाता है तो एक तो स्थानीय लोगों को इसकी सामग्री आसानी से उपलब्ध होगी तथा साथ साथ शुष्क पर्यावरण में खींप की विविधता का संरक्षण व संवर्धन भी होगा।

चित्र 1. मरूस्थल में खींप झाड़ी **(क,ख)**. बीजों द्वारा नर्सरी में रोपण हेतु पौध **(ग)**. खींप की कच्ची फलियां–खिंपोली **(घ)**. टिब्बा स्थिरिकरण कार्यक्रम में रेत के आवागमन को रोकने हेतु शुक्ष्म वायु अवरोधक **(ङ)**. झोपड़ी बनाने में शाखाओं का उपयोग **(च)**.

लौकी की वैज्ञानिक खेती

राज कुमार, कनक लता, ए. के. राय, शक्ति खजुरिया एवं बी. एस. खद्दा

कद्दूवर्गीय सब्जियों में लौकी का प्रमुख स्थान है। इसको घीया, दुधी, लौकी, लाउ के नाम से भी जाना जाता है। हमारे देश में इसकी खेती बहुत बड़े पैमाने पर की जाती है। देश में इसकी व्यावसायिक खेती पंजाब, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र गुजरात, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु में की जाती है। प्राचीन काल में लौकी के सूखे खोल को शराब या स्प्रिट भरने हेतु उपयोग किया जाता था इसलिए इसको बोटल गार्ड के नाम से भी जाना जाता है । इसके कठोर खोल को पानी का जग, घरेलू बर्तन, संगीत यंत्र बनाने के लिए भी उपयोग में लाया जाता है। लौकी के हरे फल सब्जी के अलावा मिठाईयाँ, रायता, कोफ्ता, इत्यादि बनाने में प्रयोग किए जाते हैं । लौकी की उत्पादन क्षमता बहुत ज्यादा होने के कारण यह किसान भाईयों को अच्छा मुनाफा देने वाली फसल है। लौकी का पोषण की दृष्टि से विशेष महत्व है ।

महिलायें लौकी की गोल किस्म को देखते हुये

यह खनिज तत्वों का अच्छा स्रोत है और शरीर में इसका पाचन जल्दी होता है। इसलिए यह अस्वस्थ व्यक्ति के लिए विशेष रूप से संस्तुत किया जाता है । लौकी के विभिन्न प्रकार के औषधीय गुण भी हैं । इसकी पत्तियों को चीनी के साथ काढ़ा बनाकर पीने से पीलिया रोग में फायदा होता है। इसके बीजों के तेल को काफी ठंडा माना जाता है और सिर दर्द में बहुत उपयोगी बताया जाता है। सुपाच्य होने के कारण चिकित्सक रोगियों को इसकी सब्जी खाने की सलाह देते हैं ।

कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल (केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान)
गोधरा–वड़ोदरा हाइवे, वेजलपुर, पंचमहल, गोधरा गुजरात 389340

जलवायुः लौकी की खेती के लिये गर्म एवं आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है । इसकी वृद्धि एवं फलन के लिए दिन का तापमान 30–35° सें.ग्रे. और रात का 18–22° सें. ग्रे. बहुत ही उपयुक्त माना जाता है। लौकी पाला सहन नहीं कर सकती है, इसलिए लौकी को गर्मी एवं वर्षा दोनों मौसम में उगाया जाता है ।

भूमि की तैयारीः लौकी की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में की जाती है । परंतु उचित जल निकास वाली जीवांश युक्त हल्की दोमट भूमि इसकी सफल खेती हेतु सर्वोत्तम मानी जाती है। उदासीन पी.एच.मान वाली भूमि इसकी खेती के लिए उत्तम मानी जाती है ।

किस्में: हमारे देश में लौकी की अनेक किस्में पाई जाती हैं। कुछ किस्मों के फल लम्बे कुछ किस्मों के गोल एवं लम्बोतर पाये जाते हैं। पिछले कुछ समय से कुछ निजी कंपनियों एवं सरकारी अनुसंधान केन्द्रों की सहायता से लौकी की अनेक संकर किस्मों को विकसित किया गया है ।

कुछ प्रमुख उन्नतशील किस्मों का वर्णन निम्नलिखित है:

पूसा समर प्रॉलिफिक लॉन्गः यह किस्म बहुत प्रचलन में है, जिसको भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान । नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया है। इसके फलों की लम्बाई 60–80 सें.मी. होती है । इस किस्म के फलों का रंग हल्का हरा होता है। इस किस्म को गर्मी तथा बरसात दोनों मौसम में उगाया जा सकता है। इसकी औसत उपज प्रति हे. 15–20 टन होती है ।

पूसा समर प्रॉलिफिक राउंडः इस किस्म को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया है। इसके फल गोल आकार के और हरे रंग के होते हैं। इसको भी गर्मी एवं बरसात दोनों मौसम में उगाया जा सकता है।

पूसा नवीनः इस किस्म को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया है। इस किस्म के फल पूसा समर प्रॉलिफिक लॉन्ग की अपेक्षा छोटे होते हैं, लगभग 20–25 सें.मी. आकार के होते हैं एवं प्रत्येक फल का वजन लगभग 800–900 ग्राम तक होता है। इस किस्म का औसत उत्पादन 25 टन प्रति हेक्टेयर तक होता है। वर्तमान समय में छोटे आकार की लौकी के फलों को

अधिक पसंद किया जाता है, क्योंकि इसका भंडारण एवं यातायात सुगम होता है । इस प्रकार के फलों का निर्यात भी ज्यादा होता है, क्योंकि विश्व के अनेक देशों में छोटे फलों की माँग अधिक होती है। इस किस्म को दोनों मौसम में उगाया जा सकता है ।

पंजाब लॉन्गः इस किस्म के फल लम्बे हरे होते हैं। इसकी भंडारण क्षमता अधिक होती है । इसकी बेल बढ़ने वाली होती है। इसकी औसत उपज 20–22 टन प्रति हैक्टेयर तक होती है । इस किस्म को पंजाब में उगाने के लिए संस्तुति की गयी है। यह किस्म खीरा मोजैक विषाणु के प्रति सहिष्णु है।

पंजाब कोमलः इस किस्म के फल लम्बे अँगूरी रंग एवं अधिक भंडारण क्षमता वाले होते हैं। इस किस्म का औसत उत्पादन 45–50 टन प्रति हैक्टेयर तक होता है। इस किस्म को भी पंजाब में उगाने के लिए संस्तुति की गयी है। यह किस्म खीरा मोजैक विषाणु के प्रति सहिष्णु है।

अर्का बहारः यह किस्म भा.कृ.अनु.प.–भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलूरु से अनुमोदित किया गया है। इस किस्म के फल मध्यम लम्बे, चमकदार एवं आकर्षक होते हैं। औसत उत्पादन 40–45 टन प्रति हैक्टेयर होता है।

राजेन्द्र चमत्कारः इस किस्म के फल लम्बे, हरे कोमल होते हैं । इस किस्म को बिहार एवं झारखंड में उगाने के लिए संस्तुति की गयी है।

एन.डी.बी.जी.ः इस किस्म के फल लम्बे, हरे एवं कोमल होते हैं । यह किस्म ग्रीष्म ऋतु में उगाने के लिए उपयुक्त है। इस किस्म का विकास नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, फैजाबाद द्वारा किया गया है।

आजाद हरितः इस किस्म के फल लम्बे, हरे एवं मुरझान प्रतिरोधी होते हैं। इस किस्म को उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड में उगाने के लिए संस्तुति की गई है। इस किस्म का विकास चन्द्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय कानपुर, द्वारा किया गया है।

आजाद नूतनः यह अगेती किस्म है। इसके फल बोआई के 55–60 दिन बाद उपलब्ध होने लगते हैं। यह किस्म दोनों मौसम में उगाने के लिए उपयुक्त होती है। इस किस्म को भी उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड में उगाने के लिए संस्तुति की गई है । इस किस्म का विकास चन्द्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर द्वारा किया गया है ।

पंजाब राउंडः यह किस्म पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश में उगाने के लिए उपयुक्त है । इसके फल गोल आकार के एवं चपटे होते हैं। इसकी पत्तियाँ हरे रंग की होती हैं । फलों का रंग ऊपर से हल्का और गूदा सफेद रंग का होता है।

पूसा संदेशः यह अगेती किस्म है एवं इसके फल गोल एवं हरे रंग के होते हैं । इस प्रकार की किस्म दोनों मौसम में उगायी जाती है।

हिसार सलेक्शन गोलः इस किस्म के फल गोल, चिकने एवं हरे होते हैं। यह किस्म वर्षा ऋतु में उगाने हेतु उपयुक्त है।

काशी किरणः यह किस्म भाकृअनुप–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी से अनुमोदित किया गया है। फल गोल आकर्षक हल्के हरे रंग के होते हैं। फल का वजन 600–700 ग्राम/फलों की संख्या 13–14 प्रति पौधा, औसत उपज 45–48 टन/ हैं । यह किस्म डाउनी मिल्ड्यू के प्रति सहिष्णु हैं ।

काशी कुंदलः यह किस्म भाकृअनुप–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी से अनुमोदित किया गया है । फल आकर्षक नाशपाती के आकार के हरे रंग के होते हैं । फल का वजन 1300–1500 ग्राम। फलों की संख्या 12–14 प्रति पौधा, औसत उपज 47.50 टन / हेक्टेयर होती हैं । यह किस्म डाउनी मिल्ड्यू के प्रति प्रतिरोधी हैं ।

काशी कीर्तीः यह किस्म भाकृअनुप–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी से अनुमोदित किया गया है। फल हरे, छोटे, बेलनाकार आकार के होते हैं यह किस्म डाउनी मिल्ड्यू के प्रति प्रतिरोधी हैं। यह दूर के स्थानों के विपणन और परिवहन के लिए उपयुक्त है।

काशी गंगाः यह किस्म भाकृअनुप–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी से अनुमोदित किया गया है। यह एक संकर किस्म है जिसका फल आकर्षक नाशपाती के आकार का एवं हरे रंग का होता है । फल का वजन 1300–1500 ग्राम होता है । प्रति पौधा फलों की संख्या 12–14 एवं औसत उपज 47.50 टन / हेक्टेयर होती है । यह किस्म डाउनी मिल्ड्यू के प्रति प्रतिरोधी है ।

काशी बहारः यह किस्म भाकृअनुप–भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी से अनुमोदित किया गया है । फल लम्बे सीधे, हल्के हरे रंग के एवं औसत वजन 750–850 ग्राम होता है । औसत उपज 50–55 टन / हेक्टेयर होता है । यह बरसात और गर्मी दोनों ही ऋतुओं के लिए उपयुक्त किस्म है।

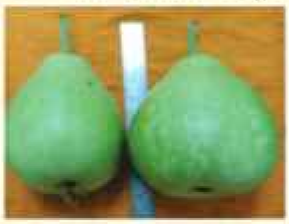

थार समृद्धिः यह किस्म भा.कृ. अनु.प.– केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, से अनुमोदित किया गया है। यह गर्म शुष्क

वातावरण के लिये उपयुक्त है । फल बुवाई के 50 से 55 दिन बाद पहली तुडाई के लिए तैयार हो जाते हैं। फलों का औसत वजन 450–700 ग्राम व उपज क्षमता 24–30 टन प्रति हेक्टेयर है ।

पूसा मेघदूत– यह किस्म पूसा समर प्रॉलिफिक लॉग व सलेक्सन–1 के संकरण से विकसित किया गया है । यह बरसात और गर्मी दोनों ही ऋतुओं के लिए उपयुक्त किस्म है। फल लम्बे व औसत उपज 30 टन प्रति हेक्टेयर होती है।

खाद एवं उर्वरकः सामान्यतः खाद एवं उर्वरकों का उपयोग मृदा जाँच के आधार पर करना चाहिए । यदि किसी कारणवश मृदा जाँच न हो सके तो उस स्थिति में सड़ी हुई गोबर की खाद–10–12 टन, नाइट्रोजन–60 कि. ग्रा., फॉस्फोरस–60 कि.ग्रा. एवं पोटाश–100 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का उपयोग करना चाहिये। गोबर की खाद की पुरी मात्रा अन्तिम जुताई से 15–20 दिन पहले समान रुप से खेत में मिला देना चाहिए । नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा का मिश्रण बनाकर अन्तिम जुताई के समय भूमि में मिला देना चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा को दो बराबर भागों में बाँटकर दो बार में देना चाहिए। प्रथम जब पौधों पर 4–5 पत्तियाँ निकले और दूसरी जब फूल निकलना प्रारम्भ हो जाए तब टॉप ड्रेसिंग के रूप में पौधों के चारों तरफ देना चाहिए ।

बुवाई का समयः भारत के मैदानी क्षेत्रों में लौकी की बुवाई गर्मी एवं वर्षा दोनों मौसमों में की जाती है । ग्रीष्मकालीन फसल को फरवरी–मार्च में और वर्षाकालीन फसल की जून–जुलाई में बुवाई करते हैं ।

बीज की मात्राः गर्मी वाली फसल के लिए 4–6 कि. ग्रा. और वर्षाकालीन फसल के लिए 3–4 कि. ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त रहता है ।

बीजोपचारः फसल को फफूँदी जनित रोगों से बचाने हेतु बीज को बोने से पूर्व थाइराम या एग्रोसन जी.एन. (2–3 ग्राम दवा प्रति 1 किलो बीज) से उपचारित करना चाहिए ।

बोने की विधिः लौकी की बुवाई निम्न दो प्रकार से की जाती है –

नालियों में बुवाई करनाः ग्रीष्कालीन फसल को अधिक पानी की आवश्यकता होती है; अतः इस समय फसल की बुवाई नालियों में करनी चाहिए। इस विधि में तीन मीटर के अंतर पर लगभग एक मीटर चौड़ी नालियाँ बनाते हैं और इन्हीं नालियों के दोनों किनारों पर एक–एक मीटर के अंतर पर बीजों कि बुवाई करते है । एक स्थान पर 2–3 बीज बोये जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु की फसल हेतु बीजों को बोने से

नालियों में बुवाई

फलों का मूल्यांकन

पूर्व भिगोकर गीले कपड़े में लपेटकर किसी गर्म स्थान पर रखकर अंकुरित करके बुवाई करने से फसल कुछ अगेती तैयार हो जाती है।

नर्सरी तैयार करनाः अगेती फसल के लिए बीज को प्रो ट्रे या 15 सें.मी. व्यास और 15 सें.मी. ऊँचाई वाली पोलीथिन की थैलियों में भी उगाया जा सकता है। इन थैलियों में गोबर की खाद एवं मिट्टी की बराबर मिश्रण भरकर नर्सरी मे व्यवस्थित रख देते है। प्रत्येक थैलियों में 2–2 बीज बोते हैं। उचित जमाव हेतु समुचित तापमान की आवश्यकता होती है। इसके लिए थैलियों को दिन में धूप और रात में ग्रीन–नेट से ढक देना चहिये। जब पाले का भय समाप्त हो जाए तब इन पौधों को 3 मी. की दूरी पर बनी कतारों में एक मीटर के फासले से थालों में लगा देना चहिये। पौधों को रोपने के लिए सावधानी से चीरा लगाकर थैलियों में अलग कर लेते हैं ताकि जड़ के विकास में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। ध्यान रहे कि पोलीथिन हटाते समय मिट्टी की पिंडी न टूटे। सामान्यतः वर्षा ऋतु फसल की बुवाई समतल खेत में 3 X1.5 मीटर की दूरी पर करते हैं।

नदियों की कछारी भूमि में दिसम्बर में नालियाँ बनाकर लौकी के बीजों की बुवाई की जाती है । ये नालियाँ 1 मी. गहरी और 60 सें.मी. चौड़ी होती हैं। नालियाँ खोदते

समय नाली के ऊपर की आधी रेत एक ओर हटाकर ढेर लगा देते हैं और शेष आधी रेत को खोदकर उसमें गोबर की खाद भली–भांति मिलाकर उसे लगभग 30 सें.मी. गहराई तक भर देते हैं इन्हीं नालियों में 1.5 मीटर की दूरी पर छोटे थाले बनाकर प्रत्येक थाले में 2–2 बीजों की बुवाई करते है। वहाँ भी दो नालियों के बीच की दूरी 3 मीटर रखते हैं। पाले से बचाव हेतु नालियों के किनारे उत्तर–पश्चिम दिशाओं में पट्टियों की बाड़ का निर्माण किया जाता है। इससे बीजों के अंकुरण हेतु उचित गर्मी भी मिल जाती है और साथ ही उगे हुए छोटे पौधों की पाले से रक्षा भी हो जाती है । इस विधि से लौकी की अगेती फसल प्राप्त हो जाती है जिसका बाजार भाव अच्छा मिल जाता है।

फसल को सहारा देना: लौकी की भरपूर उपज प्राप्त करने हेतु वर्षाकालीन फसल को सहारा देना नितांत

लोहे के ऐंगल से बने सरंचना पर बेलो को चढ़ाना

बांस से बने सरंचना पर बेलो को चढ़ाना

आवश्यक है; जबकि कृषक इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते हैं इसके लिए लोहे की ऐंगल से बने सरंचना या बांस की सहायता से मंडप बना लिया जाता है और लताओं को उस पर लगे तार या रस्सियों की सहायता से चढा दिया जाता है ऐसा करने से लौकी के फल भूमि के सम्पर्क में आने से बच जाते हैं और खराब नहीं होते हैं। इस प्रकार स्वस्थ फल प्राप्त होते हैं और उपज भी अधिक मिलती है । ग्रीष्मऋतु में प्रायः फसल को जमीन पर फैलाते हैं।

पादप नियत्रकों एवं रसायनों का प्रयोग: लौकी की फसल में नर एवं मादा फूल एक ही पौधों पर निकलते हैं। ट्राईआइडोवेंजोइक एसिड (50 पी.पी.एम.) या मैलिक हाइड्रोजाइड (50 पी.पी.एम. ओर 2.5 ग्राम दवा प्रति 50 ली. पानी) के घोल को यदि लता की 2 या 4 पत्तियों की अवस्था में छिड़काव किया जाए तो मादा फूलों की संख्या में वृद्धि हो जाती है और उपज भी अधिक मिलती है । मैलिक हाइड्रोजाइड का घोल बनाने हेतु पहले इसे गर्म पानी में मिलाकर घोलते हैं और उसके बाद पानी में मिला देना

बोरान के छिड़काव से फूलों की संख्या में बढोतरी

चाहिए इस घोल में चिपचिपाहट लाने वाला पदार्थ जैसे टयून 20 (एक मि. ली.) या एक पाउच सामान्य शैम्पू प्रति पम्प मिलाना चाहिये। बोरान (30 पी.पी.एम.) और कैल्सियम 20 (पी.पी.एम.) के घोल का छिड़काव करने से भी उपज में वृद्धि हो जाती है ।

फलों की तुड़ाई: फलों की तुड़ाई उसकी उगायी जाने वाली किस्मों पर निर्भर करती है । फलों को तोड़ने में विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता होती है । इसके फलों को कोमल अवस्था में ही तोड़ना चाहिए अन्यथा कठोर होने पर

तुड़ाई मानकों पर चर्चा

खाने योग्य नहीं रहते हैं । फल को तोड़ने की सही अवस्था तब होती है जब फल का छिलका कोमल चमकीला या रोयें वाला हो साथ में बीज कच्ची अवस्था में हो ।

तुड़ाई किये हुये फल

कीट व रोगों से बचाव– इन सब्जियों में कई प्रकार के कीट व रोग नुकसान पहुंचाते हैं। इनमें मुख्यतरू रेड पम्पकिन बीटल (लाल कीड़ा), चेंपा, फलमक्खी, पाउडरी मिल्डयू (चूर्णिल आसिता) तथा डाउनी मिल्डयू (रोमिल आसिता) मुख्य हैं। रेड पम्पकिन बीटल, जो फसल को शुरू की अवस्था में नुकसान पहुंचाता है, को नष्ट करने के लिए इन फसलों में सुबह के समय मैलाथियान नामक दवा का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पौधों एवं पौधों के आस–पास की मिट्टी पर छिड़काव करना चाहिए। चेंपा तथा फलमक्खी से बचाव के लिए इण्डोसल्फान 2 मिली लीटर दवा प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बना कर पौधों पर छिड़काव करें। चूर्णिल आसिता रोग को नियंत्रित करने के लिए कैराथेन या सल्फर नामक दवा (1–2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए। रोमिल आसिता के नियंत्रण हेतु डायथेन एम– 45 (1.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए। दूसरा छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर करना चाहिए।

उपजः लौकी की उपज मुख्य रूप से भूमि की उर्वरा शक्ति, उगाई जाने वाली किस्मों का चयन तथा उचित देखभाल पर निर्भर करती है । लौकी की औसत उपज लगभग 15–20 टन प्रति हैक्टेयर मिल जाती हैं । संकर किस्मों से 40–50 टन प्रति हैक्टेयर तक की उपज आसानी से प्राप्त कर सकते हैं ।

विक्रय हेतु तैयार फल

औषधीय गुणों से भरपुर झाड़ करेला

डॉ. बी.आर. चौधरी, डॉ. हनुमान राम एवं डॉ. एम.के. बेरवाल

शुष्क क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की सब्जियां बोई जाती है। इनमें कददुवर्गीय कुल एक बड़ा समूह है। इस कुल मे कुछ ऐसी सब्जियां है, जो व्यावसायिक रूप से कम प्रचलित होते हुए भी अधिक पौष्टिक है और बाजार मे इनकी मांग भी अधिक होती है। किसान द्वारा बहुत सी बेल वाली सब्जियों की खेती की जाती है इनमे से कुछ बेल वाली सब्जियां प्राकृतिक रूप से स्वत ही उग आती है जिनमे झाड करेला प्रमुख है। इसका वानस्पतिक नाम मोमोर्डिका बालसमिना है तथा यह कम क्षेत्र मे खेतों की बाड़ अथवा झाड़ियों के आसपास उगता है। अधिक गुणवत्ता, पोषक तत्वों व औषधीय गुणों से भरपूर जैविक सब्जी होने की वजह से झाड करेला को स्थानीय लोग बहुत अधिक पसंद करते है। इसके कच्चे एवं पूर्ण विकसित फलों की सब्जी बनाई जाती है। इसके फलों मे रेशों की मात्रा अधिक होती है जो पाचन तंत्र को मजबूती प्रदान करता है। यह राजस्थान, पंजाब, हरियाणा व गुजरात के अर्ध–शुष्क और शुष्क क्षेत्रों की वन भूमि मे स्वत ही उगने वाली सब्जी फसल है।

झाड करेला में गुणसूत्रों की संख्या 2n = 22 होती है। यह एकवर्षीय बेल है, जिसमे नर एवं मादा पुष्प एक ही बेल पर अलग अलग जगह लगते है। यह एक वर्षाकालीन फसल है। जैसे ही वर्षा की शुरुआत होती है बीज स्वतः ही खेतों की मेड़, पेड़ों के पास, झाड़ियों के आसपास उगकर फलोत्पादन देते है। जुलाई से अक्टूबर तक इसके फलों की तुडाई की जाती है और उच्च कीमतों पर बेचा जाता है। इसके फल अंडाकार–दीर्घवृत्ताकार होते हैं। सब्जी मे प्रयुक्त फल हल्के हरे रंग के होते है जो पकने पर नारंगी से लाल रंग के हो जाते हैं। अभी तक इसकी खेती व्यावसायिक रूप से नहीं की जाती है।

इस पौधे के फल सहित सभी भाग कड़वे स्वाद वाले होते है क्योंकि इसमें "मोमोर्डिन" नामक एक कड़वाहट प्रदान करने वाला यौगिक होता है। झर करेला के पौधे की पत्तियों, फलों, बीजों और छाल में प्राकृतिक बायोएक्टिव एजेंट (द्वितीयक चयापचय) जैसे फिनोल, अल्कलॉइड, फ्लेवोनोइड्स, ग्लाइकोसाइड्स, स्टेरॉयड, टेरपेन्स, कार्डियक ग्लाइकोसाइड, सैपोनिन, टैनिन और लेक्टिन भरपूर मात्रा मे पाए जाते हैं जिनका विभिन्न औषधीय महत्व होता है।

ग्रामीण लोगों में आहार के लिए प्रोटीन और पोटेशियम की आपूर्ति करने के लिए झाड करेला का सब्जी के रूप में सेवन किया जाता है। इसकी उच्च पोटेशियम मात्रा उच्च रक्तचाप और अन्य हृदय रोगों के उपचार मे भी लाभदायक है। प्राथमिक चयापचयों में क्रूड लिपिड (2.66%), प्रोटीन (11.29%), क्रूड फाइबर (29%), कार्बोहाइड्रेट (39%) प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग और क्लोरोफिल शामिल हैं। पत्ते में पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम, फास्फोरस, मैंगनीज, जस्ता और आयरन भरपूर मात्रा मे होते हैं जो मानव में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। पत्तियों का उपयोग मधुमेह, पाचन विकार, बुखार, अल्सर और मलेरिया के उपचार के लिए किया जाता है। इसकी जैव रासायनिक संरचना, पोषण मूल्य और औषधीय मूल्य का संयोजन इसे प्रकृति का चमत्कार बनाता है।

मनुष्यों और जानवरों दोनों में झाड करेला की जड़ों का उपयोग कामोदीपक औषधि के रूप में मूत्रमार्ग के निर्वहन के उपचार में किया जाता है। इसके बीजों में सैपोनिन, एल्कलॉइड और फेनोलिक पदार्थ पाए जाते है जो कि मधुमेह विरोधी होते हैं। झाड करेला के पूरे पौधे का उपयोग त्वचा रोगों जैसे खुजली का इलाज करने मे सबसे अच्छा होता है। फलों के रस में हाइपोग्लाइसेमिक गुण होते हैं और यह भूख को उत्तेजित करने के साथ साथ पाचन प्रक्रिया में सहायता करते हैं।

जैवरासायनिक अनुसंधान के फलस्वरूप झाड करेला में फैटी एसिड, फेनोलिक्स, टेरपेनोइड्स, फ्लेवोनोइड्स, अल्कलॉइड्स, टैनिन, एस्टर और अमीनो एसिड डेरिवेटिव्स की उपस्थिति का पता चला हैं जिसमे लगभग जिसमें 100 यौगिक शामिल हैं। खोजे गए यौगिकों में प्रमुख भाग फैटी एसिड (लगभग 60%) था। अधिकांश ज्ञात यौगिकों में एंटी–माइक्रोबियल, एंटी–इंफ्लेमेटरी, एंटी–कैंसर, एनाल्जेसिक, एंटी–पायरेटिक, एंटी–डायबिटिक, हेपेटोप्रोटेक्टिव, कार्डियोवस्कुलर, एंटीऑक्सिडेंट, एंटी–म्यूटाजेनिक आदि जैसी महत्वपूर्ण जैव–गतिविधियाँ पायी गई हैं। महत्वपूर्ण फाइटोकेमिकल्स जैसे 3', 5'–डाइमेथोक्सीसेटोफेनोन, एआर–ट्यूमेरोन, एस्कॉर्बिक एसिड, हेप्टाडेकेनोइक एसिड, साइक्लो–

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)–334 006

प्रोपेनडेकेनोइक एसिड 2–हेक्सिल, साइक्लोनोना–सिलोक्सेन, ऑक्टाडेकेमिथाइल–4, 7, 10– हेक्साडेक्ट्रि–एनोइक एसिड, 8,11,14–इकोसैट्रिएनोइक एसिड, 2–(डाइमिथाइलैमिनो) एथिल एडामेंटेकारबॉक्साइलेट, डोट्रिकॉन्टेन, 2,6,10,14,18,22–टेट्राकोशेक्सिन, 6,9,12, 15–डोकोसेटेट्राएनोइक एसिड, बिसाबोलेन–12–ओएल आदि पाए गए है।

झाड़ करेला जठरांत्र परजीवी रोग, दस्त, खून बह रहे मसूड़े, बवासीर और श्वसन संबंधी समस्याएं और त्वचा में संक्रमण के इलाज के लिए उपयोगी है। मोमोर्डिन एंटी–एचआईवी, एंटी–प्लास्मोडियल, शिगेलोसाइडल, एंटी–डायरियल, एंटीसेप्टिक, एंटी–बैक्टीरियल, एंटी–वायरल, एंटी–इंफ्लेमेटरी, एंटी–माइक्रोबियल, हाइपोग्लाइसेमिक, एंटीऑक्सिडेंट, एनाल्जेसिक और हेपेटोप्रोटेक्टिव होता है। इसके पत्तों के अर्क मे स्टैफिलोकोकस ऑरियस, साल्मोनेला टाइफी, एस्चेरिचिया कोलाई, क्लेबसिएला न्यूमोनिया, बैसिलस सबटिलिस, स्यूडोमोनास के खिलाफ जीवाणुरोधी गतिविधियों और फलों के अर्क में एंटअमीबा हिस्टोलिटिका और हेलिको–बैक्टर के खिलाफ रोगाणुरोधी गतिविधि पायी जाती है।

झाड़ करेला की औषधीय क्षमता को ध्यान में रखते हुए राजस्थान के विभिन्न स्थानों से जननद्रव्य एकत्र किए। एकत्रित सामग्री का मूल्यांकन वर्ष 2020 के बरसात के मौसम में भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर में किया गया है। मूल्यांकन की गई सामग्री में फलों के वजन (5–8 ग्राम), फलों के व्यास (1.5–2.3 सेमी), फलों की लंबाई (2–2.70 सेमी) और फल उपज/पौधे (0.7–1.0 किग्रा) के संबंध में विभिन्नता दिखाई गई।

सारणी 1 : झाड़ करेला में पोषक तत्वों की मात्रा (प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग)

घटक	मात्रा	इकाई
ऊर्जा	189.22	किलो कैलोरी / 100 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	39.05	प्रतिशत
प्रोटीन	11.29	प्रतिशत
वसा	2.66	प्रतिशत
रेशा	29	प्रतिशत
कैल्शियम	941	मिलीग्राम / 100 ग्राम
मैगनीशियम	220	मिलीग्राम / 100 ग्राम
सोडियम	122.49	मिलीग्राम / 100 ग्राम
पोटेशियम	1320	मिलीग्राम / 100 ग्राम
आयरन	60.3	मिलीग्राम / 100 ग्राम
जिंक	3.18	मिलीग्राम / 100 ग्राम
मैंगनीज	11.6	मिलीग्राम / 100 ग्राम
कॉपर	5.44	मिलीग्राम / 100 ग्राम
फास्फोरस	130.46	मिलीग्राम / 100 ग्राम

सारणी 2 : झाड करेला मे पाये जाने वाले घटक और उनके स्वास्थ्य लाभ

घटक	स्वास्थ्य लाभ
कुकुर्बिटेन ग्लाइकोसाइड	मधुमेह विरोधी
कुगुआसिन जे	एंटी–कैंसर
कारविलाजेनिन सी	एंटी–कैंसर
बालसामिनाजेनिन ए	एंटी–कैंसर
बालसामिनोसाइड बी	एंटी–कैंसर
बालसामिनॉल एफ	स्किस्टोसोमा मैनसोनी एडल्ट वर्मस के खिलाफ स्किस्टोसोमाइडल एक्टिविटी
मोमोर्डिन–I	एंटी–वायरल
मोमोर्डिन–II	एंटी–वायरल
बालसामिनापेंन्टोल	एंटी–मलेरिया
कुकुरबालसामिनोल	परजीवी विरोधी

चित्र 1 : ट्रेलिस सिस्टम पर झाड करेला में प्रचुर मात्रा में फूलना और फलना

चित्र 2: झाड करेला के बीज, फूल स्वरूप, कोमल फल (बिक्री के लिए तैयार) और परिपक्व फल (बीज निकालने के लिए)

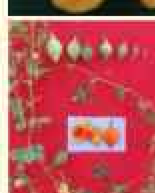

चित्र 3: झाड करेला का पौधा तथा उसके सभी बाह्य भाग (तना, पत्ती, प्रतान, नर व मादा पुष्प,खाने योग्य फल, परिपक्व फल (बीज योग्य) तथा बीज)

बाँस स्टेकिंग पर सब्जियों की खेती द्वारा दोहरा लाभ

पुष्पेंद्र राजपूत व पूनम[1]

जायद में अगेती किस्म की लतावर्गीय सब्जियों को स्टेकिंग विधि से लगाकर किसान अच्छी उपज पा सकते हैं। पहले इन सब्जियों की पौध नर्सरी में तैयार की जाती है और फिर मुख्य खेत में रोपड किया जाता है। स्टेकिंग में लौकी, खीरा, करेला, सेम व टमाटर जैसी बेल वाली सब्जियों की खेती की जा सकती है। स्टेकिंग पर खेती से किसान 90 प्रतिशत तक फसल को बचाया जा सकता है।

परिचय

स्ट्रेकिंग विधि से बेल वाली सब्जियों तथा टमाटर की खेती करनें के लिए बाँस अथवा लोहे के पोलों की आवश्यकता होती है। पहले सब्जियों की पौध नर्सरी में तैयार की जाती है जिसमें तीन से चार सप्ताह का समय लगता है। एक एकड क्षेत्र में बाँस स्टेकिंग के लिए आठ फीट लम्बाई के लगभग 600 बाँस, लोहे के पतले तार व सुतली की आवश्यकता होती है। इसी दौरान खेत में चार से छः फीट की दूरी पर 15 से 20 सेंटीमीटर ऊँचे व 1 से 1.5 मीटर चौडे बेड तैयार कर लिये जाते हैं। इन्हीं बेडों पर नर्सरी में तैयार टमाटर के पौधों को उचित दूरी पर रोपित कर देते हैं। लतावर्गीय सब्जियों के लिये पौधों को बाँस अथवा लोहे के पोलों के पास थाला बनाकर उचित दूरी पर लगा देते हैं। बाँस अथवा लोहे के पोलों को 10x10 फीट की दूरी पर जमींन में गाड देते हैं तथा तार के सहारे बाँसों पर जाल बनाया जाता है। खेत में पौधों के लगनें के बाद तनों में सुतली बाँधकर तार के बने जाल पर चडाया जाता है।

सब्जियों का चुनाव

बेल वाली सब्जियाँ जिनके फल अधिक भारी न हों का चुनाव स्टेकिंग पर चढाने के लिए कर सकते हैं। लौकी, खीरा, करेला, सेम व टमाटर आदि सब्जी फसलें इसके लिए उपयुक्त हैं।

उन्नत किस्में

लौकी – पूसा नवीन, पूसा मंजरी, पूसा मेघदूत, पूसा संदेश, पूसा संतुष्टि, पूसा सम्रधि, पूसा हाइब्रिड 3, अर्का बहार, काशी गगां व काशी बहार आदि।

करेला – पूसा रसदार, पूसा पूर्वी, पूसा औषधि, पूसा दो मौसमी, पूसा हाइब्रिड 1, अर्का हरित व काशी उर्वशी आदि।

खीरा – पूसा उदय, पूसा बरखा, पूसा संयोग व पोइनसेट आदि।

नसदार तोरई – पूसा नसदार, पूसा नूतन, काशी भिवानी, काशी खुशी, अर्का सुजात, अर्का सुमीत, अर्का प्रसन, फूले सुजाता, स्वर्ण मंजरी, कल्याणपुर धारीदार व पंत तोरइ 1 आदि।

चिकनी तोरई – पूसा चिकनी, पूसा सुप्रिया, पूसा स्नेहा, स्वर्ण प्रभा, काशी दिव्या, काशी सौम्या, काशी ज्योति, कल्याणपुर हरी चिकनी, पंत चिकनी तोरइ 1 व राजेंद्र नंनुआ 1 आदि।

बाँस स्टेकिंग पर करेला की खेती

विधि –

करेले की बुआई मार्च में बाँस के पास थाला बनाकर करें जिसमें फलत सितबंर तक प्राप्त होती है। तोरई की बुआई जुलाई में अलग थालों में करें जिससे करेले की फसल समाप्त होने तक तोरई स्टेकिंग पर आ जाये। लौकी की बुआई सितबंर में अलग थालों में करें जिससे तोरई की फसल समाप्त होने तक लौकी स्टेकिंग पर आ जाये।

उद्यानिकी विभाग, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकीय विश्वविद्यालय,पंत नगर उत्तराखंड
[1]राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

स्केटिंग खेती के लाभ

उपज में बढोतरी –

स्टेकिंग पर पोधों को फैलने के लिए पर्याप्त जगह मिल जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्रकाश संलेशण बढनें के कारण उपज में 30 से 35 प्रतिशत तक बढोतरी होती है।

गुणवत्ता में सुधार –

फल गुरुत्वाकर्षण के कारण व भूमि के संपर्क में न आने के कारण लंबे मुलायम एवं रंग में समरूप रहते हैं, जिससे फलों का बाजार मूल्य अधिक मिलता है।

कीट व रोगों का कम प्रकोप –

स्टेकिंग विधि में पौधे भूमि से दूर रहने के कारण कीट व रोगों से कम प्रभावित होते हैं व नियंत्रण करना भी आसान होता है।

भूमि का इष्टतम उपयोग –

लतावर्गीय सब्जियों को स्टेकिंग विधि से लगाने से नीचे बची खाली जगह में आंशिक छाया वाली फसलें जैसे धनियाँ , पालक, हल्दी, अरबी व मूली आदि उगाकर दोहरा लाभ ले सकते हैं।

फसल की देखभाल व फलों की तुडाई में सुविधा –

इस विधि से खेती करनें पर कृषि कार्यो में आसानी होने के साथ साथ फलों की तुडाई भी आसानी से कर सकते हैं। बाँस स्टेकिंग तीन वर्ष तक उपयोगी अतः खर्च में कमीं और ज्यादा शुध्द लाभ मिल जाता है। धान गेहूँ की तुलना में 10 गुना ज्यादा शुध्द आय मिलती है। कम जमीन, कम पानी एव कम लागत से अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। जमीन से होने वाली बीमारियों एवं कीटों से फसल सुरक्षित रहती हैं। बरसात के मौसम में इस विधि की खेती फल को खराब होने से बचाती है फसल में यदि कोई रोग लगता है तो इस विधि में दवा छिडकनें में भी आसानी होती है।

बाँस स्टेकिंग पर करेला की खेती

शुष्क क्षेत्रों में अनार में कीट एवं रोग प्रबंधन

रमेश कुमार, जगन सिंह गोरा, श्रवण मनमर हलधर एवं सुशील कुमार माहेश्वरी

परिचय

अनार शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण बागवानी फसल है। अनार स्वास्थ्य के लिये बहुत ही लाभदायक फल है। यह पोषक तत्वों, एन्टिऑक्सोडेन्ट्स, आहार रेशों तथा विटामिन से भरपूर, रसीला तथा स्वादिष्ट होता है। इसके ताजा फलों व रस के उपयोग के अलावा इसके विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पाद जैसे स्वादिष्ठ पेय, जेल्ली, अनारदाना, अनारपाचक तथा सिरप काफी प्रमुख है। भारत में अनार की खेती महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आँध्रप्रदेश, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान में मुख्यरूप से की जाती है। भारत में वर्ष 2022–23 के दौरान अनार का कुल क्षेत्रफल 2.72 लाख हेक्टेयर के साथ फल उत्पादन 30.66 लाख टन तथा उत्पादकता 11.27 टन प्रति हेक्टेयर थी। राजस्थान में अनार की खेती मुख्य रूप से बाड़मेर, जालोर, सिरोही, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, भीलवाड़ा, नागौर, जयपुर, सीकर, झुंझुनू तथा पाली जिलों में की जाती है। राजस्थान में अनार का क्षेत्रफल लगभग 25,000 हेक्टेयर तथा उत्पादकता 6.2 टन प्रति हेक्टेयर है। अनार के उच्च पोषक मूल्य, एंटीऑक्सीडेंट क्षमता, जैव सक्रिय यौगिक तथा रसायन निवारण गुणों के कारण इसमें उच्च औषधीय गुण तथा उपभोक्ता आकर्षण होता है जिसके कारण इसे 'सुपर फूड' या 'औषधीय भोजन' कहा जाता है। अनार में प्रतिकूल जलवायु, उच्च गर्मी, शुष्कता तथा लवणीय भूमि को सहने की अद्भुत अनुकूलनशीलता होती है। इसकी दृढ़ प्रकृति, कम लागत, लगातार उच्च उत्पादन, लम्बी भण्डारण अवधि, उच्च पोषक एवं औषधीय गुण तथा शुष्क वातावरण के दौरान प्रसुप्तता में जाने की क्षमता के कारण इसका क्षेत्रफल लगातार बढ़ रहा है। अनार की खेती रेगिस्तानी जिलों मुख्यतः बाड़मेर, जोधपुर, बीकानेर एवं जैसलमेर में किसानो के लिए वरदान साबित हो रही है। अनार अनेक बीमारियों और कीटों से प्रभावित होता है। भारत में अनार के लिए बैक्टीरियल ब्लाइट, सूत्रकृमि और उकठा गंभीर खतरा हैं, जबकि राजस्थान के गर्म शुष्क क्षेत्र में सूत्रकृमि, फल धब्बा, बैक्टीरियल ब्लाइट और माइट प्रमुख समस्याएं हैं। आजकल मौसम परिवर्तन, अनुशंसित मानको का पालन नहीं करने तथा अनार में अवमानक पौध रोपण सामग्री के कारण अनार में बीमारियों और कीटों का प्रकोप बहुत तेजी से बढ़ रहा है। जिसकी वजह पौधों की वृद्धि, फल गुणवत्ता एवं उपज कम हो जाती है।

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)–334 006

मुख्य कीट, उनके लक्षण तथा प्रबंधन

1.माइट (टेनुईपुल्पस पुनिकी): राजस्थान के गर्म शुष्क क्षेत्रों में इसका प्रकोप अप्रैल से अक्टूबर के दौरान बहुत ज्यादा होता है, जब तापमान ज्यादा एवं रेतीली आंधियां चलती है। माइट प्रभाव अनार के पौधे के सभी भाग जैसे पत्तियां, तना, फल और फूल पर होता है। यह लाल रंग का अति सूक्ष्म कीट, अनार की पतियों पर पाया जाता है जिससे पत्तियां भूरे लाल रंग की दिखाई देती है। यह पतियों का रस चूसता है जिससे पत्तियां ऊपर की तरफ मुड़ जाती है अधिक प्रकोप होने पर पत्तिया गिर जाती है।

माईट से प्रभावित पत्तियां एवं फल

प्रबंधन : गर्मी के मौसम में बार–बार सिंचाई करने से माईट का प्रकोप कम हो जाता है। कीट का संक्रमण होने पर सूखे मौसम में ऐस्पायरोमेसिफेन 240% एससी का 0.4–0.6 मिली प्रति लीटर अथवा प्रोपारजाईट 57% ईसी 1–1.5 मिली प्रति लीटर अथवा ईथिऑन 50% ईसी 1–1.5 मिली प्रति लीटर का बारी बारी से छिड़काव करें। एज़ाडिरेक्टिन 1% ईसी (10000 पीपीएम) का 3.0 मिली/लीटर दर से छिड़काव करें।

2. थ्रिप्स (स्किरटोथ्रिप्स डॉर्सालिस): राजस्थान के गर्म शुष्क क्षेत्रों में इसका प्रकोप मार्च –अप्रैल होता है और जैसे तापमान बढ़ता है इसका प्रकोप कम हो जाता हैं। निम्फ एवं व्यस्क दोनों पतियों को निचली सतह तथा बाहरी छाल का रस चूसते है जिससे पत्तियां का सिरा भूरे रंग का होकर मुड़ जाता है। पत्तियां सूखकर नीचे गिरने लगती है फलों पर भूरे रंग की पपड़ी जम जाती है, जिससे बाजार भाव कम मिलता है।

थ्रिप्स एवं इससे प्रभावित मुड़ी हुई पत्तियां

प्रबंधन : थ्रिप्स की रोकथाम के लिए नीले चिपचिपे ट्रैप का उपयोग (एक ट्रैप प्रति 10 पौधे की दर से) करें। मिर्च और प्याज जैसी फसलों की अंतरवर्ती खेती न करें। कीट का संक्रमण पर होने इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एसएल का 0.5 मिली/लीटर या स्पिनोसैड 45% एससी का 0.5 मिली प्रति लीटर या प्रोफेनोफॉस 50% ईसी का 2 मिली/लीटर छिड़काव करे। एज़ाडिरेक्टिन 1% ईसी (10000 पीपीएम) का 3.0 मिली/लीटर दर से छिड़काव करें।

3. एफिड्स (एफिस प्यूनिकी): राजस्थान के गर्म शुष्क क्षेत्रों में इसका प्रकोप मार्च–अप्रैल होता है और जैसे तापमान बढ़ता है इसका प्रकोप कम हो जाता हैं। निम्फ एवं व्यस्क दोनों पतियों की निचली सतह तथा बाहरी छाल का रस चूसते है जिससे पत्तियां भूरे रंग की होकर निचे गिरने लगती है । ये कीट प्रचुर मात्रा में शहद रस जैसा पदार्थ भी स्रावित करते हैं जिस पर कालिखयुक्त फफूंद (सूटी मोल्ड) विकसित हो जाती हैं, जिससे पौधे की प्रकाश संश्लेषक गतिविधि में बाधा उत्पन्न होती है।

थ्रिप्स एवं इससे प्रभावित मुड़ी हुई पत्तियां

प्रबंधन : क्षतिग्रस्त पौधों के हिस्सों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें। पीले चिपचिपे ट्रैप का प्रयोग करें। इस कीट के प्रभावी प्रबंधन के लिए इमिडाक्लोप्रिड 17.8% एसएल 0.5 मिली/लीटर या प्रोफेनोफॉस 50% ईसी 2 मिली/लीटर या स्पिनोसैड 45% एससी 0.5 मिली प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें। वनस्पति कीटनाशक जैसे नीम का तेल, नीम बीज अर्क, एज़ाडिरेक्टिन 1% ईसी (10000 पीपीएम) का 3.0 मिली/लीटर दर से छिड़काव करें।

4.अनार की तितली (ड्यूड़ोरिक्स आईसोक्रेट्स): राजस्थान के गर्म शुष्क क्षेत्रों में इसका प्रकोप बहुत कम होता है। प्रौढ तितली फूलों पर तथा फलों पर अण्डे देती है। जिनसे इल्ली निकलकर फलों के अन्दर प्रवेश कर जाती है तथा दानो को खाती है। प्रकोपित फल सड़ने लगते हैं, अवशिष्ट पदार्थ छिद्र से बाहर निकलता है और फल असमय झड़ जाते हैं।

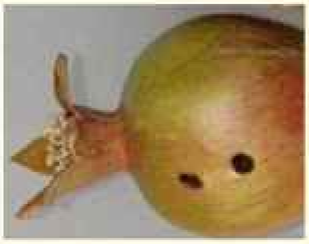

अनार की तितली एवं प्रभावित फल

प्रबंधन : इसके प्रबंधन के लिए प्रभावित फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें तथा खेत को खरपतवारों से मुक्त रखें । स्पिनोसैड 45% एससी 0.5 का मिली प्रति लीटर या इन्डोजाकार्ब 14.5 % एससी का 0.75 मिली प्रति लीटर के हिसाब से पानी में घोल बनाकर प्रथम छिड़काव फूल आते समय एवं द्वितीय छिड़काव 15 दिन बाद करें। फलों को पेपर या पॉलीथिन बैग से ढक दें। फूल आने की अवस्था में, नीम के बीज करनेल का अर्क (एन.एस.के.ई.) 5% या एज़ाडिरेक्टिन 1500 पीपीएम का 3.0 मिली/लीटर दर से छिड़काव करें।

5. फल चूसने वाला मोथ (ओथ्रेइस फुलोनिया): राजस्थान के गर्म शुष्क क्षेत्रों में इसका प्रकोप बहुत कम होता है। मोथ में अच्छी तरह से विकसित दांतेदार सूंड होती हैं जिससे वे पकने वाले फलों को छेदने में सक्षम होते हैं । यह कीट रात के समय अनार के फलों से रस चुसकर नुकसान पहुचाता है। प्रभावित फल कुछ समय के बाद सड़ने लगते हैं और फल असमय झड़ जाते हैं।

फल चूसने वाला मोथ

प्रबंधन : खरपतवार को समय दृसमय पर निकालकर बगीचों को मोथ से बचाया जा सकता है। फलों को बैग से ढककर फलों को बचाने हेतु सुझाव दिया जाता है। सूर्यास्त के बाद बगीचों में धुआं पैदा करने से मोथ को दूर रखा जा

सकता है। पोइजन बैट (20 ग्राम मैलाथियान 50% डब्ल्यू. पी. + 200 ग्राम गुड़ 2 लीटर पानी में) का उपयोग काफी प्रभावशाली पाया गया है।

6. दीमक (ओडोन्टोटर्मेस ओबेसस): राजस्थान के गर्म शुष्क क्षेत्रों में बलुई मिट्टी में बगीचा लगाने पर दीमक का विशेष ध्यान रखना चाहिए। दीमक जड़ों, शाखाओं तथा तनों को नुकसान पहुंचाती है। बगीचे में पौधों के अवशिष्ट एवं सुखी हुई लकड़ियों को समय समय पर हटाते हुए साफ रखना चाहिये।

दीमक एवं इससे प्रभावित तना

प्रबंधन: पोधों में नियमित सिंचाई करें। पौधों को लगाते समय 0.5–1 किग्रा नीम केक को गड्ढे की मिट्टी में मिला दें। मिटटी की टनल को हटाना चाहिए। क्लोरोपायरीफास 20% ईसी का 1–2 मिली./ली. का घोल बनाकर 5–8 लीटर पौधें के जड़ों में डालकर मृदा को गीला कर दें। एज़ाडिरेक्टिन 1% ईसी (10000 पीपीएम) का 3.0 मिली/लीटर दर से उपयोग करें।

मुख्य रोग, उनके लक्षण तथा प्रबंधन

1.फफूँद जनित पर्णीय एवं फल धब्बा : यह रोग विभिन्न प्रकार के फफूँद जैसे सर्कोस्पोरा, कोलिटोट्राईकम और आल्टरनेरिया से होता है। इस रोग में पतियों एवं फलों पर अनियमित आकार में छोटे भूरे, काले रंग के धब्बे बन जाते हैं जो बाद बड़े धब्बों में परिवर्तित हो जाते हैं।

सर्कोस्पोरा से प्रभावित पत्तियां एवं फल

कलेक्टोट्राईकम से प्रभावित फल अल्टरनेरिया से प्रभावित पत्तियां
फफूँद जनित पर्णीय एवं फल धब्बा

प्रबंधन : प्रभावित पतियों एवं फलों को तोड़कर कर नष्ट कर दें। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में कॉपर ओक्सी क्लोराइड 50% डब्लूपी का 2–3 ग्राम/ लीटर, कार्बेन्डाजिम 50% डब्लूपी का 2 ग्राम/ लीटर, मेंकोजेब 75% डब्लूपी का 2 ग्राम/ लीटर का 15 दिन के अंतराल पर से छिड़काव करें। इसकी रोकथान के लिए बारी – बारी से प्रोपिकोनाज़ोल 25% ईसी का 0.5–1.0 मिली/लीटर या डाईफेनोकोनाजोल 25% ईसी का 0.5–1.0 मिली/लीटर का भी उपयोग करें।

2. जीवाणु पत्ती झुलसा (ज़ैंथोमोनस एक्सोनोपोडिस पी.वी. पुनिकी): इसे तेलिया रोग या बैक्टीरियल ब्लाइट के नाम से भी जाना जाता है। इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में छोटे अनियमित आकार के तेलिय धब्बे पत्तियों, तने तथा फलों पर बन जाते हैं। पत्तियों पर ये धब्बे बाद में हल्के भूरे से गहरे भूरे रंग हो जाते है तथा पीले रंग से घिरे होते हैं। अधिक संक्रमण होने पर फलों पर गहरे भूरे रंग धब्बे और सफ़ेद पपड़ी दिखाई देती है और फल फट जाते हैं।

बैक्टीरियल ब्लाइट से प्रभावित पत्तियां, तना एवं फल

प्रबंधन : पेड़ों से गिरी हुई पत्तियों एवं शाखाओं को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए और रोग रहित रोपण सामग्री का चुनाव करें। प्रूनिंग के बाद ताजा बने बोर्डो मिश्रण का 1 प्रतिशत का छिड़काव करें। कॉपर हाइड्रोकसाइड 53.8: डब्लूपी का 1.5–2 ग्राम/ लीटर या कॉपर ओक्सी क्लोराइड 50% डब्लूपी का 2–3 ग्राम/

लीटर तथा ब्रोनोपोल 95% का 0.5 ग्राम/लीटर का पानी में घोलकर 15–20 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

3. उकटा : यह रोग सेराटोसिस्टीस फिम्ब्रीयाटा कवक के कारण होता हैं। राजस्थान की बलुई मिट्टी में इसका प्रकोप बहुत कम होता हैं। इस रोग का प्रकोप मुख्यतः अधिक नमी तथा पानी के ठहराव वाली चिकनी या दोमट मिट्टी में होता हैं। इस रोग का प्रमुख लक्षण पत्तियों का पीला पड़ना, जड़ों तथा तनों के अंदर हल्के भूरे–काले धब्बे हैं। पौधों की शाखाये सूखने लगती है। अधिक संक्रमण होने पर पौधें पीले होकर सूखने लगते हैं।

उकटा से प्रभावित पौधों में पत्तियों का पीला पड़ना तथा तनों का अंदर से हल्के भूरा-काला होना

प्रबंधन : उकटा रोग से पूर्णतः प्रभावित पौधों को बगीचे से उखाड़कर जला दें उखाड़ते समय संक्रमित पौधों की जड़ों और उसके आस–पास की मृदा को बोरे या पालीथीन बैग में भरकर बाहर फेंक दें। रोग के लक्षण दिखाई देते ही क्लोरोपायरीफास 20 ई.सी. (2.5 मिली/ली) + कार्बेन्डाजिम 50% डब्लूपी (2ग्राम/ली) अथवा प्रोपिकोनाज़ोल 25% ईसी का 2 मिली./ली.) के घोल का 5–8 लीटर प्रति पौधें के जड़ों में डालकर मृदा को तर कर दें।

सूत्रकृमि (मेलोइडोगाइन इन्कॉगनीटा): सूत्रकृमि अनार की जड़ों को नुकसान पहुंचता है, इसकी वजह से जड़ों में छोटी– छोटी गांठें बन जाती है, पौधों में पोषण की कमी जैसे लक्षण दिखाई देते है जैसे कि वृद्धि में रुकावट, पतियों में पीलापन, सूखी पत्तियाँ, पत्तियों का गिरना, सूखी शाखाएँ, और उत्पादकता में धीरे–धीरे कमी होती है । संक्रमित पौधों में शुरू के वर्ष में वृद्धि में रुकावट तथा पतियों में पीलापन दिखाई देता है और पत्तियां बहुत छोटी– छोटी आती है। कई बार संक्रमित पौधे स्वस्थ दिखते हैं लेकिन ऐसे पौधों में फूल बहुत कम या बिल्कुल नहीं होते हैं। सुत्रकर्मी की संख्या में वृद्धि के साथ, पौधों के पोषण तत्वों की अवशोषण कम होने से पौधों कमजोर, फल–पतियाँ छोटे और उत्पादन कम होने लगता है। अंत में पौधा सुख जाता है। सूत्रकर्मी के कारण जड़ों में होने वाले घावों से रोगजन्य कवक (सेरेटोसिस्टीस फिम्ब्रीयाटा और फ्यूजेरीयम ऑक्सीस्पोरम) को जडों में आसानी से प्रवेश कर जाते है और उकटा (विल्ट) रोग पैदा करते हैं।

सूत्रकृमि से संक्रमित जड़ों में गांठे एवं पत्तियों का छोटा होना

सूत्रकृमि का फैलावः अनार में पाया जाने वाला जड गांठ सूत्रकृमि का फैलाव मुख्यरूप से संक्रमित पोधों और जड़ तंत्र (रूटिंग मीडिया) से होता है । गुट्टी एवं कलम से तैयार पोधों में सूत्रकृमि के संक्रमण की सम्भावना बहुत ज्यादा होती है। अनार में कई बार अंत सस्यन फसलों जैसे भिन्डी, टमाटर, बैगन और कद्दुवर्गीय सब्जियों की खेती की जाती है ये फसलें सूत्रकृमि से संक्रमित होती है जिससे सूत्रकृमी का फैलाव अनार में होता है। अनार में ट्रेक्टर से जुताई करने, कृषि यंत्रों, वाहनों के टायरों और खेत उपकरणों से सूत्रकृमि संक्रमित जड़ो द्वारा आसपास के पौधों में और दुसरे बगीचों फेलते है। कई बार अनार में खुले सिंचाई (फलडिंग) करने से सूत्रकृमी पानी के साथ बहकर दुसरे स्थान पर अन्य पौधों में फेलते हैं।

सुत्रकर्मी का प्रबंधन : ऊतक संवर्धित पौधे किसी भी प्रकार के कीट और रोग प्रकोप से मुक्त होते हैं । अनार की खेती लिए ऊतक संवर्धित पौधों का उपयोग करना चाहिए। बाग़ प्रबंधन के लिए स्थल चयन एक स्वस्थ बाग़ स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण है। लगभग 1–2 वर्षों के लिए खेत का उपयोग दालों और सब्जियों की खेती के लिए नहीं किया जाना चाहिए, ताकि सूत्रकृमि संक्रमण से बचा जा सके।

यदि मिट्टी में सूत्रकृमि मौजूद है, तो संक्रमण को कम करने के लिए 2–3 सीजन के लिए गहरी गर्मियों में जुताई करनी चाहिए। गड्ढों को रोगरहित (स्टेरीलाइजेसन) करने के लिए 4% फॉर्मालिन का उपयोग करें और गड्ढों को प्लास्टिक पॉलिथीन से ढककर 5 –6 सप्ताह के लिए छोड़ दें। यदि स्थल के आस–पास या गड्ढों में मौजूद सूत्रकृमि संक्रमित सपलिंग्स या पेड़ों को निकाल दें और नष्ट करें।

अनार में पाया जाने वाला जड गांठ सूत्रकृमि तापमान और पानी की कमी प्रति बहुत सवेंदनशील है और बिना पौधों और पानी के जल्दी मर जाते है, इसलिए बाग़ को

घास और फल और सब्जियों जैसे मिर्च, बैंगन, टमाटर, ककड़ी आदि से मुक्त रखना चाहिए।

पोधों चारों तरफ बेसिन में नीम की खली 2– 5 किलो प्रति पोधे की दर से मिलाना चाहिए।

मृदा के सोलेराइजेसन से सूत्रकृमि को नष्ट किया जा सकता है । इसके लिए जहाँ अनार के पोधें लगाने होते अप्रैल–मई माह में उसें सिंचाई देकर अच्छी तरह गिला करते है । उसके बाद मिटटी को 50–75 माइक्रोन मोटी पारदर्शी पॉलिथीन कवर से 6 सप्ताह के लिये ढक देते है जिससे अधिक तापमान पर सुत्रकर्मी और अन्य रोगाणु मर जाते है ।

जैविक फॉर्म्यूलेशन (अस्पेरजिलस निजर, स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस, ट्राइकोडर्मा हार्जियानम, पेसिलोमाइस लिलासिनस) एक किलोग्राम प्रनि टन खाद में मिलाना चाहिए । इस मिश्रण को 50–60% नमी रखते हुए 2–3 दिन में पलटते रहे और 15 दिन बाद इसका इस्तेमाल करें । इन सभी को अलग–अलग बढ़ाये और इस परिणामी मिश्रण को 10 – 20 किलोग्राम प्रतिपौधा की दर से साल में दो बार उपयोग करना चाहिए और आवश्यक आर्द्रता को बनाए रखें।

अगर सूत्रकृमि का प्रकोप ज्यादा हो तो रासायनिक सूत्रकृमिनाशक का उपयोग करना चाहिए । फ्लूएनसल्फोन 2% जीआर 40 ग्राम प्रति पोधा उपयोग करना चाहिए इसके लिए प्रत्येक ड्रिपर के नीचे 5–10 सेमी गहरा गड्ढा बनाकर उसमें फ्लूएनसल्फोन 10 ग्राम प्रति ड्रिपर डालकर ढक दे और अच्छी तरह सिंचाई करें ।

इसके अलावा सूत्रकृमि के प्रकोप को कम करने के लिए फ्लूओपायरम 34.48% एस.सी. 2 मिली लीटर पानी प्रति पोधा (0.5 मिली लीटर प्रति ड्रिपर) ड्रेचिंग से देना चाहिए । ड्रेचिंग से पहले पोधों में अच्छी तरह सिंचाई करने चाहिए और फ्लूओपायरम के उपयोग के बाद 2 –4 दिनों के लिए सिंचाई बंद करनी चाहिए ।

सूत्रकृमि के प्रकोप को कम करने के लिए 3 से 5 महीने के लिए अनार के पोधों के बीच की जगह में अफ्रीकी गैंदे की किस्म 'पूसा नारंगी' और 'पूसा बसंती' को लगाया चाहिए ।

किसी भी समाज को अनिवार्यतः अपनी भाषा में ही जीना होगा, नहीं तो उसकी अस्मिता कुंठित होगी ही और उसमें आत्म–बहिष्कार या अजनबियत के विचार प्रकट होंगे ही।

–अज्ञेय

खजूर की प्रमुख बीमारियाँ एवं उनका एकीकृत प्रबंधन

एस. के. माहेश्वरी[1], रामकेश मीणा[1] एवं कैलाश पटेल[2]

खजूर एक प्राचीन फल वृक्ष है । आजादी से पूर्व हमारे देश में पंजाब प्रांत में इसकी खेती बहुतायत में होती थी। अब गुजरात के कच्छ क्षेत्र में अधिकाशतः खजूर उगाया जाता है। इसके अलावा पश्चिमी राजस्थान, हरियाणा, पंजाब एवं तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में खेती होती है। गर्म–शुष्क जलवायु में उगाया जाने वाला फल वृक्ष है, इसके पौधों में सूखा, लवणता तथा अत्यधिक शुष्क गर्म वातावरण सहने की क्षमता होती है। खजूर के फल बहुत पौष्टिक व शक्तिवर्धक होते हैं। फलों के गूदे में लगभग 20 प्रतिशत नमी के अतिरिक्त 60–65 प्रतिषत शर्करा, लगभग 2.5 प्रतिशत रेशा, 2.5 प्रतिशत प्रोटीन, 2 प्रतिशत से कम वसा व खनिज तत्व तथा विटामिन ए, विटामिन बी–1 (थायमीन), विटामिन सी, नियासिन तथा विटामिन बी–2 (राइबोफ्लेबिन) पाए जाते हैं। एक किलोग्राम खजूर के फलों से लगभग 3100 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। खजूर के फलों का सेवन रक्तवर्धक तथा कब्ज दूर करने में सहायक होता है। पौष्टिकता के अलावा इसमें औषधीय गुण भी पाये जाते है। इसके फल प्रायः पूर्ण पके अवस्था (पिण्ड) में खाए जाते हैं। कुछ किस्मों के फलों को अधपकी अवस्था (डोका) में जिसमें सर्वाधिक मिठास होने से ताजे फल के रूप में प्रयोग किये जाते है। डोका अवस्था के फलों से अच्छी गुणवत्ता के छुहारे व अन्य मूल्य संर्वधित उत्पाद बनाये जाते हैं। चटनी, स्क्वैस (आर.टी.एस. व अचार, जैम, सीरप) बनाया जा सकता है। खजूर की पत्तियों से टोकरी, पखें, झाडू व रस्सी इत्यादि बनाने के काम में आती हैं।

पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर व जोधपुर क्षेत्र खजूर उत्पादन के लिए उपयुक्त है। इन जिलों के अतिरिक्त चूरू, श्री गंगानगर, हनुमानगढ़ व नागौर जिलों के कुछ भाग, पंजाब में अबोहर, फाजिल्का, भंटिडा, हरियाणा में सिरसा, भिवानी, हिसार व गुजरात के कच्छ क्षेत्र में इसकी खेती की व्यापक संभावनाएं हैं। इसकी महत्वता को देखते हुए अभी विदेष से आयातित उत्तक सवंर्धित पौधे शुष्क क्षेत्र कें कई जिलों में लगभग 1500 हैक्टयर क्षेत्र में लगाये गये है। जिनमें बीकानेर जिले में लगभग 350 हेक्टेयर क्षेत्र में खजूर की बरही, मेडजूल, खुनैजी, जामली, सगाई व खलास किस्मों के पौधे लगाये गये हैं जिनमें फलत भी आरम्भ हो चुकी है। देश के गुजरात राज्य में सबसे अधिक क्षेत्र लगभग 22658 है. में लगे पौधों से लगभग 185632 मिट्रिक टन खजूर फल का उत्पादन होता है। अभी भारत में खजूर फल की मांग के अनुसार पैदावर कम होने के कारण इसका आयात लगभग 31157 मिलियन टन अरब के देशो से होता है।

खजूर के पौधों को लगाने में किसानों को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है. किसानों की प्रमुख समस्याओं में से विभिन्न बीमारियों के कारण फसलों में नुकसान का होना है जिससे इनकी उपज एवं गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जिससे बाजार मूल्य में गिरावट का सामना करना पड़ सकता हैं। खजूर में लगने वाले प्रमुख रोग एवं उनका नियंत्रण निम्न प्रकार किया जा सकता है–

1) अंतः भूस्तारी पौध गलन (सकर रोट) :

रोग के लक्षण

इसमें मुख्य प्ररोह में गलन की समस्या आती है जो फ्युजेरिम, फोमा, अलटरेनेरिया तथा बोटरियोडिप्लोडिया जाति आदि रोग जनक कवकों द्वारा होती है।

नियंत्रण–

अ) स्वस्थ मातृ पौधे से ही सकर लेने चाहिए।

ब) इसके नियंत्रण के लिए सकर को बेविस्टीन (2 ग्राम / लीटर) अथवा रिडोमिल (1.5 ग्राम / लीटर) कवकनाशी घोल में 2 से 10मिनट तक डुबोना चाहिए।

स) इसके नियंत्रण के लिए ब्लू कोपर (2.5 ग्राम / लीटर) से भूमि की ड्रेचिंग भी कर सकते है।

2) आल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग–

यह बीमारी अपने संस्थान के खजूर प्रखंड में लगे हुए जनंद्रव्य में और बीकानेर के खजूर अनुसंधान केंद्र में दिखाई दी हैं।

रोग के पहचान के लक्षण

पत्तियों की उपरी सतह पर हल्के भूरे रंग के छोटे धब्बे दिखाई देते हैं जो शीघ्रता से बड़े व गहरे रंग के हो

1 भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)–334 006
2 कृषि महाविद्याल;, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्याल;, बीकानेर (राजस्थान)

जाते हैं। ये धब्बे आपस में मिलकर पत्ती की कुछ सतह को घेर लेते हैं। धब्बे पौधों की निचली पत्तियों (पिन्नी) पर सबसे अधिक पाए जाते हैं, जबकि ऊपरी पत्तियों पर धब्बे कम और छोटे आकार के होते हैं।

रोग कारक : आल्ट रनेरिया कुकुमेरिना

समेकित बीमारी नियंत्रण–

i) गर्मी के मौसम में मिट्टी की गहरी जुताई करके खेत को खाली छोड़ दे।

ii) रोग ग्रस्त पौधों या लताओं को व खरपतवारों को उखाड़ कर खेत के बाहर जला दें।

iii) रोग प्रतिरोधी किस्मोंत का प्रयोग करें।

iv) मैनकोज़ेब या अन्य कवकनाशी का छिड़काव (2 gm/लिट्.) करने से इस रोग को कम कर सकते हैं।

3) ग्रेफियोला पत्ती धब्बा रोग

यह लीफ स्पॉट रोग मिस्र में सबसे आम है, लेकिन कम आर्द्र मरूभूमि में अनुपस्थित है। सऊदी अरब में जेद्दा में यह प्रचुर मात्रा में है। जहां भी खजूर की खेती आर्द्र परिस्थितियों में की जाती है, वहां यह बीमारी पाई जाती है।

रोग के लक्षण

पत्तियों के दोनों किनारों और रचिस पर छोटे धब्बे दिखाई देते हैं। छोटी–पीली/भूरी से काली सोरी, दो परतों के साथ उभर कर दिखाई देती हैं हैं। ये सोराई दो या तीन साल पुरानी पत्तियों पर प्रचुर मात्रा में होती हैं, लेकिन एक साल पुरानी पत्तियों पर अनुपस्थित या बहुत ही कम होती हैं। अत्यधिक संक्रमित पत्तियां समय से पहले मर जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप खजूर की उपज कम हो जाती है।

रोग कारक : यह कवक ग्राफियोला फोनीसिस के कारण होता है।

नियंत्रण

अ) इसके नियन्त्रण हेतु ग्रसित पत्तियों को काटकर नष्ट कर देना चाहि,।

ब) तांबा युक्त कवकनाशी कार्पर ऑक्सी क्लोराइड अथवा ब्लू कोपर व मैन्कोजेब का 2 ग्राम/लीटर पानी के घोल का 15 दिन के अंतराल पर से दो–तीन बार छिड़काव करें।

स) उपायों में पत्तियों की छंटाई के साथ–साथ बोर्डो मिश्रण या या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड + ज़िनेब) के साथ उपचार करना चाहिए.

द) कुछ किस्मों (बरही, अदबाद, रहमान, और तडाला) में इस रोग के प्रति सहिष्णुता पाई गई है।

4) फ्यूजेरियम उकठा रोग

खजूर में फ्यूजेरियम उकठा रोग (विल्ट) पहली बार 1990 में सऊदी अरब में रिपोर्ट किया गया था। यह हमारे संस्थान के खजूर ब्लॉक और अन्य खजूर उत्पादक क्षेत्रों में भी कम मात्रा में देखा गया है।

रोग के लक्षण

पत्तियां ऊपर से नीचे तक सफेद होने लगती है, फिर सफेदी भूरे रंग के मलिनकिरण के साथ में बदल जाती है। लक्षण बाहरी पत्तियों से लेकर युवा पत्तियों तक फैलते हैं शीर्षस्थ विमज्योतक से पेड़ की मृत्यु हो जाती हैं। रोगजनक संवहनी प्रणाली को अवरुद्ध करता है।

फंगस संक्रमण के कारण पत्तियाँ सूख जाती हैं।

रोग कारक : यह कवक फ्यूजेरियम स्पीशीज के कारण होने वाला रोग है।

नियंत्रण के उपाय

I) संक्रमित पत्तियों को काटकर तथा एकत्र कर जला दिया जाता है।

ii) केवल स्वस्थ खजूर के छोटे पेड़ों का रोपण करें।

iii) छंटाई उपकरणों का रोगाणुनाशन और उचित छंटाई।

iv) कवकनाशी जैसे कार्बेन्डाजिम (2 ग्राम) या नेटिवो (1 ग्राम/लिट.) से पौधों की ड्रेन्चिंग (Drenching) करें।

5) डिप्लोडिया रोग

रोग के लक्षण

जब पौधे मातृ हथेली से जुड़े होते हैं तो शाखाओं पर लक्षण गंभीर होते हैं या जब उनको अलग कर बाहर लगाए जाते हैं तब मृत्यु हो जाती है। कवक बाहरी पत्तियों को संक्रमित कर सकता है और अंततः छोटी पत्तियों और अंतिम कली को मार सकता है और पुरानी पत्तियों से पहले मर सकता है। पीली–भूरी धारियाँ पत्ती के आधार के साथ फैली हुई हैं

रोग कारक : यह कवक डिप्लोडिया फोनीकम के कारण होने वाला रोग है.

नियंत्रण

सभी उपकरणों और कटी हुई ताने के सतहों को कीटाणुरहित करना है। विभिन्न रसायनों (बोर्डो मिश्रण, थीरम और अन्य तांबा–आधारित कवकनाशी) के साथ शाखाओं को डुबाना या छिड़काव करने से रोग को कम क्या जा सकता है।

है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी–भरी।
हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी।।
— मैथिलीशरण गुप्त

लवणीय और क्षारीय भूमि में सुधार की तकनीकियाँ: मृदा सुधार और फसल प्रबंधन के दृष्टिकोण

अनिता मीणा,[1] एम. के. जाटव,[1] जितेंद्र कुमार मीणा,[2] एवं माधुरी मीणा[2]

भूमि लवणता और क्षारीयता विश्व भर में एक प्रमुख कृषि समस्या है। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ., 2017) के अनुसार, दुनिया भर में लगभग 800 मिलियन हैक्टर कृषि भूमि लवणीयता और क्षारीयता से प्रभावित है, जिनमें से करीब 7 मिलियन हैक्टर प्रभावित भूमि अकेले भारत में है। भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब और राजस्थान जैसे प्रमुख राज्यों में लवणीय भूमि का लगभग 40 प्रतिशत भाग फैला हुआ है। लवणीय भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए हर साल लगभग 27.3 बिलियन अमेरिकी डॉलर खर्च किए जाते हैं। इसके बावजूद, भारत में अब तक केवल 1.74 मिलियन हैक्टर ऊसर भूमि का ही सुधार किया जा सका है। इन मृदाओं की ऊपरी सतह पर अक्सर सफेद लवणों की परत जमी रहती है, जो जल सिंचाई के कुप्रबंधन और जल जमाव के कारण उत्पन्न होती है। इस समस्या के परिणामस्वरूप अवांछित खरपतवारों, घासों और हानिकारक झाड़ियों का फैलाव बढ़ जाता है। सूखने पर, इन भूमियों की सतह बहुत कठोर हो जाती है, जिससे पौधों की जड़ों का उचित विकास और वृद्धि बाधित होती है। लवणीय और क्षारीय भूमि देश की अर्थव्यवस्था के लिए एक गंभीर खतरा है, क्योंकि इससे मृदा की उत्पादकता प्रभावित होती है, जिससे भूमि बंजर बन जाती है। देश की बढ़ती जनसंख्या और खाद्यान्न आपूर्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, इन समस्याओं का समाधान खोजने और विभिन्न सुधारात्मक तकनीकों को अपनाने की अत्यंत आवश्यकता है। अतः, प्रभावी मृदा सुधार और फसल प्रबंधन तकनीकों को अपनाकर लवणीय और क्षारीय भूमि की समस्याओं का समाधान कर, इन्हें खेती योग्य बनाया जा सकता है। इस दिशा में उठाए गए कदम न केवल कृषि उत्पादकता को बढ़ाएंगे, बल्कि देश की खाद्यान्न सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता में भी योगदान देंगे।

बंजर भूमि के सुधार से न केवल भूमि की उत्पादकता में वृद्धि होती है, बल्कि यह गाँवों और स्थानीय समुदायों के लिए कई पर्यावरणीय और संसाधन संबंधी लाभ भी प्रदान करता है। जब हम बंजर भूमि को सुधारते हैं, तो इससे प्राकृतिक संसाधनों जैसे भूमि, जल और वातावरण की स्थिति में सुधार होता है और अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार होती हैं। इस प्रक्रिया से, भौगोलिक क्षेत्र की पारिस्थितिकी को बहाल किया जा सकता है, जिससे स्थानीय वनस्पति और जीवों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार होता है। लवणीय और क्षारीय मृदाओं की विशेषताओं को समझना इस सुधार प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है। लवणीय मृदाएँ ऐसी होती हैं जिनकी सतह पर उच्च मात्रा में लवण जमा हो जाता है, जो फसलों की वृद्धि को प्रभावित करता है। यह समस्या अक्सर जल सिंचाई के कुप्रबंधन और असामान्य जलजमाव के कारण उत्पन्न होती है। इन मृदाओं में फसलों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की कमी हो जाती है, जिससे कृषि उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वहीं, क्षारीय मृदाएँ ऐसी होती हैं जिनमें पोटाश और सोडियम के अत्यधिक स्तर के कारण मिट्टी की क्षारीयता बढ़ जाती है। यह मिट्टी की संरचना को प्रभावित करती है और पौधों की जड़ों की वृद्धि में बाधा डालती है। इन मृदाओं के गुणों को समझने और सुधारात्मक तकनीकों को लागू करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार होता है। यह न केवल कृषि उत्पादकता को बढ़ाता है, बल्कि स्थानीय जलवायु, पानी की गुणवत्ता, और वायुमंडलीय परिस्थितियों में भी सुधार लाता है। बंजर भूमि के सुधार से समग्र पर्यावरणीय स्थिति में सुधार होता है, जिससे ग्रामीण इलाकों में प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर प्रबंधन संभव होता है और एक स्वस्थ और संतुलित पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण होता है।

लवणीय मृदा:

लवणीय मृदा वह भूमि होती है जिसमें मृदा में उपलब्ध लवण की मात्रा अत्यधिक होती है, और इसकी मात्रा में वृद्धि की प्रक्रिया को लवणीकरण कहा जाता है। सामान्यतः, नमक प्राकृतिक रूप से मृदा और जल में पाया जाता है, लेकिन जब इनकी मात्रा अत्यधिक बढ़ जाती है, तो मृदा लवणीय हो जाती है। लवणीय मृदा की सतह पर

1 भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)–334 006
2 महर्षि अरविन्द विश्वविद्याल, जयपुर (राजस्थान)

कैल्शियम, मैग्नीशियम, और पोटेशियम के क्लोराइड और सल्फेट आयन अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। मृदा का लवणीकरण प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा हो सकता है, जैसे कि खनिज अपक्षय या समुद्र का विस्थापन, जिनसे मृदा में लवणों की मात्रा बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त, कृत्रिम क्रियाएँ, जैसे कि अत्यधिक सिंचाई, भी मृदा की लवणता को बढ़ा सकती हैं। लवणीय मृदा की विद्युत चालकता (EC) 4 मिलीमोह्स प्रति सेमी से अधिक होती है, जबकि विनिमय योग्य सोडियम प्रतिशत (ESP) 15 प्रतिशत से कम होता है और पीएच मान 8.5 से कम रहता है। इन विशेषताओं के कारण, लवणीय मृदा में जल का अवशोषण बहुत धीरे–धीरे होता है और बीजों का जमाव भी देरी से होता है। पौधों की वृद्धि और जड़ों का विकास उचित ढंग से नहीं हो पाता, जिससे पौधों की वृद्धि में बाधा आती है और अंततः पौधे लवणों की अधिकता के कारण नष्ट हो सकते हैं।लवणीय मृदा के प्रभावी प्रबंधन और सुधार की आवश्यकता इसलिए है ताकि भूमि की उत्पादकता को बहाल किया जा सके और खेती के लिए उपयुक्त वातावरण सुनिश्चित किया जा सके।।

सारणी–1 लवणीय व क्षारीय मृदा की मुख्य विशेषताएं

क्र.स.	विशेषताए	लवणीय मृदा	क्षारीय मृदा
1	सोडियम लवणों की मात्रा	विनिमयशील सोडियम 15 प्रतिशत	विनिमयशील सोडियम 15 प्रतिशत
2	विद्युत चालकता	> 4.0	< 4 .0
3	पीएच मान	< 8.5	> 8.5
4	संरचना	हल्की धूल की तरह	कठोर व भौतिक संरचना क्षीण
5	ऊपरी सतह का रंग	सफेद रेह की तरह	राख व काले रंग की तरह
6	सुधार के तरीके	लीचिंग व उचित जल निकास	पायराइट एवं जिप्सम का प्रयोग
7	फसलें लवण	लवण सहनशील फसलें उगाना	प्रायः फसलों के लिए अयोग्य
8	सुधार	आसानी से	कठिनाई से

क्षारीय मृदाः

क्षारीय मृदा वह भूमि है जिसमें घुलनशील लवणों की मात्रा अपेक्षाकृत कम होने के बावजूद विनिमेय सोडियम की उच्च मात्रा पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। ऐसी मृदा में विनिमेय सोडियम 15 प्रतिशत से अधिक होता है, पीएच 8.5 से अधिक रहता है, और विद्युत चालकता 4 मिलीमोह्स प्रति सेमी से कम होती है। क्षारीय मृदा की ऊपरी सतह पर सामान्यतः राख और काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो सोडियम लवणों की अधिकता और जलभराव के संकेत होते हैं। इन कारणों से, बोई गई फसलों की वृद्धि सामान्य रूप से प्रभावित होती है और उपज की गुणवत्ता में कमी आती है। भूमि की भौतिक और रासायनिक दशा में इस प्रकार के बदलाव के परिणामस्वरूप, मृदा की उपजाऊ क्षमता और उर्वराशक्ति में महत्वपूर्ण ह्रास होता है। इस प्रकार की मृदा की समस्याओं को समझने और उनके प्रभावों का उचित मूल्यांकन करने के लिए क्षारीय और लवणीय भूमि के चित्रण में विशेष ध्यान दिया गया है। इन समस्याओं के समाधान के लिए मृदा सुधार की उपयुक्त तकनीकों को अपनाना आवश्यक है।

लवणीय एवं क्षारीय भूमि होने के प्रमुख कारण

1. **शुष्क जलवायु और जलवायु परिवर्तनः** शुष्क जलवायु और जलवायु परिवर्तन से भूमि पर पानी की कमी होती है, जिससे मृदा में लवणों का संचय बढ़ जाता है। जलवायु परिवर्तन से प्रभावित मौसमी परिस्थितियाँ भी मृदा लवणीकरण को बढ़ावा देती हैं।
2. **सिंचाई स्रोतों की लवणीय और क्षारीय प्रकृतिः** नलकूपों और नहरों के जल में जब लवण या क्षारीय तत्व अधिक होते हैं, तो यह मृदा में लवणीयता और क्षारीयता को बढ़ाता है। लंबे समय तक ऐसे जल का उपयोग मृदा की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।
3. **दोषपूर्ण सिंचाई पद्धतियाँः** सिंचाई के दौरान दोषपूर्ण पद्धतियाँ, जैसे अत्यधिक सिंचाई या असमान जल वितरण, मृदा में लवणों का संचय बढ़ा देती हैं। जल की अधिकता और असमान वितरण से मृदा का लवणीकरण होता है।

4.क्षारीय रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग: क्षारीय प्रकृति के रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग मृदा में सोडियम और अन्य क्षारीय तत्वों की मात्रा बढ़ाता है, जिससे मृदा क्षारीय हो जाती है।

5.जल निकास की उचित व्यवस्था का अभाव: उचित जल निकास की व्यवस्था न होने पर जल जमाव की समस्या उत्पन्न होती है, जिससे मृदा में लवण और क्षारीय तत्वों का संचय बढ़ जाता है।

6.बार–बार एक ही गहराई पर खेतों की जुताई: एक ही गहराई पर लगातार जुताई करने से मृदा की संरचना प्रभावित होती है और जल अवशोषण की क्षमता कम होती है, जिससे लवणीयता और क्षारीयता बढ़ सकती है।

7.नहरी क्षेत्रों में भूमि जल स्तर का ऊंचा उठना: नहरी क्षेत्रों में भूमि के जल स्तर का उच्च होना जलभराव और लवणीयता की समस्याएँ उत्पन्न कर सकता है, जिससे मृदा में लवणों का संचय होता है।

8.मृदा प्रबंधन में लापरवाही और दोषपूर्ण कृषि प्रणालियाँ: मृदा प्रबंधन में लापरवाही और दोषपूर्ण कृषि प्रणालियों का पालन करने से मृदा की गुणवत्ता में गिरावट होती है, जिससे लवणीयता और क्षारीयता की समस्याएँ बढ़ जाती हैं।

इन कारणों को समझकर और उनकी रोकथाम के लिए उपयुक्त उपायों को अपनाकर लवणीय और क्षारीय मृदाओं की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

मृदा सुधार एवं फसल प्रबंधन के लिए लवणीय मृदा सुधार के उपाय: लवणीय मृदा के सुधार के लिए निम्नलिखित भौतिक विधियाँ अपनाकर फसल उत्पादन के लिए भूमि को उपयुक्त बनाया जा सकता है:

1.निक्षालन (लीचिंग): इस विधि के अंतर्गत, खेत को छोटे–छोटे टुकड़ों में बाँटकर मेंड़बंदी की जाती है। फिर खेत में 10–15 सेंटीमीटर तक पानी भर दिया जाता है, जिससे घुलनशील लवण जल में घुलकर पौधों की जड़ क्षेत्र से नीचे चले जाते हैं। यह विधि विशेष रूप से उन क्षेत्रों में अपनानी चाहिए जहां जल स्तर नीचा हो। गर्मी का मौसम इस क्रिया के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि गर्म तापमान जल को जल्दी वाष्पित करता है और लवणों को प्रभावी ढंग से बाहर निकालता है।

2.खाई खोदकर: इस विधि में खेत में एक निश्चित अंतराल पर खाइयाँ खोदी जाती हैं। पहली खाई की मिट्टी को मेड़ के रूप में खेत के चारों ओर फैला दिया जाता है। फिर दूसरी खाई की मिट्टी को पहली खाई में भर दिया जाता है। इस प्रकार, लवणयुक्त मृदा खाई के नीचे चली जाती है और अधिक उपजाऊ मृदा ऊपर आ जाती है, जिससे लवणीयता में कमी आती है।

3.खुरचकर: जब खेतों में हानिकारक लवण छोटे–छोटे टुकड़ों के रूप में परत के रूप में एकत्रित हो जाते हैं, तो इन्हें खुर्पी या कसोले की मदद से खुरचकर हटाना चाहिए। इससे मृदा की सतह से लवणों को निकालकर भूमि की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है।

4.जल निकास द्वारा: यदि खेतों से जल निकास की उचित व्यवस्था नहीं हो, तो मृदा में लवणों की मात्रा बढ़ जाती है। इस स्थिति में, खेतों से अत्यधिक जल को नालियों और नाले के माध्यम से बाहर निकालना चाहिए। उच्च जल स्तर और सख्त परत वाली भूमि पर इस विधि का उपयोग करना चाहिए, क्योंकि यह जल निकास की सुविधा प्रदान करता है और लवणीयता को कम करता है।

5.घुलित लवणों को जल से बहाना: इस विधि में, खेतों में पानी भर दिया जाता है जिससे ऊपरी सतह पर मौजूद लवण पानी में घुल जाते हैं। यह विधि उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है जहां मृदा के नीचे अधिक गहराई पर कठोर परत होती है। इसके बाद, इस गंदले पानी को नालियों के माध्यम से खेतों से दूर नदी–नालों में निकाल दिया जाता है, जिससे लवणीयता कम होती है।

6.अधोभूमि की कठोर परतों को तोड़ना: जिन भूमि में कम गहराई पर सख्त परतें होती हैं, उन्हें आधुनिक कृषि यंत्रों जैसे डिस्क प्लो और सब–सॉयलर की मदद से तोड़ा जाता है। यह मृदा की संरचना को सुधारता है और लवणीयता को कम करने में मदद करता है। यह कार्य आमतौर पर मई के महीने में किया जाता है, जब भूमि सूखी होती है और उपकरणों की क्रियाशीलता बेहतर होती है।

इन विधियों को अपनाकर लवणीय मृदा में सुधार किया जा सकता है, जिससे भूमि की गुणवत्ता में वृद्धि होती है और फसल उत्पादन की क्षमता बेहतर होती है।

मृदा सुधार एवं फसल प्रबंधन के लिए क्षारीय मृदा सुधार के उपाय:

1. जिप्सम का प्रयोग:

क्षारीय मृदा के सुधार हेतु जिप्सम का प्रयोग एक प्रभावी तकनीक है। क्षारीय मृदा में विनिमयशील सोडियम की मात्रा अधिक होती है, जिससे मृदा की उपजाऊ क्षमता और

फसल की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति में, जिप्सम (कैल्शियम सल्फेट) को उपयोग में लाना एक कारगर उपाय होता है। जिप्सम का प्रयोग करने के लिए, सबसे पहले मृदा में जिप्सम की प्रभावशीलता की जांच की जाती है। इसके बाद, अच्छी गुणवत्ता वाली बारीक जिप्सम को मृदा की सतह पर छिड़क दिया जाता है। जिप्सम को जमीन पर समान रूप से फैलाने के बाद, इसे सतह से 10 सेंटीमीटर की गहराई तक जुताई करके मृदा में मिला दिया जाता है। इस प्रक्रिया से जिप्सम मृदा के साथ मिल जाता है और कैल्शियम का स्तर बढ़ाता है, जो सोडियम के प्रभाव को कम करता है। जहाँ मृदा में कैल्शियम की मात्रा कम होती है, वहां जिप्सम का प्रयोग विशेष रूप से प्रभावी होता है। यह न केवल विनिमयशील सोडियम को प्रतिस्थापित करता है, बल्कि मृदा की संरचना को भी सुधारता है, जिससे पानी और पोषक तत्वों का अवशोषण बेहतर होता है। इस प्रकार, जिप्सम का प्रयोग क्षारीय मृदा के सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और भूमि की उपजाऊ क्षमता को पुनर्स्थापित करता है।

2. पायराइट का प्रयोगः

पायराइट का उपयोग क्षारीय मृदा सुधार में प्रभावी सिद्ध हो सकता है। पायराइट की मात्रा मृदा के पीएच मान और उसकी सघनता पर निर्भर करती है। सामान्यतः, प्रति हैक्टर 10 से 15 टन पायराइट का प्रयोग किया जाता है। विशेषकर, उन भूमियों में जहां कैल्शियम क्लोराइड लवणों की अधिकता होती है, पायराइट का उपयोग मृदा के सुधार के लिए लाभकारी होता है। पायराइट मृदा के अम्लीय गुणधर्म को सुधारने और कैल्शियम क्लोराइड लवणों के प्रभाव को कम करने में मदद करता है, जिससे मृदा की फसलों के लिए उपयुक्तता बढ़ जाती है।

- **पीएच संतुलनः** पायराइट का उपयोग मृदा के पीएच को संतुलित करने के लिए किया जाता है। इससे मृदा की अम्लता को कम किया जा सकता है, जिससे फसलों की वृद्धि में सुधार हो सकता है।
- **मृदा की सघनताः** पायराइट की मात्रा मृदा की सघनता और पीएच मान पर निर्भर करती है। सामान्यतः, प्रति हैक्टर 10 से 15 टन पायराइट का उपयोग किया जाता है। इससे मृदा में सुधार होता है और पौधों की वृद्धि में मदद मिलती है।
- **कैल्शियम क्लोराइडः** जिन भूमियों में कैल्शियम क्लोराइड लवणों की अधिकता होती है, वहां पायराइट का प्रयोग विशेष रूप से लाभकारी साबित होता है। पायराइट इन लवणों को बेअसर करके मृदा की गुणवत्ता में सुधार कर सकता है।

लवणीय व क्षारीय मृदाओं का सुधार एवं फसल प्रबंधनरः

लवणीय एवं क्षारीय भूमि की उत्पादकता व उर्वरा शक्ति को बनाए रखने एवं फसलोत्पादन हेतु मृदा सुधार एवं फसल प्रबंधन अति आवश्यक है। किसान नीचे दिए गए भूमि प्रबंधन के उपायों एवं कृषि विधियों को आसानी से स्थापित हो सके। संस्तुत कृषि–क्रियाओं को अपनाने से लवणीय व क्षारीय भूमियों का 3 से 4 वर्षों में सुधार हो जाता है। भूमि सुधार के आरंभिक वर्षों में सब्जियों की लवणीय व क्षारीय भूमि के प्रति अधिक सहनशील प्रजातियों को ही बोना चाहिए। उन्नत कृषि प्रथाओं और लवणीय या क्षारीय भूमि में फसलों की उगाई से संबंधित महत्वपूर्ण सुझाव शामिल हैं। आइए इसे संक्षेप में समझते हैंः

- **जमीन की जुताईः** हर 2–3 साल में डिस्क प्लो, सब सॉयलर, या चीजल हल का उपयोग करें। इससे मृदा में वायु और जल का आवागमन सुधारता है और पौधों की जड़ों का बेहतर विकास होता है।
- **मृदा सुधारः** गोबर की खाद, केंचुआ खाद, कम्पोस्ट, मुर्गी खाद, हरी खाद, फसल अवशेष, और शीरा/प्रेसमड का समय–समय पर उपयोग करें। अम्लीय खाद जैसे अमोनियम सल्फेट, सिंगल सुपर फास्फेट, और अमोनियम नाइट्रेट भी प्रयोग करें।
- **सिंचाई प्रबंधनः** लवणीय और क्षारीय जल वाले क्षेत्रों में ड्रिप या फव्वारा विधि का उपयोग करें। हल्की और थोड़े अंतराल पर सिंचाई करें ताकि जल का अपव्यय और मृदा स्वास्थ्य खराब न हो।
- **बीज दर और रोपाईः** लवणीय और क्षारीय भूमि में बीज दर थोड़ी अधिक रखें और पंक्तियों और पौधों की दूरी को थोड़ा कम करें, क्योंकि यहाँ बीजों का जमाव और पौधों की शुरुआती वृद्धि धीमी हो सकती है।
- **फसल चयनः** लवण और क्षार प्रतिरोधी फसलों को ही उगाएं। फसलें लवण की कम मात्रा को भी सहन न कर पाने वाली होती हैं। मेंड़ की दिशा पूर्व–पश्चिम और पौधों की रोपाई उत्तर दिशा में करनी चाहिए। यदि मेंड़ बनाना मुश्किल हो, तो क्यारियों में बुवाई करें।
- **उर्वरक प्रबंधनः** नाइट्रोजन की मात्रा सामान्य से 20ः अधिक दें, फास्फोरस और पोटाश की मात्रा मृदा परीक्षण के आधार पर प्रयोग करें। 25 किलोग्राम जिंक

सल्फेट प्रति हेक्टेयर डालें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा और फास्फोरस–पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय दें और बाकी नाइट्रोजन की आधी मात्रा फूल आने से पहले दो भागों में दें।

- **निराई–गुड़ाई और खरपतवार नियंत्रण:** निराई–गुड़ाई और खरपतवार नियंत्रण समय–समय पर करें। सिंचाई के बाद मृदा की ऊपरी सतह कड़ी हो जाती है, जिससे वायु का आवागमन बाधित होता है। निराई–गुड़ाई से पौधों की जड़ों का उचित विकास और वृद्धि सुनिश्चित होती है।

इन सुझावों का पालन करने से लवणीय और क्षारीय भूमि में फसलों की उत्पादकता और गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है।

निष्कर्ष:

लवणीय और क्षारीय भूमि, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब, और राजस्थान जैसे राज्यों में, कृषि की एक प्रमुख समस्या बन चुकी है। ये क्षेत्र तेजी से नगरीकरण, औद्योगिकीकरण, और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल निरंतर घट रहा है। इन परिवर्तनों के चलते, कृषि भूमि का विस्तार संभवतः भविष्य में बहुत कम होगा। ऐसे में, लवणीय और क्षारीय भूमि के सुधार की दिशा में ठोस प्रयास आवश्यक हैं। लवणीय और क्षारीय भूमि को सुधारने के लिए एक सुसंगठित रणनीति की आवश्यकता है, जिसमें भूमि के प्रकार और उसकी स्थितियों के अनुसार उपयुक्त फसलों का चयन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे न केवल भूमि की गुणवत्ता में सुधार होगा, बल्कि कृषि उत्पादकता में भी वृद्धि होगी। उचित फसलों के चयन से भूमि को अधिक लाभकारी और उपजाऊ बनाया जा सकता है, जो खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाने में सहायक होगा। लवणीय और क्षारीय भूमि के सुधार के प्रयास ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यह तकनीक खाद्यान्न उत्पादन में सुधार लाने, कृषि आय में वृद्धि करने, और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर पैदा करने में मदद कर सकती है। इसके माध्यम से, सामाजिक–आर्थिक उन्नति को प्रोत्साहित किया जा सकता है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में समृद्धि और विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए जा सकते हैं। इस प्रकार, लवणीय और क्षारीय भूमि के सुधार को एक गंभीर और प्राथमिकता वाली चुनौती के रूप में मानते हुए, इससे जुड़े सभी पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक है।

बैंगन में तना व फल छेदक कीट का समन्वित प्रबंधन

शक्ति खजुरिया, ए. के. राय, कनक लता, राज कुमार एवं बी. एस. खद्दा

सब्जियों के लिए उगाई जाने वाली प्रमुख और व्यापक फसलों में से बैंगन एक है। यह फसल भारत में विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में उगाई जाती है, परन्तु संकर एवं उन्नतशील प्रजातियों की उपलब्धता के उपरांत भी औसत उपज बहुत कम है। इसका मुख्य कारण तना व फल छेदक कीट द्वारा अधिक क्षति पहुँचाना है। ठण्डे व गर्म मौसम के अनुकूल प्रजातियाँ उपलब्ध होने के कारण, यह फसल पूरे साल उपलब्ध रहती है। इस कारण इस कीट का प्रकोप वर्ष भर बना रहता है अतः इस कीट की जैविकी को समझना एवं जानना आवश्यक है, जिससे समय से उसके प्रबंधन के ठोस एवं कारगार कदम उठाये जा सकें। बैंगन का अधिक उत्पादन लेने के लिए आवश्यक है, कि हम इस कीट से उसकी सुरक्षा करें।

तना व फल छेदक कीट का वैज्ञानिक नाम ल्यूसिनोड्स ओबरेनालिस ग्यूनी है। यह लेपिडोप्टेरा गण के पायरीलिडी कुल का कीट है । यह कीट बैंगन की उपज को बढ़ाने में मुख्य बाधा है। कीट लगने पर बैंगन की गुणवत्ता प्रभावित हो जाती है। इस कीट का प्रकोप ज्यादा होने पर फसल को अच्छी खासी हानि होती है। मौजूदा हालात में सब्जियों में कीट प्रबंधन के लिए आवश्यक है कि सभी तकनीक पर्यावरण हितैषी हों। इसके लिए रसायनिक कीटनाशियों के साथ साथ जैविक, भौतिक, यांत्रिक एवं शस्य क्रियाओं का प्रयोग उचित मात्रा में किया जाना आवश्यक है। बैंगन की फसल में तना एवं फल छेदक कीट मौसम तथा क्षेत्र के अनुसार लगभग 50–70 प्रतिशत तक प्रकोप देखा गया है।

तना और फल छेदक कीट का जीवन चक्र

कीट के जीवन चक्र के विभिन्न चरणों की जानकारी होना आवश्यक है क्योंकि इस जानकारी के कारण ही सही प्रबंधन विधि चुनने में आसानी होगी। इसके जीवन चक्र में अण्डा, लार्वा, प्यूपा तथा वयस्क चार अवस्थाएं पायी जाती हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार है।

अण्डा

मादा कीट अण्डे एक–एक करके अथवा दो–चार समूह में प्रायः पत्तियों की निचली सतह पर देती है। अंडे कोमल तनों, फूलों, कलियों तथा फल के बाह्यदल (calyx) में भी दिये जाते हैं। अण्डे क्रीम की तरह सफेद और लम्बे होते हैं। मादा अपने जीवन काल में 100 से 150 तक अण्डे देती है। अण्डे फूटने का समय 3 से 6 दिन का होता है।

लार्वा

इस कीट के लार्वा हल्के पीले–सफेद रंग के होते हैं और पूरे बड़े होने पर इनका रंग हल्का गुलाबी हो जाता है। बड़े होने पर लार्वा की लंबाई करीब 10–15 मिलीमीटर होती है। प्रारम्भ में लार्वा अण्डे से निकलने के बाद पौधे के कोमल तनों में छेदकर अंदर प्रविष्ट करती है जो बाद में फूलों तथा फलों को नुकसान पहुंचाती है। प्रारम्भ में लार्वा सफेद रंग की होती है जो बाद में सफेद पीले रंग में बदलती है तथा उसके शरीर में बैगनी रंग की धारियाँ मिलती हैं द्य पूर्ण विकसित लार्वा 18 से 23 मिलीमीटर लम्बी होती है द्य लार्वा का विकास 5 अवस्थाओं में होता है तथा लार्वा अवस्था 14 से 20 दिन की होती है।

प्यूपा

पूर्ण विकसित लार्वा तने अथवा फल से बाहर निकलकर गिरी हुयी पत्तियों के मध्य प्यूपा/कृमिकोष अवस्था में बदलती है। लार्वा नाव के आकार का सिल्किन कोकून बनाती है तथा उसी के अंदर प्यूपेट करती है। प्यूपा अवस्था 7 से 17 दिन की होती है। इसके पश्चात इससे वयस्क कीट निकलते हैं।

वयस्क

इस कीट के विकसित होने के बाद विकसित पतंगा मध्यम आकार का होता है और उसके सफेद पंखों पर भूरे तिकोना निशान एवं बाहरी पंखों पर लाल निशान होते हैं। पतंगे का आकार 20–22 मिलीमीटर तक होता है। इन वयस्क कीटों की आयु 6–10 दिनों की होती है। वयस्क मध्याकार सफेद रंग के कीट होते हैं। नर तथा मादा कीट वयस्क होने के पश्चात मैथुन करते हैं तथा मादा कीट 1–2 दिन पश्चात अण्डा देना प्रारम्भ करती है मादा पतंगा करीब 80 से 250 तक हल्के पीले रंग के अंडे देती है। मादा पौधे की पत्तियों के नीचे वाले हिस्से में समूह में अंडे देती है। सम्पूर्ण जीवन चक्र 20–30 दिनों में पूरा होता है तथा यह कीट पूरे साल सक्रिय रहता है एक वर्ष में लगभग 10–13

कृषि विज्ञान केन्द्र– पंचमहल (कें.शु.बा.सं., बीकानेर)
गोधरा–बड़ौदा हाईवे, वेजलपुर, गोधरा 389 340 (गुजरात)

पीढियां तैयार हो जाती हैं।

कीट से नुकसान

बैंगन का यह कीट सबसे महत्वपूर्ण और नुकसान करने वाला प्रमुख एवं घातक कीट पूरे भारत में पाया जाता है। यह कीट लार्वा/सूंड़ी अवस्था में ही फसल को नुकसान पहुँचाता है। इनका प्रकोप आमतौर पर पौध रोपाई के एक सप्ताह बाद से ही शुरु हो जाता है । लार्वा मुलायम तने में छेद करके पौधे को नुकसान पहुंचाता हैं। एक लार्वा करीब 4 से 6 फलों को नुकसान पहुंचा सकता है। फल आने से पहले यह लार्वा कोंपलों में छेद करके अन्दर पनपती रहती है जिससे कोपलें मुरझाकर नीचे लटक जाती हैं और सूख जाती हैं। फलों के अन्दर जाकर उनको काना कर देती है। फल पूरी तरह बर्बाद हो जाते हैं और खाने के काबिल नहीं रहते हैं। बैंगन में तना और फल छेदक कीट का सबसे अधिक प्रकोप मई से अक्तूबर तक होता है।

बैंगन का तना एवं फल वेधक कीट का समन्वित प्रबंधन

समन्वित कीट प्रबंधन के अर्न्तगत कीट नियन्त्रण के सरल और प्रभावी तरीकों को इस प्रकार समावेश करते हैं कि कीट नियंत्रण प्रभावी हो, किसान और उपभोक्ता दोनों लाभान्वित हों और वातावरण भी सुरक्षित रहे। इसमें जैविक, रासायनिक, भौतिक, यांत्रिक नियंत्रण एवं शस्य क्रियाओं के समुचित चुनाव एवं उनके समावेश द्वारा समन्वित कीट प्रबंन्धन किया जाता है जो निम्नलिखित हैं

- गर्मियों में 2–3 बार अच्छी जुताई करनी चाहिये, जिससे भूमि में उपस्थित अवयस्क अवस्था में ही कीट की वृद्धि को कम किया जा सकता है। जुताई के कारण जमीन से बाहर आए हुए इन अवयस्क अवस्था को इसके प्रकृतिक शत्रु खा लेते हैं।
- कीट से प्रभावित फलों और प्ररोहों को जहां से तना मुरझाया हो उसके आधे इंच नीचे से काट दें और इकट्ठा कर उन्हें मिट्टी में गहरा दबा या जला दें ताकि लार्वा नष्ट हो जाए और व्यस्क न बन पायें नहीं तो दूसरी पीढी तैयार होकर नुकसान पहुंचाएगी द्य यह क्रिया हर हफ्ते एक बार करना चाहिए।
- बैगन व दूसरे सोलेनेसी कुल के पौधों को लगातार एक ही खेत में नहीं लगाना चाहिए अर्थात फसल चक्र अपनायें।
- फसल कटने के बाद खेत में हल चलाना चाहिए, ताकि भूमि में पड़े प्यूपा नष्ट हो जाएं।
- बैंगन के लम्बे फलों वाली पंजाब बरसाती, एआरयू–2–सी एवं गोल फलों वाली पूसा पर्पल राउण्ड तथा पंजाब नीलम इस कीट के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखती है।
- तना एवं फल छेदक ल्यूसिनोड्स ओर्बोनालिस की निगरानी और बड़े पैमाने पर उन्हें फँसाने के लिए बैंगन का पौधारोपण करने के 15 दिनों बाद प्रति हैक्टेयर में 40 फेरामोन ट्रैप स्थापित किये जाने चाहिए। हर 20–25 दिन के अंतराल पर उन्हें ललचा कर आकर्षित करने का चारा बदलें या प्रकाश प्रपंच द्वारा इन कीटों की वयस्क पंखियों को पकड़ सकते हैं।
- छेदक के संक्रमण को कम करने के लिये नीम के तेल (2 प्रतिशत) या नीम की निबोली सत्व (5 प्रतिशत) का छिड़काव भी इस कीट के प्रकोप को बहुत हद तक कम कर देता है।
- जीवाणुजनित कीटनाशक बैसीलस थूरिंजिएंसिस (बी. टी.) का 0.3–0.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।
- फूल आने के साथ ही अंडपरजीवी ट्राइकोग्रामा चिलोनिस कीट के 2.50 लाख अंडे प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में फैलाएं। ये अंड परजीवी होने के कारण नाशक कीट के अण्डे को परजीवीकरण कर मार देते हैं, जिसमें नाशक कीट न निकल कर परजीवी निकलते हैं जिसके कारण नाशक कीट की संख्या में कमी होती है और इसी प्रकार इनका जीवन चक्र चलता है।
- कीट के प्रभावशाली रोकथाम के लिये कीटनाशक के छिड़काव के पूर्व छेद किये गये फलों की तुड़ाई कर लें। कीट की रोकथाम के लिये कार्बोरिल 50 डब्ल्यू. पी. 2 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव या क्यूनालफास 25 ई.सी. 1.5 ली./हे. या प्रोफेनोफास 50 ई.सी. 1.5 ली/हे. एसीफेट 75 एस.पी. 600 ग्रा./हे. के छिड़काव 10 से 15 दिन के अंतराल पर करें।

किसानों द्वारा प्रक्षेत्र पर फेरोमोन ट्रेप का प्रदर्शन

बैंगन फल के अंदर लार्वा

विकसित लार्वा के बाहर निकलने का छेद

तना एवं फल वेधक के लार्वा से ग्रसित फल

कीट से मुर्झाकर झुका हुआ बैंगन का प्ररोह

गोंद के लिए उगाएं ग्वार

कनक लता, राज कुमार, ए.के. राय, बी.एस. खद्दा, शक्ति खजुरिया, जे.के. जादव

ग्वार फलियों वाला एक महत्वपूर्ण फसल है। इसकी ताजी हरी फलियां सब्जी के रुप में उपयोग की, जाती हैं। राजस्थान में ग्वार की कच्ची फलियों को सुखाकर प्रमुख व्यंजन 'पंचकूटा' बनाया जाता है, पंचकूटा पाँच सूखी सब्जियाँ सांगरी + काचरी + ग्वार + केर + कुमठ को मिलाकर तैयार किया जाता है। राजस्थान निवासियों के लिए यह बहुत ही लोकप्रिय व्यंजन है। राजस्थान भ्रमण में आनेवाले पर्यटक भी इस व्यंजन के स्वाद का लुत्फ अवश्य लेते हैं। 'पंचकूटा' अब अन्य राज्यों में भी लोकप्रिय व्यंजन के रुप में पहचान बनाने लगा है। भारत के उत्तरी–पश्चिमी राज्यों राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि में ग्वार की खेती की जाती है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ग्वार मुख्यतः भारत, पाकिस्तान, यूएस., ऑस्ट्रेलिया और अफ्रिका में उगाया जाता है। भारत में ग्वार की 2.5 से 3 मिलियन टन तक उत्पादन होता है। यह विश्व भर के ग्वार उत्पादन का 80 प्रतिशत है। भारत में राजस्थान, गुजरात, हरियाणा आदि राज्यों में इसका उत्पादन बहुतायत से होता है। राजस्थान में जोधपुर, श्री गंगानगर, हनुमानगढ़ ग्वार उत्पादन व्यवसाय में अग्रगण्य है। यूएस में लगभग 4600 से 14000 टन ग्वार गम का वार्षिक उत्पादन होता है। भारत में अब ग्वार उत्पादन के क्षेत्र में बढ़ोत्तरी हो रही है। विश्वभर में जितना ग्वार गम का उत्पादन होता है वह माँग के हिसाब से मात्र 40 प्रतिशत है अर्थात अभी भी ग्वार गम के व्यवसाय में अपार संभावनाएं हैं। ग्वार मुख्य रूप से सब्जी, हरी खाद, पशुचारा आदि के लिए उगाया जाता है। पोषक एवं स्वादिष्ट सब्जी के रुप में तो ग्वार प्रसिद्ध और लोकप्रिय है परंतु इसके बीज में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध गोंद के कारण कुछ वर्षों से ग्वार एक औद्योगिक फसल के रूप में उभर कर आया है। छोटे–बड़े सैकड़ों उद्योगों में ग्वार–गोंद का उपयोग किया जाता है परंतु खनिज तेल की खुदाई में इसका प्रयोग इसे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में ऊँचाई पर पहुँचा दिया है।

1. ग्वार गोंद क्या है

ग्वार के पूर्ण विकसित 'बीज' में 68 से 70 प्रतिशत चिपचिपा पदार्थ ग्लैक्टोमेनन पॉलीसेकराइड्स होता है। यही पदार्थ ग्वार की गोंद के रुप में जाना जाता है। ग्वार गम पॉलीसैकराइड्स से बना होता है। यह डी–ग्लैक्टोपायरेनोज एवं डी–मेनोपायरेनोज शर्करा कण की ईकाइयों से बना होता है। इसका रंग हल्का पीलापन लिए हुए सफेद होता है द्य ग्वार गम मनुष्य, पशु आहार और औषधि सामग्री के जमने में सहायक घटक (थीकनिंग एजेंट) के रुप में कार्य करता है।

2. गोंद निकालने की प्रक्रिया

- तैयार फसल को काटकर थ्रेसिंग द्वारा बीज निकालने के पश्चात् विधायन (ग्रेडिंग) विधि से पुष्ट बीजों को अलग कर लिया जाता है।
- बीजों के एन्डोस्पर्म से गोंद बनता है अतरू बीजों को दल (दर) कर छिलका और जर्म को अलग कर दिया जाता है।
- चूर्ण को अच्छी प्रकार छान एवं साफ कर गोंद बनाने हेतु तैयार किया जाता है।
- तैयार चूर्ण का विपणन किया जाता है।
- कारखानों में इस चूर्ण से गोंद तैयार किया जाता है।
- गोंद बनाने के पश्चात् आवश्यकतानुसार रंग मिलाकर रंगीन गोंद भी तैयार किया जाता है।

3. ग्वार गोंद की विशेषता

- पानी सोखने की क्षमता अत्यधिक है।
- चिपकाने की क्षमता अधिक है।
- कम तापमान पर भी चिपकाने में सक्षम है।
- ठंडे एवं गरम पानी में सरलता से घुल जाता है।
- बिना गरम किये जम जाता है।

कृषि विज्ञान केन्द्र– वेजलपुर, पंचमहल (गुजरात)

4. ग्वार गोंद की उपयोगिता

ग्वार से गोंद प्राप्त करने की प्रक्रिया सन् 1953 में शुरू हुयी थी। आज भारत के ग्वार उगाने वाले राज्यों में ग्वार की गोंद या गोंद पावडर बनाने की कई इकाईयाँ चलायी जा रही हैं। औद्योगिक उत्पाद के रुप में स्थापित होने के कारण ग्वार उत्पादन क्षेत्र में काफी वृद्धि हुयी है। भारत में राजस्थान सर्वाधिक ग्वार उत्पन्न करने वाला राज्य है। देश के कुल ग्वार उत्पादन का 70 प्रतिशत राजस्थान में, 12 प्रतिशत हरियाणा में, 11 प्रतिशत गुजरात में एवं शेष अन्य राज्यों में उत्पादित होता है। भारत से प्रत्येक वर्ष अरब देश, अमेरिका, इंगलैण्ड एवं अन्य यूरोपियन देशों में ग्वार गोंद का निर्यात किया जाता है। विभिन्न उद्योगों में ग्वार गोंद की उपयोगिता होने के कारण दिन–प्रतिदिन इसकी माँग बढ़ती ही जा रही है। ग्वार गोंद में किसी वस्तु को बाँधे रखने का गुण एवं जल धारण करने की क्षमता प्रचूर मात्रा में होती है। यह तरल पदार्थ को गाढ़ा करने या जमाने में सक्षम है। ग्वार बीज के चूर्ण में 10 गुणा जलधारण की क्षमता होती है।

ग्वार गोंद का उपयोग विभिन्न कार्यों में किया जाता है। मुख्य रुप में इन्हें तीन भाग में वर्गीकृत कर सकते हैं–

- विभिन्न औद्योगिक निर्माण में
- खाद्य सामग्री निर्माण में
- खनन कार्य एवं प्राकृतिक संसाधन विकास में,

जिनका विवरण क्रमशः निम्नांकित है –

- विभिन्न औद्योगिक निर्माण में –
- कागज निर्माण में इसका प्रयोग कागज को कड़ापन देने हेतु।
- यंत्रों में घर्षण कम करने हेतु चिकना माध्यम (लुब्रीकैन्ट) के रुप में।
- फिल्म, फोटो निर्माण में चिकनाहट एवं चमक लाने हेतु।
- कपड़ा उद्योग में कपड़ों में कड़ापन लाने, रंगाई एवं छपाई में।
- विभिन्न प्रकार के सौंदर्य–प्रसाधन बनाने हेतु।
- विभिन्न प्रकार के तरल एवं दवा–निर्माण में।
- टूथ पेस्ट निर्माण में।
- प्लाईवुड निर्माण में।
- सेरामिक उद्योग में।
- गंदे पानी के शुद्धिकरण में।
- तम्बाकू उद्योग में।
- डाक टिकटों के पीछे लगाए जाने वाले गोंद के रुप में।
- हाइड्रोजेलक्लेशन, कार्बोजीमी थाइलेशन, क्वार्टर–नाइजेशन आदि रासायन बनाने में
- कीट व्याधि नाशक उत्पादन में

खाद्य सामग्री निर्माण में –

- बेकरी उद्योग में आजकल ग्वार गम का प्रयोग बहुतायत से होता है। गेहूँ में प्राप्त ग्लुटेन के दुष्प्रभाव के कारण ग्वार गम का उपयोग आटे के स्थान पर किया जाता है। ग्वार गम से बने खाद्यानों को अपेक्षाकृत अधिक स्वास्थ्य–वर्धक माना जाता है। यह मनुष्य के शरीर में सिरम कोलेस्ट्रॉल को कम करता है। रक्त में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित करता है। ग्वार गम अन्य वानस्पतिक गोंद जैसे कॉर्न स्टार्च, से ज्यादा प्रभावी और कम खर्चिला होता है। यह मात्र पानी के साथ अन्य वानस्पतिक गोंद से लगभग आठ गुना ज्यादा चिपकाने की क्षमता रखता है अतः किसी भी कार्य में इसकी बहुत कम मात्रा की आवश्यकता पड़ती है जिससे लागत राशि कम हो जाती है।
- बेकरी उद्योग में।
- विभिन्न प्रकार के शर्बत उद्योग में।
- सलाद सजाने में।
- जैम, जेली, सॉस, केचप, आदि में जमने की प्रक्रिया को सरल एवं गाढ़ा बनाने हेतु स्टेबलाइजर एवं थीकनर के रुप में।
- आईस्क्रीम, चीज, पनीर, तरल दूध उत्पादन में।
- पशु–पक्षी एवं मछली के आहार बनाने में।

खनन कार्य एवं प्राकृतिक संसाधन विकास में

- मृदा क्षरण के नियंत्रण में।
- तेल के कुएँ से तेल निकालने में।
- पेट्रोलियम, व्यवसाय में।
- एक्सप्लोसीव निर्माण में।

5. ग्वार गोंद के अवशिष्ट पदार्थ का उपयोग :– ग्वार के बीजों से गोंद प्राप्त कर लेने के पश्चात् बचे अवशिष्ट

पदार्थ में 42 प्रतिशत प्रोटीन, 12 प्रतिशत रेशा, 30 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 5 प्रतिशत खनिज लवण एवं 5 प्रतिशत वसा रहता है। काफी मात्रा में प्रोटीन की उपलब्धता के कारण यह अवशेष पशुओं के लिए बहुत उपयोगी होता है। ग्वार गोंद अवशिष्ट का प्रयोग पशु आहार के रूप में किया जा सकता है। ग्वार गोंद अवशिष्ट को थोड़ी प्रक्रियाओं के बाद मनुष्य आहार में भी उपयोग किया जा सकता है।

6. मानव स्वास्थ्य में ग्वार गम का प्रयोग –

- शोध से यह भी पता चला है कि, ग्वार गम के सेवन से कोलेसट्रॉल कम होता है।
- प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में ग्वार गोंद की उपयोगिता बहुत अधिक है।
- कब्ज–ग्वार गोंद चूर्ण को पानी के साथ फक्की के रुप में ग्रहण करने पर मल में चिकनाहट आती है और मल–त्याग आसान होता है जिससे कब्ज के रोगियों को काफी राहत मिलती है ।
- दस्त की स्थिति में ग्वार गोंद के चूर्ण का सेवन करने पर उसके रेशे द्वारा मल के तरलता को सोख कर मल त्याग को सामान्य स्थिति में लाता है ।
- कुछ शोध से उभर कर आया है कि, मोटापे एवं अत्यधिक भूख से परेशान लोगों के लिए भी ग्वार गोंद काफी लाभ प्रद है । ग्वार गोंद के सेवन करने पर यह पेट में फूल कर स्थान ग्रहण करता है, जिससे व्यक्ति को पेट भरा हुआ होने का आभास होता है और व्यक्ति कम भोजन ग्रहण करता है फलस्वरुप वजन कम होता है ।

अपनी इन्हीं असाधारण गुणों के कारण ग्वार आज व्यवसायिक फसलों में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर रहा है। ग्वार की फसल के लिए उपयुक्त क्षेत्र के किसानों के लिए यही संदेश है कि–

गोंद के लिए उगाएं ग्वार, आय में लाएं खूब निखार!

हिन्दी भाषा को समर्थन दें, और बढ़ाएं, यह हमारी भाषा है, हमारी पहचान है इसे बचाएं।
मेरा मान है हिन्दी, मेरी शान है हिन्दी।

आलू के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

डॉ.पी. एल. अम्बूलकर[1], श्री अवधेश कुमार पटेल[2] एवं डॉ.आर.के.झाड़े[3]

आलू भारत की एक महत्वपूर्ण फसल है। आलू के उत्पादन में विश्वभर में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है। वर्ष 2019–20 के द्वितीय अग्रिम अनुमानित सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत में आलू का क्षेत्रफल 2.15 मिलियन हेक्टेयर है, जिससे लगभग 51.30 मिलियन टन उत्पादन होता है (उद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण नई दिल्ली)। लेकिन भारत में आलू की उत्पादकता (23.86 टन/हे.) विश्व के कई देशों के मुकाबले कम है। खेतों तथा भंडारगृह में लगने वाले रोग एवं कीट आलू को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। गंभीर संक्रमण की स्थिति में आलू की फसल को कीटों द्वारा 40–50 प्रतिशत तक नुकसान होता है। आलू की खेती के दौरान इस पर कई प्रकार के कीड़े का आक्रमण होता है। यदि हमें आलू की ज्यादा पैदावार चाहिए तो उसके लिए इन कीटों का प्रबंधन बहुत ही आवश्यक है। इस लेख में आलू के कुछ प्रमुख कीटों से होने वाले नुकसान एवं इनके प्रबंधन हेतु किए जाने वाले उपायों का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है।

माहुं या चेंपा (Aphids)

माहुं एक सर्वव्यापी व बहुभक्षी कीट है। ये रस चूसने वाले कीट की श्रेणी में आते हैं। माइजस परसिकी (Myzus persicae) व एफिस गौसिपी (Aphis gossypii) नामक मांहू आलू की फसल पर प्रत्यक्ष रूप से तो ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचाते परंतु ये विषाणुओं को फैलाते हैं। रोग मुक्त बीज आलू उत्पादन में ये कीट प्रमुख बाधक हैं।

लक्षण एवं नुकसान : माहुं, पत्ती मोड़क (PLRV) व वाई वायरस (PVY) के मुख्य वाहकों के रूप में कार्य करते हैं तथा इन वायरस रोगों से फसल को भारी नुकसान होता है। फसल पर माहुं के मानिटरिंग से इसके द्वारा बीज फसल में बढ़ने वाले वायरस आपतन को कम किया जा सकता हैं। फसल या खेतों में माहुं के प्रभाव को आँकने के लिए उनकी गिनती 100 यौगिक पत्तियों पर प्रति सप्ताह की जाती हैं। यदि इनकी संख्या 20 माहुं/100 पत्ती हो जाए तो इस पर रसायन का छिड़काव जरूरी हो जाता है।

रोकथाम के उपाय

कृषि एवं यांत्रिक उपाय

1. हमारे देश के गंगा के मैदानी इलाकों में ही लगभग 90 प्रतिशत बीज आलू की खेती की जाती है। इन क्षेत्रों में बीज आलू की फसल माहुं रहित अवधि में करनी चाहिए।
2. बीज आलू की फसल तथा अन्य सब्जियों की फसल के बीच कम 50 मीटर की दूरी रखें।
3. खेतों में या आसपास उगे माहुं ग्रसित पौधों, विशेषकर पीले रंग के फूल वाले पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।
4. जैसे ही प्रति 100 पत्तियों पर माहू की संख्या 20 से ज्यादा होने लगे तो फसल के डंठलों को काट दें।

कीट नाशकों का उपयोग

मैदानी क्षेत्रों में : मिट्टी में पर्याप्त नमी होने पर बुवाई के समय नालियों में फोरेट 10 ग्राम की 10 किलोग्राम मात्रा का प्रति हेक्टेयर की दर से उपचार करके माहुं जैसे रोग वाहकों को 45 दिनों तक फसल पर आने से रोका जा सकता है। इसके बाद आवश्यकता पड़ने पर फसल पर किसी उपयुक्त कीटनाशक जैसे इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल., 3 मिली./10 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

पहाड़ी क्षेत्रों में : पहाड़ी इलाकों में आलू की खेती वर्षा पर निर्भर करती है अतः दानेदार कीटनाशक से उपचार, नमी की कमी या ज्यादा बारिश के कारण प्रभावशाली नहीं रहता। इसलिए फसल पर मांहू के आगमन पर पैनी नजर रखें तथा डंठलों की कटाई तक उपरोक्त सिफारिश किए गए कीटनाशकों का 10–15 दिनों पर आवश्यकतानुसार

1. वैज्ञानिक (पौध संरक्षण)
2. कार्यक्रम सहायक (उद्यानिकी), कृषि विज्ञान केन्द्र, डिण्डौरी (म.प्र.)
3. वैज्ञानिक (उद्यानिकी), कृषि विज्ञान केन्द्र, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

1–2 छिड़काव करें।

सफेद मक्खी (White flies)

सफेद मक्खी एक बहुभक्षी कीट है। बेमिसिया (Bemicia sps.) प्रजाति की सफेद मक्खियाँ आलू फसल को नुकसान पहुंचाती है। ये छोटे नरम शरीर वाले सफेद कीड़े हैं जो

पत्तियों का रस चूसते हैं। रोग मुक्त बीज आलू उत्पादन हेतु सफेद मक्खी की रोकथाम आवश्यक है।

लक्षण एवं नुकसान : ये कीट मुख्य रूप से आलू में जेमिनी वाइरस और एपिकल लीफ कर्ल वाइरस के लिए वाहक का काम करते हैं। पत्तियों से रस चूसने के कारण पौधे अशक्त हो जाते हैं। संक्रमित पतियों के ऊपर हनीड्यू के स्राव के कारण यह सुख कर चिपचिपा हो जाता है। वाइरस के कारण पत्ते मुड़ जाते हैं एवं पौधे पीले पड़ जाते हैं।

रोकथाम के उपाय

1. सफेद मक्खियों की संख्या को मॉनिटर करने एवं इन्हें पकड़ने हेतु पीली चिपचिपी ट्रेप का प्रयोग करें।
2. घास और वैकल्पिक परपोषी पौधों को निकाल दें।
3. आवश्यकता के अनुसार 10 दिनों के अंतराल पर इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 150 मिली.या थायोमिथक्जाम 25 एस.जी. 200 ग्राम प्रति हे. 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

कर्तक कीट (Cutworm)

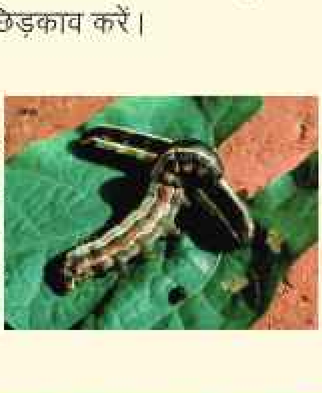

कर्तक कीट आलू का एक प्रमुख कीट है। ये मैदानी तथा पहाड़ी, दोनों इलाकों में सक्रिय रहते हैं। सूखे के मौसम में जब पौधों के तने नए और कोमल होते हैं, इसका प्रकोप बहुत तेजी से फैलता है। यह एक सर्वव्यापी व बहुभक्षी कीट है। भारत में आलू की फसल को यह कीट 12–40 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचाता है।

लक्षण एवं नुकसान : फसल को केवल ईल्ली (Caterpillar) के कारण ही नुकसान पहुंचता है। ये ईल्ली रात के समय आलू की नई शाखाओं या जमीन के नीचे दबे हुए कंदों को खाते हैं। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में ईल्ली अपना भोजन नए पौधे की डंठलों, तने और शाखाओं से ग्रहण करता है। बाद में यह कन्दों को छेदकर खाते हुए नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे कुल पैदावार तो घटती ही है, साथ ही साथ बाजार में भी इनका दाम कम मिलता है।

रोकथाम के उपाय

1. मैदानों में गर्मियों में जुताई करके अवयस्क अवस्था में ही कर्तक कीट वृद्धि को कम किया जा सकता है। जुताई के कारण जमीन से बाहर आए हुए इन कीडों को इसके प्रकृतिक शत्रु कौआ, मैना आदि खा लेते हैं।
2. कर्तक कीट का प्रकोप देखते ही पत्तियों पर कीटनाशक कलोरपाइरीफोस 20 ईसी 2.5 लीटर प्रति हेक्टयर की दर से छिड़काव करें।
3. जैविक नियंत्रण हेतु इसके कुछ मुख्य परजीवी ब्रोस्कस पंकटेटस, लियोग्रिलस बाय मेकूलेटस, ओपलोपस हिप्सीपैली इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है।

सफेद सूँडी (white Grub)

सफेद सूँडी आलू की फसल में मुख्य रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर तथा पूर्वोत्तरी पहाड़ी इलाकों में, इसके कारण प्रभावित आलू की फसल को 10 से 80 प्रतिशत तक नुकसान होता है। देर से खोदी गई फसल पर नुकसान अधिक होता है।

लक्षण एवं नुकसान : आलू की फसल को नुकसान पहुंचाने वाली सफेद सूँडी की प्रमुख प्रजातियाँ ब्राहमीना कोरेसिया तथा ब्राहमीना लोंगीपेनिस हैं। यह सूँडी प्रारम्भ में मिट्टी के जैविक पदार्थों को खाती है परंतु बाद में यह पौधों की जड़ों को खाकर अपना पेट भरते हैं। इसका लार्वा आलू कंदों में सुराख बनाते हुए अपना भोजन

करते हैं। इससे बाजार में आलू की कम कीमत मिलती है।

रोकथाम के उपाय

कृषि एवं यांत्रिक उपाय

1. परपोषी वृक्षों व उसकी शाखाओं को अच्छी तरह हिलाकर भृंगों को इकट्ठा कर किसी कीटनाशी के प्रयोग से इन्हें मारा जा सकता है।
2. **मानसून आने से पहले अप्रैल**– मई के महीने में खेत दो से तीन बार जुताई करें और मिट्टी को खुला छोड़ें ताकि बाहर निकली सूँडी और प्यूपा को इनके स्वाभाविक दुश्मन जैसे कौवा, मैना आदि खा लें।
3. रात में वयस्क कीटों को प्रकाश प्रपंच की सहायता से पकड़कर नष्ट कर दें।
4. खेतों में सदैव गोबर की अच्छी तरह से सड़ी गली खाद ही डालें।

रासायनिक प्रबंधन

1. वयस्क सुंडियों को मारने के लिए परपोषी पौधों पर कीटनाशकों जैसे कलोरपाइरीफोस 20 ईसी को 2.5 मिली. प्रति लीटर पानी में घोल कर मॉनसून के तुरंत बाद छिड़काव करना चाहिए।
2. बुवाई या मिट्टी चढ़ाते समय पौधों के नजदीक देहिक कीटनाशी जैसे कार्बोफ्यूरान 3 जी. कि 2.5 से 3.0 किलोग्राम वास्तविक मात्रा का प्रति हेक्टर कि दर से उपचार करें।

आलू कंद शलभ (Potato Tuber Moth)

आलू कंद शलभ मुख्यत : भारत के छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश), कर्नाटक, कांगड़ा (हि.प्र.), कुमाऊँ की पहाड़ियाँ (उत्तराखंड), मेंघालय, नीलगिरी (तमिलनाडू), पुणे (महाराष्ट्र), रांची (झारखंड) तथा पश्चिम बंगाल के इलाकों में पाये जाते हैं।

सोलेनिसियस परिवार की कुछ पौध जैसे बैंगन, टमाटर, आलू, तंबाकू तथा धतूरा इसके प्रमुख परपोषी पौधे हैं।

लक्षण एवं नुकसान : आलू कंद शलभ की तितली सबसे पहले पत्तियों तथा मिट्टी से बाहर निकले हुए आलू कंदों पर अंडे दे देती हैं। इन अंडो से निकला हुआ लार्वा आलू की पत्तियों एवं तनों को खाते हुए उसमें सुरंग बना देता हैं। देशी भंडारगृह में रखे आलुओं की आंखों को भेदकर उसमें सुराख बना देते हैं। बाद में इन क्षतिग्रस्त आलुओं में फफूंद लग जाती हैं जिससे ये सड़ जाते हैं। यह कीट भंडारण एवं खेतों में आलू की फसल को 60–70 प्रतिशत तक हानि पहुंचाता है।

रोकथाम के उपाय

सिर्फ एक उपचार से इस कीट की रोकथाम संभव नहीं हैं। खेत एवं भंडारगृहों में PTM के नियंत्रण के लिए एकीकृत प्रबंधन तरीकों को अपनाना जरूरी है। इस कीड़े के प्रभावी नियंत्रण हेतु निम्नलिखित उपाय हैं।

1. खेतों में बुआई के लिए स्वस्थ रोग एवं कीट रहित बीज आलू का ही प्रयोग करना चाहिए। खेतों में आलू की बीजाई 10 सेंटीमीटर गहराई तक करने से यह कीट काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।
2. खेतों में समय से कन्दों पर मिट्टी चढ़ाना चाहिए ताकि कोई भी कन्द जमीन से बाहर न रहें।
3. खेतों में नियमित रूप से सिंचाई करते रहे जिससे खेतों में दरार न आने पाये।
4. भंडारगृह में आलू के ढेर के नीचे एवं ऊपर सूखी हुई लेंटाना या सफेदा की 2.5 सेंटीमीटर मोटी तह बिछाने पर इन कीटों से बचा जा सकता है।
5. बीज के लिए भंडारित आलुओं पर फेनवेलरेट 2 प्रतिशत या मैलाथियन 5 प्रतिशत या क्विनोल्फोस 1.5 प्रतिशत धूल 125 ग्राम/क्विंटल आलू की दर से प्रयोग करें। खाने वाले आलू पर इस रसायन का प्रयोग न करें।
6. खाने हेतु आलू के ऊपर बेसिलस थूरिंनजियंसिस (बीटी) या ग्रेनुलोसिस वायरस (जीवी) के चूर्ण का 300 ग्रामधक्विंटल की दर से छिड़काव करें।
7. खेतों में कन्द शलभ को पकड़ने हेतु यौन गंध आधारित जल ट्रेप (20 ट्रेप/हेक्टयर) का प्रयोग प्रभावशाली रहता है।
8. भंडारगृह में कन्द शलभ को रोकने हेतु परजीवी अथवा सूक्ष्म शाकाणु, फफूंद, चींटियों, छिपकलियों आदि स्वाभाविक शत्रुओं की बढ़वार होने देना चाहिए।

यदि किसान भाई ऊपर लिखे हुए बातों का ध्यान रखते हुए आलू की खेती करें तो निश्चित ही आलू में लगने वाले कीटों पर नियंत्रण पाया जा सकता है एवं अधिकाधिक लाभ कमाया जा सकता है।

स्रोत : केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला

फसल उत्पादन में जैव उर्वरकों की भूमिका एवं महत्व

डॉ. ऋषिकेश तिवारी, डॉ. शिखा उपाध्याय, एवं भोमिका तिवारी

आज कृषि उत्पादन को लगातार बढ़ाना कृषि वैज्ञानिकों के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। सघन खेती से मृदा में पोषक तत्व धीरे–धीरे कम होते जा रहे हैं। इस कमी को रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से पूरा किया जाता है। अधिकांश किसान संतृप्त मात्रा में रासायनिक खाद के उपयोग के बावजूद इष्टतम उत्पादन लेने से वंचित हैं। अतः रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से होने वाला लाभ घटता जा रहा है। साथ ही मृदा स्वास्थ्य पर भी विपरीत असर दिखाई पड़ रहा है, जिससे देश में स्थाई खेती हेतु खतरा पैदा हो रहा है। फसलों द्वारा भूमि से लिये जाने वाले प्राथमिक मुख्य पोषक तत्वों– नत्रजन, सुपर फास्फेट एवं पोटाश में से नत्रजन का सर्वाधिक अवशोषण होता है, क्योंकि इस तत्व की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। शेष 55–60 प्रतिशत भाग या तो पानी के साथ बह जाता है, या वायुमण्डल में डिनाइट्रीफिकेशन से मिल जाता है या जमीन में ही अस्थायी बन्धक हो जाते हैं। वर्तमान परिस्थितियों में नत्रजनधारी उर्वरकों के साथ–साथ नत्रजन के वैकल्पिक स्रोतों का उपयोग न केवल आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि मृदा की उर्वरा शक्ति को टिकाऊ रखने के लिये भी आवश्यक है। ऐसी स्थिति में जैव उर्वरकों का प्रयोग करना एकमात्र विकल्प के रूप में उभर कर सामने आ रहा है। जैव उर्वरकों को बीजोत्पादन कार्यक्रम में लेने पर 20 प्रतिशत तक उपज में वृद्धि पाई गई है। जैविक खेती में मिट्टी की उर्वरता में सुधार के लिए जैव–उर्वरक के उपयोग की सिफारिश की जाती है

जैव उर्वरक क्या है ?

जैव उर्वरक विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं का एक विशेष प्रकार के माध्यम, चारकोल, मिट्टी या गोबर की खाद मंज ऐसा मिश्रण है, जो वायुमण्डलीय नत्रजन को साइकल द्वारा पौधों को उपलब्ध कराती है या मिट्टी में उपलब्ध अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करके पौधों को उपलब्ध कराता है। इनके प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की 1/3 मात्रा तक की बचत हो जाती है।

जैव उर्वरकों का वर्गीकरणः

नाइट्रोजन पूर्ति करने वाले जैव उर्वरक यह जीवाणु सभी दलहनी फसलों व तिलहनी फसलों जैसे– सोयाबीन और मूँगफली की जड़ों में छोटी–छोटी ग्रन्थियों में पाया जाता है, जो सह जीवन के रूप में कार्य करते हुए वायुमण्डल में उपलब्ध नाइट्रोजन को पौधों को उपलब्ध कराता है। राइजोबियम जीवाणु अलग–अलग फसलों के लिये अलग–अलग होता है इसलिये बीज उपचार हेतु उसी फसल का कल्चर प्रयोग करना चाहिये।

जैव उर्वरकों से बीज उपचार करने की विधिः

जैव उर्वरकों के प्रयोग की यह सर्वोत्तम विधि है। 1 लीटर पानी में लगभग 100 ग्राम गुड़ डालकर उबालकर अच्छी तरह मिलाकर घोल बना लेते हैं। इस घोल को बीजों पर छिड़क कर मिला देते हैं जिससे प्रत्येक बीज पर इसकी परत चढ़ जाये। इसके उपरान्त बीजों को छायादार जगह में सुखा लेते हैं। उपचारित बीजों की बुवाई सूखने के तुरन्त बाद कर देनी चाहिये।

पौध जड़ उपचार विधिः

धान तथा सब्जी वाली फसलें, जिनके पौधों की जड़ों को जैव उर्वरकों द्वारा उपचारित किया जाता है। इसके लिये बर्तन में 5–7 लीटर पानी में एक किलोग्राम जैव उर्वरक मिला लेते हैं। इसके उपरान्त नर्सरी से पौधों को उखाड़कर तथा जड़ों से मिट्टी साफ करने के पश्चात 50–100 पौधों को बण्डल में बाँधकर जीवाणु खाद के घोल में 10 मिनट तक डुबो देते हैं। इसके बाद तुरन्त रोपाई कर देते हैं।

कन्द उपचार विधिः

गन्ना, आलू, अदरक, घुइयाँ जैसी फसलों में जैव उर्वरकों के प्रयोग हेतु कन्दों को उपचारित किया जाता है। एक किलोग्राम जैव उर्वरक को 20–30 लीटर घोलकर मिला देते हैं। इसके उपरान्त कन्दों को 10 मिनट तक घोल में डुबोकर रखने के पश्चात बुवाई कर देते हैं।

मृदा उपचार विधिः

4–5 किलोग्राम जैव उर्वरक 50–60 कि.ग्रा. मिट्टी या कम्पोस्ट का मिश्रण तैयार करके प्रति हेक्टेयर की दर से खेत की अन्तिम जुताई पर खेत में मिला देते हैं।

जैव उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियाँः

जैव उर्वरक को हमेशा धूप या गर्मी से बचा कर

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर मध्य प्रदेश, पिन कोड 482004

रखना चाहिये। कल्चर पैकेट उपयोग के समय ही खोलना चाहिये। कल्चर द्वारा उपचारित बीज, पौध, मिट्टी या कम्पोस्ट का मिश्रण छाया में ही रखना चाहिये। कल्चर प्रयोग करते समय उस पर उत्पादन तिथि, उपयोग की अन्तिम तिथि, फसल का नाम आदि अवश्य लिखा देख लेना चाहिये। निश्चित फसल के लिये अनुमोदित कल्चर का उपयोग करना चाहिये।

जैव उर्वरकों के प्रकारः

जैव उर्वरक निम्न प्रकार के उपलब्ध हैं:–

1. राइजोबियम कल्चर
2. एजोटोबैक्टर कल्चर
3. एजोस्पाइरिलम कल्चर
4. नीलहरित शैवाल
5. फास्फेटिक कल्चर

1. राइजोबियम कल्चरः यह एक सहजीवी जीवाणु है जो पौधो की जडों में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके उसे पौधों के लिए उपलब्ध कराती है। यह खाद दलहनी फसलों में प्रयोग की जा सकती है तथा यह फसल विशिष्ट होती है, अर्थात अलग–अलग फसल के लिये अलग–अलग प्रकार का राइजोबियम जीवाणु खाद का प्रयोग होता है। राइजोबियम जीवाणु खाद से बीज उपचार करने पर ये जीवाणु खाद से बीज पर चिपक जाते हैं। बीज अंकुरण पर ये जीवाणु जड़ के मूलरोम द्वारा पौधों की जड़ों में प्रवेश कर जड़ों पर ग्रन्थियों का निर्माण करते हैं। फसल विशिष्ट पर प्रयोग की जाने वाली राइजोबियम कल्चर दलहनी फसलें: मूँग, उर्द, अरहर, चना, मटर, मसूर, मटर, लोबिया, राजमा, मेथी इत्यादि। तिलहनी फसलें: मूँगफली, सोयाबीन। अन्य फसलें: बरसीम, ग्वार आदि।

2. एजोटोबैक्टर कल्चरः यह जीवाणु खाद में पौधों के जड़ क्षेत्र में स्वतन्त्र रूप से रहने वाले जीवाणुओं का एक नम चूर्ण रूप उत्पाद है, जो वायुमण्डल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। यह जीवाणु खाद दलहनी फसलों को छोड कर सभी फसलों पर उपयोग में लायी जा सकती है। इसका प्रयोग सब्जियों जैसे– टमाटर, बैंगन, मिर्च, आलू, गोभीवर्गीय सब्जियों मे किया जाता है।

3. एजोस्पाइरिलम कल्चरः यह जीवाणु खाद भी मृदा में पौधों के जड़ क्षेत्र में स्वतन्त्र रूप से रहने वाले जीवाणुओं का एक नम चूर्ण रूप उत्पाद है, जो वायुमण्डल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। यह जीवाणु खाद धान, गन्ने, मिर्च, प्याज, आदि फसल हेतु विशेष उपयोगी है।

4. नील हरित शैवाल खादः एक कोशिकीय सूक्ष्म नील हरित शैवाल नम मिट्टी तथा स्थिर पानी में स्वतन्त्र रूप से रहते हैं। धान के खेत का वातावरण नील हरित शैवाल के लिये सर्वथा उपयुक्त होता है। इसकी वृद्धि के लिये आवश्यक ताप, प्रकाश, नमी और पोषक तत्वों की मात्रा धान के खेत में विद्यमान रहती है।

प्रयोगविधिः धान की रोपाई के 3–4 दिन बाद स्थिर पानी में 12.5 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से सूखे जैव उर्वरक का प्रयोग करें। इसे प्रयोग करने के पश्चात 4–5 दिन तक खेत में लगातार पानी भरा रहने दें। इसका प्रयोग कम से कम तीन वर्ष तक लगातार खेत में करें। इसके बाद इसे पुनः डालने की आवश्यकता नहीं होती है। यदि धान में किसी खरपतवारनाशी का प्रयोग किया है तो इसका प्रयोग खरपतवारनाशी के प्रयोग के 3–4 दिन बाद ही करें।

5. फास्फेटिक कल्चरः फास्फेटिक जीवाणु खाद भी स्वतन्त्रजीवी जीवाणुओं का एक नम चूर्ण रूप में उत्पाद है। नत्रजन के बाद दूसरा महत्वपूर्ण पोषक तत्व फास्फोरस है, जिसे पौधे सर्वाधिक उपयोग में लाते हैं। फास्फेटिक उर्वरकों का लगभग एक–तिहाई भाग पौधे अपने उपयोग में ला पाते हैं। शेष घुलनशील अवस्था में ही जमीन में ही पड़ा रह जाता है, जिसे पौधे स्वयं घुलनशील फास्फोरस को जीवाणुओं द्वारा घुलनशील अवस्था में बदल दिया जाता है तथा इसका प्रयोग सभी फसलों में किया जा सकता है।

फास्फेटिक कल्चर की प्रयोग विधिः फास्फेटिक कल्चर या पी.एस.बी. कल्चर का प्रयोग रोपा लगाने के पूर्व धान पौध की जड़ों या बीज को बोने के पहले उपचारित किया जाता है। बीज उपचार हेतु 5–10 ग्राम कल्चर/किलोग्राम बीज दर से उपचारित करें। रोपा पद्धति में धान की जड़ों को धोने के बाद 300–400 ग्राम कल्चर के घोल में डुबाकर निथार लें, बाद में रोपाई करें। पी.एस.बी. कल्चर का भूमि में सीधे उपयोग की अपेक्षा बीजोपचार या जड़ों का उपचार अधिक लाभकारी होता है।

जैव उर्वरकों के उपयोग से लाभः

1. इसके प्रयोग से फसलों की पैदावार में वृद्धि होती है।
2. रासायनिक उर्वरक एवं विदशी मुद्रा की बचत होती है।
3. यह हानिकारक या विषैले नही होते।
4. मृदा को लगभग 25–30 कि.ग्रा./हे. नाइट्रोजन एवं 15–20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर फास्फोरस उपलब्ध कराना तथा मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशाओं में सुधार लाना।

5. इनके प्रयोग से उपज में वृद्धि के अतिरिक्त गन्ने में शर्करा की, तिलहनी फसलों में तेल की तथा मक्का एवं आलू में स्टार्च की मात्रा में बढ़ोतरी होती है।
6. विभिन्न फसलों में बीज उत्पादन कार्यक्रम द्वारा 15–20 प्रतिशत उपज में वृद्धि करना।
7. किसानों को आर्थिक लाभ होता है।
8. इनसे बीज उपचार करने से अंकुरण शीघ्र होता है तथा कल्लों की संख्या में वृद्धि होती है

भूमि की उर्वरता किसी भी राष्ट्र के लिए बहुत महत्त्व रखती है किसी भी देश की सभ्यता का अंदाजा वहां के भूमि के सदुपयोग या दुरूपयोग से लगाया जा सकता है। हमारी जनसंख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। जबकि हमारी कृषि योग्य भूमि सिकुडती जा रही है। हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं है, जिससे कि हम भूमि का क्षैतिज विस्तार कर सके। अब यह हमारे ऊपर निर्भर करता है, कि हम इनका उपयोग किस प्रकार करें। क्योंकि ये हम सभी जानते है। कि सभी वनस्पतियों तथा प्राणियों का जीवन इसी पर टिका हुआ है। आज के युग में जब कृषि भी एक व्यापार बन गया है। मृदा उर्वरता का महत्त्व और अधिक बढ जाता है। मूल्यवान उर्वरकों एवं जैविक खादों के संरक्षित तथा उचित उपयोग का मार्ग भी मृदा परीक्षण के ज्ञान से ही संभव है।

देश की शान है हिंदी, देश की पहचान है हिंदी, क्योंकि हर भारतीय के दिल में विराजमान हैं हिंदी।

ऊंचाई के शिखर पर हिंदी को पहुंचाओ हिंदी की पहचान पूरी दुनिया में बनाओ।

पौष्टिक सिंघाड़े का प्रसंस्करण एवं उपयोगिता

डी.सी. श्रीवास्तव[1], आर. के. झाडे एवं सुरेन्द्र पन्नासे

आज न केवल हमारे देश में बल्कि समूचे विश्व में कृषि उत्पादन एवं कृषि औद्योगिकी से जुड़े लोगों के सामने सबसे बड़ी चुनौती है कि कैसे पौष्टिक आहार की मात्रा बढ़ायी जाये। हमारे सामने ऐसे कई अल्प उपयोगी फल एवं सब्जियां है जिनमें पौष्टिकता होते हुये भी हमें उनके बारे में जानकारी न होने से अपने भोजन में पौष्टिकता बढ़ाने हेतु शामिल नहीं कर पाते हैं। ऐसे ही एक पानी में पैदा होने वाला तिकोने आकार का फल है, सिंघाड़ा जिसे संस्कृत में श्रृंगाटक कहते है, सिंघाड़ा एवं उसके उत्पाद इस संदर्भ में अपनी अहम भूमिका निभा सकते है। सिंघाड़ा को खाद्य सुरक्षा की श्रेणी से अलग कर दिया गया। कृषि क्षेत्रों का कम होते जाना और आय एवं खाद्य सुरक्षा के लिए परम्परागत कृषि पर निर्भर रहना एवं किसानों की संख्या में ह्यास भी खेती की उपेक्षा का एक प्रमुख कारण है। परन्तु इन सारी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि ये फसल स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वस्थ खाद्य, उच्च पोषक क्षमता, फाइबर की अधिकता एवं कार्बोहाइड्रेट के उपलब्धता के कारण महत्वपूर्ण है। ऐसी स्थिति में इसके परम्परागत स्वरूप को लघु एवं सीमान्त खेती के रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है ताकि स्वस्थ खाद्य के तौर पर सिंघाड़ा का इस्तेमाल किया जा सके। सिंघाड़ा की खेती के प्रति रूझान बढ़ाने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

भारत में लोग व्रत उपवास में इसका सेवन करते है, क्योंकि इसे अनाज नहीं वरन् एक फल माना जाता है। प्रकृति ने सिंघाड़े को कई खूबिया दी हैं। इस फल में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फास्फोरस, कैल्शियम, आयरन, मैग्निशियम और विटामिन एक सरीखे पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है। यह थायराइड से संबंधित शिकायतों और घेंघा रोग में भी लाभप्रद है। ऐसा इसीलिए क्योंकि सिघाड़ा में पर्याप्त मात्रा में आयोडीन और मैगनीज सरीखे पोषक तत्व पाये जाते हैं।

आयुर्वेद गुण – आयुर्वेद में सिंघाड़े को हल्का, शीतल एवं तृप्तिकारक फल माना गया है, सिंघाड़ा शरीर की जलन दूर करता है। दूध की अपेक्षा सिंघाड़ा में 22 प्रतिशत खनिज क्षार होता है। पित्त के दोष व खून की खराबी को दूर करता है।

सिंघाड़ा में पौष्टिकता इतनी प्रबल होती है कि पौष्टिक दृष्टि से मानव शरीर की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। सिंघाड़ा फल से भरपूर मात्रा में प्रोटीन, विटामिन वसा और खनिज पदार्थ तथा ऊर्जा आदि प्राप्त होते है। सिंघाड़ा फल कहलाने वाले खाद्यान्न पौष्टिकता की दृष्टि से कितने प्रबल है इसकी जानकारी निम्न सारणी मे तुलनात्मक रूप दी जा रही है। ताकि इनकी पौष्टिकता के महत्व को समझा जा सके। इसका प्रयोग भोजन मे करने से हृदयरोग, मधुमेह एवं अल्सर की बीमारियों के लिए अति गुणकारी पाया गया है।

सिंघाड़े को दो प्रकार से मूल्य संवर्धित किया जा सकता है। जिसमें कच्चा सिंघाड़ा एवं सिंघाड़े की सूखी गोटी से आटा बनाकर खाद्य पदार्थों का सशक्तीकरण किया जा सकता है।

कच्चा सिंघाड़ा – मुख्य रूप से कच्चा सिंघाड़ा के लिए लाल गुलरा, लाल चिकनी गुलरी, हरिया गतुआ आदि जल्दी पकने वाली जातियां है। जिसका गूदा नरम एवं हल्का मीठा होता है। कच्चे सिंघाड़े को आम तौर पर उबालकर चटनी के साथ खाया जाता है। महिलाएं व्रत के समय सिंघाड़ा से सिंघाड़ा बर्फी, सिंघाड़ा हलवा, सिंघाड़ा दही बड़ा इत्यादि बना सकते है।

सूखा सिंघाड़ा – आम तौर पर सूखा सिंघाड़ा का आटा बाजार में उपलब्ध होता है जो कि देर से पकने वाली जातियां करिया हरीरा, गुलरा, लाल चिकनी गुलरी इत्यादि देर से पकने वाली बिना कांटे वाला फल होता है। जिसमें छिलके गहरे लाल एवं बड़े आकार के फल होते हैं। इसमें आम तौर पर सुखाने के बाद गूदा ज्यादा मात्रा में प्राप्त होता है। सिंघाड़े की सूखी गोटी का मूल्य बाजार में 150 से 200 रूपये किलो तक होता है। एक क्विंटल कच्चे सिंघाड़े से लगभग 20 किलो गोटी तैयार की जाती है। जिसे आसानी से पैक करके रखा जा सकता है। सूखे सिंघाड़े के आटे में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम एवं फास्फोरस की अधिकता होती है एवं इसके 100 ग्राम मात्रा से लगभग 350 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। सूखे सिंघाड़े के आटे से सिंघाड़ा पूड़ी, सिंघाड़ा पौष्टिक मठरी, सिंघाड़ा का पुरा, सिंघाड़ा बेसन लड्डू इत्यादि बनाया जा सकता है।

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, छिन्दवाड़ा

कच्चा एवं सूखा सिंघाड़ा में उपलब्ध जैव रासायनिक तत्व

जैव रासायनिक तत्व (प्रतिशत)	कच्चा सिंघाड़ा	सूखा सिंघाड़ा
नमी	70.35	7.30
प्रोटीन	4.40	10.80
वसा	0.65	1.85
कार्बोहाइड्रेट	22.30	71.55
फाइबर	2.5	6.35
राख	2.30	8.50
कैल्शियम मिलीग्राम / 100 ग्राम	32	102.85
आयरन मिलीग्राम / 100 ग्राम	1.4	3.80
फास्फोरस मिलीग्राम / 100 ग्राम	121	325
ऊर्जा किलो कैलोरी	115.52	354.85

सिंघाड़े के विशिष्ट औषधीय एवं पौष्टिक गुण

विशिष्ट तथ्य	औषधीय एवं पोषक मूल्य	सिंघाड़ा द्वारा निर्मित खाद्य पदार्थ
प्रोटीन, विटामिन एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की अधिकता सीमान्त क्षेत्र में विकास स्वस्थ, पूरक खाद्य	कम मात्रा में कार्बोहाइड्रेट तथा विटामिन ए, बी–कॉम्प्लेक्स, बीटा–केरोटीन, आयरन, कैल्शियम, प्रोटीन का पाया जाना, बुजुर्ग, बीमार के लिए शक्तिवर्द्धक खाद्य पदार्थ थायराइड पीड़ित व्यक्तियों के लिए उपयोगी	मिठाई स्नैक्स शिशु खाद्य पूरक खाद्य

कच्चे सिंघाड़े से खाद्य पदार्थों का निर्माण – पूर्ण विकसित सिंघाड़े का छिलका निकालकर जो कि सफेद रंग का गूदा निकलता है जिसे पीसकर खाद्य पदार्थ बनाये जाते है।

1. सिंघाड़ा पौष्टिक मठरी

सामग्री	आवश्यक मात्रा
बेसन (चने का आटा)	250 ग्राम
सिंघाड़ा का आटा	250 ग्राम
मैथी / पालक की भाजी	50 ग्राम
तेल	250 ग्राम
नमक	स्वादानुसार

बनाने की विधि – कच्चे सिंघाड़े को छील कर पेस्ट बनाये एवं बेसन की समान मात्रा लेकर उसमें दो चम्मच तेल एवं स्वादानुसार नमक मिलाये साथ ही मैथी या पालक की बारीक कटी हुई पत्तियॉं मिलाकर, अच्छी तरह गूदें एवं आधे से एक घंटे के लिए रख दें। अब छोटे – छोटे टिकियां बनाकर गर्म

तेल में डालकर धीमी आंच में भूरा होने तक तलें।

विशेष – कोई भी हरे पत्तेदार सब्जियों का प्रयोग करें। दही डालने से मठरी, कुरकुरी एवं पौष्टिक हो जाती है। भण्डारण 15 दिन तक हो सकता है।

सिंघाड़ा के आटे का मूल्य संवर्धन एवं खाद्य पदार्थों का निर्माण

1. पौष्टिक सिंघाड़ा लड्डू –

सामग्री	आवश्यक मात्रा
राजगिरे का आटा	100 ग्राम
सिंघाड़ा का आटा	200 ग्राम
बेसन	20 ग्राम
तेल	100 ग्राम
शक्कर	300 ग्राम
इलायची पिसी हुई, खोपरे के छोटे–छोटे टुकड़े, काजू, बादाम	

पौष्टिक सिंघाड़ा लड्डू

विधि – सिंघाड़े के आटे व राजगिरे के आटे को धीमी आँच पर घी डालकर सेंक लें। खुशबू आने लगे तक शक्कर पीसकर उसमें मिला दें। इलायची, खोपरा, काजू, बादाम भी मिला दें। गरम–गरम ही लड्डू बना लें, नहीं बंधने पर थोड़ा घी और डालें। ये स्वादिष्ट होने के साथ ही पौष्टिक भी होते हैं।

विशेष – लड्डू को बनाने के लिये चाशनी को नीचे उतारकर फिर भूने हुये बेसन को मिलायें।

2. सिंघाड़ा बर्फी –

सामग्री	आवश्यक मात्रा
सिंघाड़ा का आटा	300 ग्राम
मूंगफली	50 ग्राम
तेल	10 ग्राम
शक्कर	250 ग्राम
पानी	50 मिली लीटर

बनाने की विधि –

सिंघाड़ा बर्फी

सिंघाड़ा आटे को तेल में भूजें। शक्कर को गर्म कर उसकी गाढ़ी चाशनी बनायें। भुने हुये आटे को एवं मूंगफली मिलाकर गर्म चाशनी में मिलायें। अब थाली में थोड़ा सा तेल लगाकर मिक्चर को थाली में डालें एवं ठंडा होने पर बरफी के आकार में काटें।

विशेष – मिश्रण को तब तक भूजना है जब तक सोंधी खुशबू न आने लगे।

सिंघाड़ा प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन हेतु उपयुक्त किस्में

भूरी गुलरी

लाल गुलरा

करिया हरीरा

लाल गुढआ

महिलाओं द्वारा सिंघाडा तौडाई एवं प्रसंस्करण

आभार:–

1. फल परिरक्षण – डॉ. श्याम सुंदर श्रीवास्वत
2. खेती, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद नई दिल्ली

केंचुआ खाद- प्राकृतिक खेती का स्तम्भ

ए.के. राय, शक्ति खजुरिया, कनक लता, राजकुमार, एवं जे के जादव

वर्तमान समय में बढ़ती हुई आबादी की पोषण जरूरतों को पूरा करने के लिए सघन खेती तथा मृदा स्वस्थ्य बनाए रखने के लिये प्राकृतिक खेती पर जोर दिया जा रहा है। रासायनिक खादों, कीटनाशकों का बहुतायत में प्रयोग करने से हमारी मृदा का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। इसे ध्यान में रखते हुये वैज्ञानिकों की किसान भाइयों को सलाह है कि अपनी खेती में कम लागत से अच्छी फसल की पैदावार के लिए केंचुआ खाद का उत्पादन एवं उपयोग बहुत महत्त्वपूर्ण व लाभकारी होता है। जो भूमि में पोषक तत्वों की हुई क्षति को पूर्ण करने की क्षमता रखता है। यह परम्परिक खेती का स्तम्भ रहा है तथा वर्तमान में प्राकृतिक खेती का भविष्य है।

केंचुआ कृषि में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान भूमि सुधार के रूप में देता है। इनकी क्रियाशीलता मृदा में स्वतः चलती रहती है। प्राचीन समय में प्रायः भूमि में केंचुए पाये जाते थे तथा वर्षा के समय भूमि पर देखे जाते थे। केंचुआ मिट्टी में पाये जाने वाले जीवों में सबसे प्रमुख है। यह अपने आहार के रूप में मिट्टी तथा कच्चे जीवांश को निगलकर अपनी पाचन नलिका से गुजारते हैं, जिससे वह महीन कम्पोस्ट में परिवर्तित हो जाते हैं और अपने शरीर से बाहर छोटी–छोटी कास्टिंग्स के रूप में निकालते हैं। इसी कम्पोस्ट को केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट) कहा जाता है। कम्पोस्ट मात्र 45 दिन में तैयार हो जाता है। केंचुओं का पालन 'कृमि संवर्धन' या 'वर्मी कल्चर' कहलाता है।

केंचुआ खाद कैसे बनाए

केंचुआ रोज अपने वजन के बराबर कचरा/मिट्टी

खाता है और उससे मिट्टी की तरह दानेदार खाद बनाता है। भूमि की ऊपरी सतह पर रहने वाले लंबे गहरे रंग के केंचुए जो अधिकत्तर बरसात के मौसम में दिखाई पड़ते हैं, खाद बनाने के लिए एसिनाफोटिडा नामक प्रजाती उपयुक्त हैं। जो भोजन के रूप में कच्चा कचरा, कच्चा गोबर आदि का उपयोग करती है। कच्चे गोबर के विघटन की प्रक्रिया के दौरान उससे गर्मी उत्पन्न होती है जो केंचुओं के लिए हानिकारक होती है। अतः हमारे खेत में उत्पन्न होने वाले कचरे एवं गोबर को अलग से 15 से 20 दिन सड़ाना आवश्यक है। इसे ढेर के रुप में एक स्थान पर रखते हुए 10 दिनों तक नमी देते रहते हैं, जिससे विघटन के समय निकलने वाली गर्मी समाप्त हो जाये। इसके बाद उसे वर्मी बेड में केंचुओ के भोजन के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

वर्मी बेड तैयार करने की विधि

केंचुआ खाद के उत्पादन के लिए छायादार जगह का होना आवश्यक है। केंचुआ खाद उत्पादन के लिए वर्मी बेड जिसकी लंबाई 20 फुट तक तथा चौड़ाई 2.5 से 4 फुट तक होनी चाहिए। इस बेड में पहले नीचे की तरफ ईंट के टुकड़े (3"–4") फिर उपर रेत (2") एवं मिट्टी (3") का थर दिया जाता है जिससे विपरीत परिस्थिति में केंचुए इस बेड के अंदर सुरक्षित रह सके। इस बेड के ऊपर 6 से 12 इंच तक पुराना सड़ा हुआ कचरा

कृषि विज्ञान केन्द्र– वेजलपुर, पंचमहल (गुजरात)

केंचुओं के भोजन के रूप में डाला जाता है। 40 से 50 दिन के बाद जब घास की परत अथवा टाट बोरी हटाने के बाद हल्की दानेदार खाद ऊपर दिखाई पड़े, तब खाद के बेड में पानी देना बंद कर देना चाहिए। ऊपर की खाद सूखने से केंचुए धीरे–धीरे अंदर चले जाएंगे। ऊपर की खाद के छोटे–छोटे ढेर बेड में ही बनाकर एक दिन वैसे ही रखना चाहिए। दूसरे दिन उस खाद को निकालकर बेड के नजदीक में उसका ढेर कर लें।

खाली किए गए बेड में पुन

दूसरा कचरा जो केंचुओ के भोजन हेतु तैयार किया गया हो, का उपयोग किया जाता है। तैयार खाद के ढेर के आसपास गोल घेरे में थोड़ा पुराना गोबर के घोल को फैला कर ढक दें। इस प्रक्रिया में खाद में जो केचुएं रह गए हैं वे धीरे–धीरे गोबर में आ जाते हैं। जिसे वर्मी बेड में डाल देते हैं। इस प्रकार निरंतर खाद बनने की प्रक्रिया प्रारम्भ रहती है। इस प्रकार एक बेड से करीब 500 से 600 किलो केंचुआ खाद 30–40 दिन में प्राप्त होती है।

केंचुओं के दुश्मन

केचुओं के कुछ प्राकृतिक दुश्मन भी हैं जो इस प्रकार हैं। लाल चींटी, मुर्गी ,मेढक, सांप, सुअर (भुंड), गिरगिट एवं कुछ मिट्टी में रहने वाले कीड़े अथवा मांसभक्षी जीव जो केंचुओं को खाते हैं। इन सबसे बचाने के लिए वर्मी बेड को अच्छी तरह पहले घास से या फिर हल्के कांटों से ढकना चाहिए। केंचुआ खाद के शेड के चारों तरफ नाली खोदकर उसमें पानी भर देने से चींटीयों से रक्षा होती है। शेड के चारों ओर कांटेदार बाड़ लगाने से मुर्गियां अंदर नहीं आ सकेंगी। समय–समय पर वर्मी बेड का परीक्षण करते रहना चाहिए। यदि वर्मी बेड में लाल चींटीयों हो गई हों तब 20 लीटर पानी में 100 ग्राम मिर्च पाउडर, 100 ग्राम हल्दी पाउडर, 100 ग्राम नमक एवं थोड़ा साबुन डालकर उसका हल्का–हल्का छिड़काव वर्मी बेड में किए जाने से चींटीयां भाग जाती हैं।

केंचुआ खाद के गुण

इस तरह बनाए गए केंचुआ खाद में सभी प्रकार के पोषक तत्व उपस्थित होते हैं, जिन्हें नीचे तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका : केंचुआ खाद में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा

क्रम. स.	पोषक तत्व	मात्रा
1.	पी. एच.	6.5 – 7.5
2.	आर्गेनिक कार्बन (%)	15 – 20
3.	नाइट्रोजन (%)	1.3 – 1.9
4.	फास्फोरस (%)	1.0 – 1.8
5.	पोटैशियम (%)	1.5–2.4
6.	कार्बन : नाइट्रोजन	14 – 15 : 1
7.	कैल्सियम (%)	0.5–1.0
8.	मैंगनीसियम (%)	0.4 – 0.7
9.	गंधक (%)	0.3–0.5
10.	आयरन (पी.पी.एम.)	2–9.3
11.	जिंक (पी.पी.एम.)	5.7–11.5
12.	कापर (पी.पी.एम.)	2.9–5.0

केंचुआ खाद के उपयोग की मात्रा

सामान्यतः विभिन्न फसलों में इसे निम्न मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है।

क्रम. स.	फसलें	केंचुआ खाद मात्रा
1.	धान्य फसलों	2 टन / एकड़
2.	दलहनी फसलों	2 टन / एकड़
3.	तिलहनी फसलों	2–5 टन / एकड़
4.	मसाले की फसलों	4 टन / एकड़
5.	फलदार वृक्ष	1 से 10 किलो ग्राम / वृक्ष
6.	गमले के	100 से 200 ग्राम

केंचुआ खाद से आर्थिक लाभ

केंचुआ खाद तैयार करते समय प्रथमिक खर्च अधिक रहता है। बाद में खर्च घटता जाता है, क्योंकि 40 से

50 दिन में उत्पादन प्रारम्भ हो जाता है।

अनावर्ती व्यय (Non recurring expenditure)

क्रम. स.	मद	खर्च (रुपया)
1.	वर्मी बेड का खर्च (प्लास्टिक बेड–12x2.5x1.5 फीट = कुल 10 बेड)	11000/–
2.	शेड बनाने का खर्च (24X50 फीट)	25000/–
3	केंचुआ खरीदने का खर्च (20 कि.ग्रा.)	8000/–
4.	मशीन यंत्र आदि की खरीद करने का खर्च	10000/–
	कुल	**54000/–**

आवर्ती व्यय (recurring expenditure)

क्रम. स.	मद	खर्च (रुपया)
1.	कच्चा गोबर, कचरा (1200 रुपया प्रति 3 टन) कुल 30 टन	12000/–
2.	वर्मी बेड भरने का खर्च	8000/–
3.	बैग, बैग पैकिंग आदि का खर्च	15000/–
	कुल	35000/–

प्रथम वर्ष का कुल खर्च = 54000+35000= 89000/–रु.

आय का विवरण

क्रम. स.	मद	प्रति 10 बेड से आय (प्रति वर्ष)
1.	वर्मी कम्पोस्ट की विक्री से आय • 400 कि.ग्रा.प्रति बेड /माह • 10 बेड से 4000 कि.ग्रा प्रति माह • 4000 x 12= 48000 कि.ग्रा प्रति वर्ष • दर रुपया 3.5 प्रति कि.ग्रा (3.5x48000=)	168000/–
2.	केचुओं की विक्री से आय • 1 कि.ग्रा.प्रति बेड /माह • 10 बेड से 10 कि.ग्रा प्रति माह • 10 X 12= 120 कि.ग्रा प्रति वर्ष • दर रुपया 400 प्रति कि.ग्रा (120x300=36000)	36000/–
	कुल	**204000/–**

कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचमहल द्वारा ग्रामीण कृषि मौसम सेवा

कनक लता, सुनिल कुमार यादव

भारतीय कृषि आज भी लगभग 65 प्रतिशत वर्षा आधारित है। अल्प वृष्टि एवं अतिवृष्टि दोनों ही फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। पंचमहल अर्धशुष्क क्षेत्र में आता है। यहाँ की औसत वर्षा 700 से 800 मिली मीटर है। किसान पूर्ण रुपेण मानसुन की वर्षा पर आधारित रहते हैं। ऐसी स्थिति में किसानों को मौसम की जानकारी बहुत लाभदायक साबित होता है। भारत सरकार के पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय द्वारा 'ग्रामीण कृषि मौसम सेवा' की परियोजना चलायी जा रही है जिसके अंतर्गत कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल को भी यह परियोजना प्राप्त हुयी है। इस परियोजना में एक विषय विशेषज्ञ एवं एक वेधशाला पालक की नियुक्ति की गयी है जो कृषि विज्ञान केन्द्र के देख रेख में कार्य संपादन कर रहे हैं। कार्मिकों की नियुक्ति के पश्चात निरंतर किसानों के लिए ग्रामीण कृषि मौसम सेवा संचालित की जा रही है।

इस परियोजना के अंतर्गत जिले के सभी ब्लॉक एवं ग्राम स्तर पर मौसम की जानकारी एवं उक्त परिस्थितियों में किस फसल में कौन सी कृषि क्रिया की जाए इसका परामर्श भी किसानों को वाट्सएप या लघु संदेश (SMS) के द्वारा दी जाती हैं। इस परियोजना के तहत और जो अन्य महत्वपूर्ण सूचनाएं दी जाएंगी वो अग्रलेखित हैं–

1. आगामी 5 दिनों के लिए मौसम पूर्वानुमान (जो 80 प्रतिशत से अधिक सही होता है।)
2. खेतों की तैयारी एवं विभिन्न फसलों को लगाने के समय एवं विधि से संबंधित परामर्श।
3. खाद एवं उर्वरक के प्रयोग संबंधी परामर्श (कितना, कब और कैसे प्रयोग करें ?)।
4. जल एवं भूमि प्रबंधन से संबंधित परामर्श।
5. रोग एवं कीटाणु के आक्रमण की शंकाएं तथा इससे बचाव एवं उपचार से संबंधित परामर्श।
6. फसल की कटाई, ओसाई एवं भण्डारण से संबंधित परामर्श।
7. प्रतिकूल परिस्थिति में वैकल्पिक फसल प्रबंधन।
8. पशुधन में होने वाले रोगों एवं उनके उपचार की जानकारी।
9. ऋतु के अनुसार स्वास्थ्य एवं आहार सबंधित सामान्य सूचना।
10. विभिन्न कृषक एवं कृषक महिला हितैषी सूचनाएं।

किसानों को वर्षा, धूप, हवा की गति एवं आर्द्रता आदि की सूचनाएं सप्ताह में दो बार क्रमशः मंगलवार एवं शुक्रवार को दी जा रही है। किसानों को मौसम की अग्रिम सूचना प्राप्त होने से पर्याप्त लाभ मिल रहा है। आइए एक किसान से प्राप्त प्रतिपुष्टि एवं सफलता की कहानी से आपको प्रत्यक्ष कराते हैं।

श्री राजेंद्रसिंह नरवत सिंह जादव पंचमहल जिले के भूखी गाँव के किसान हैं, उन्होंने लगभग पाँच एकड़ में चना की खेती की थी। सोने के नुपूर जैसी फलियों से लदी फसल को उन्होंने काट कर खलिहान में ढेर कर दी थी, रिश्तेदारी में एक विवाह समारोह था अतः वे दो तीन दिनों के लिए दुसरे गाँव उस समारोह में शामिल होने के लिए गए थे। उन्होंने वहाँ अपने मोबाईल पर कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा प्राप्त मौसम सूचना को देखा जिसमें दो–तीन दिन में वर्षा की संभावना बतायी गयी थी। पंचमहल में प्रायः मार्च महीने में वर्षा नहीं होती है अतः उन्होंने इस सूचना के प्रति आश्वस्त होने के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र पर फोन किया द्य जैसी ही इस सूचना की सत्यता का भान हुआ वे तुरंत विवाह समारोह को छोड़कर अपने गाँव वापस लौटे और शीघ्रता पूर्वक चने की झड़ाई प्रारंभ करवा कर सुरक्षित स्थान पर रखवा लिया। उन्होंने न सिर्फ स्वयं बल्कि अन्य ग्रामीणों को भी यह सूचना देकर उन्के मेहनत से उगाए गए फसलों की सुरक्षा की। इस घटना के पश्चात श्री राजेंद्र एवं कई अन्य किसान कृषि विज्ञान केन्द्र का धन्यवाद ज्ञापन किया एवं ज्यादा से ज्यादा किसानों को कृषि विज्ञान केन्द्र के मौसम सूचना माध्यम से जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं।

सचमुच में ग्रामीण कृषि मौसम सेवा किसानों के लिए लाभकारी योजना है। मौसम की सही जानकारी से कृषक कृषि क्रिया के लिए सही समय पर सही निर्णय ले कर मौसम की मार से होने वाली क्षति से बहुत हद तक बच सकते हैं। मौसम सेवा किसानों के लिए वरदान स्वरुप है।

कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल

वर्षा, बादल, धूप, छाँव

मौसम सिर्फ विरहनों की धड़कने ही नहीं बढ़ाती है,
यह तो अन्नदाता की साँसे भी डगमगाती है।
कड़ी धूप से जब धरती प्यासी होती है,
कृषकों की निगाहें गगन पर मंडराती हैं।
हृदय में आशा–निराशा शोर मचाती है,
रह–रह कर मन में अशंका कुलबुलाती है।
हे राम ! न जाने क्या होगा ?
बरसेगी बदली या सूखा मार डालेगा ?
ऐसे में कृ.वि.केन्द्र की टीम बीड़ा उठाती है,
कब छाएगा बादल, बरसेगा कब पानी उनको बताती है।
फसल पक कर कनक सी दिप्त होती है,
तभी कारे बादल गगन पर घेर आते है,
क्या करें, कैसे करें ? कब करें ?
कृषक असमंजस में भरमाते हैं।
तभी कृ.वि.केन्द्र के साथी, दूत बन आतें हैं,
उचित सूचना, परामर्श ला कृषक को बताते हैं।
खेतिहर पकी फसलें बचा कर घर को लाते हैं,
तभी तो हम भोजन और पोषण पाते हैं।
यही सत्कर्म हमें करना सदा है,
सच्चे कृषि वैज्ञानिक का यही फर्ज–ए–अदा है।

इंद्रधनुषी कृषि क्रांति

डॉ. कनक लता

कृषक और कृषि वैज्ञानिकों के अथक श्रम का बड़ा सम्मान है,
देश के प्रगति के लिए किया कृषि क्रांति का आह्वान है।
हरित क्रांति कृषि प्रगति का प्रथम सोपान है,
अन्न फल से भरा हर बाग खेत खलिहान है।
श्वेत क्रांति बना पोषण का सबल संधान है,
दुग्ध उत्पादन में बहुलता प्रत्यक्ष ही प्रमाण है।
पीत क्रांति हमारे देश का प्रतीक्षित अरमान है
दलहन तेलहन उगाने में लगा देश का किसान है।
नील क्रांति पर हमें अब हो रहा अभिमान है,
नदी झील, ताल, सरोवर मछलियों की खान है।
स्वर्णिम क्रांति ने दिया मधुर वरदान है।
फल और मधु की मिठास पर मोहित हर इंसान है।
स्वर्णिम तंतु क्रांति ने सजा रेशों की रेशमी तान है।
जूट, सीसल, अलसी के रेशे और रेशम के थान हैं।
रुपहली क्रांति के लिए पक्षी पालन बना विधान है।
अंडो से भरी अब टोकरी पशु प्रोटीन मिलना हुआ आसान है।
भूरी क्रांति से जग को महमहाने का महा अभियान है।
कोको कॉफी की महक से कहो कौन भला अंजान है ?
लौंग इलायची दालचीनी सौंफ जीरा भारत की सुरभित शान हैं।
विदेशी मुद्रा कमाने में नहीं अब कोई व्यवधान है।
इंद्रधनुषी क्रांति से सृजित पोषण सजा मुस्कान है,
धन–धान्य से पोषित युवा सबल सुदृढ बलवान है।
कृषिविद् कर्मयोगी, परिश्रमी और गुणवान हैं,
कृषि–क्रांति के वीर कर रहे सतत् अनुसंधान हैं।
हर कृषक आगे निकले संकल्प बद्ध हर प्राण है,
हर कदम में दम हो इतना कि देश समृद्धिवान हो।

प्रधान, कृषि विज्ञान केन्द्र–पंचमहल

जलवायु परिवर्तन के साथ मृदा उर्वरता एवं जल प्रंबधन

ए.के. राय, शक्ति खजुरिया, कनक लता, राजकुमार, एवं बी. एस. खद्दा

परिचय

मृदा एवं जल प्रकृति द्वारा मनुष्य को दी गई बहुमूल्य सम्पदा हैं जिनका कृषि हेतु उपयोग मनुष्य वर्षो से करता आ रहा है परन्तु वर्तमान परिस्थिति में की गई अनदेखी से इनका संतुलन बिगड़ता जा रहा है, तो दूसरी तरफ जलवायु परिवर्तन के सम्भावित प्रतिकूल प्रभाव के कारण मृदा उर्वरता एवं जल प्रबन्धन एक चुनौती के रूप में में देखा जा रहा है। लगातार बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिकरण व यातायात संसाधनों के बढ़ने से वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा निरंतर बढती जा रही है और साथ–साथ वनों का कटान जारी है जिससे वन का क्षेत्रफल भी लगातार घटता जा रहा है जिसके फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का दोहन निःसंदेह कई गुना बढ गया हैद्य जलवायु के परिवर्तन एवं औसत तापमान में वृद्धि से क्षेत्रीय जलवायु में बदलाव, नदियों के बहाव, उनमें जल की उपलब्धता एवं भू–जल स्तर, वर्षा की अवधि एवं वितरण, फसलों में पानी, सुखा, मृदा की उर्वरता इत्यादि पर असर दिखाई पड़ना प्रारम्भ हो गया है। पयार्वरण में इन सब बदलावों से कृषि के लिए जल की उपलब्धता और मृदा के स्वास्थ्य और उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है अतः भूमि एवं जल प्रबन्धन अत्यधिक आवश्यक होने के साथ–साथ इन प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं उचित उपयोग एक प्रमुख चुनौती बन गया है।

मृदा प्रबन्धन

मृदा प्रबंधन का मतलब मृदा की उर्वरा शक्ति को बढ़ाना या बनाये रखना एवं मृदा कटाव को रोकना है। मृदा कटाव से खेत की ऊपरी सतह की उपजाऊ मिट्टी बह जाती है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। मृदा प्रबन्धन के लिए हमें निम्नलिखित उपाय करने चाहिए–

1. वर्षा के पानी को खेत में रोकने के लिए मेड़बंदी करना चाहिए।
2. खेत के चारो तरफ घास तथा झाड़ीनुमा लाभदायक पौधे आदि उगा कर भूमि कटाव को रोकना चाहिए।
3. ढलानदार जमीन में सभी कृषि क्रियाएँ जैसे जुताई, बुआई, निराई–गुड़ाई आदि ढलान के विपरीत दिशा में करना चाहिए।
4. यदि ढलान बहुत ज्यादा हो तो सीढ़ीनुमा खेती करना चाहिए।
5. पानी के समुचित उपयोग क्षमता में वृद्धि के लिए सिंचाई की उन्नत तकनीक का प्रयोग करना चाहिए।

संतुलित उर्वरकों का उपयोग

रसायनिक उर्वरको के अंधाधुंध उपयोग से मृदा उर्वरता प्रभावित होना प्रारम्भ हो गई हैं, उर्वरक प्रयोग का मूल उद्देश्य पौधों की समुचित बढ़वार और पैदावार के लिए मृदा में अनुकूल पोषण दशाएं बनाये रखना होता हैद्य खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए यह अति आवश्यक हैद्य सामान्य तौर पर उर्वरक प्रयोग का उचित समय, स्थान व मात्रा का निर्धारण एवं फसल स्वभाव को ध्यान में रखकर करना चाहिये।

उर्वरकों का सफल प्रयोग कैसे करें

1. उर्वरकों का प्रयोग मृदा परिक्षण के आधार पर, भूमि की किस्म, फसलों की किस्म तथा भौगोलिक परिस्थितियों आदि को ध्यान को रखकर किया किया जाना चाहिए। इस प्रकार अनावश्यक तत्वों के उपयोग तथा उत्पादन लागत कम की जा सकती है।

कृषि विज्ञान केन्द्र– पंचमहल

2. उर्वरकों का संतुलित रूप में प्रयोग से मृदा उर्वरकता एवं मृदा संरचना पर सकारात्मक प्रभाव के साथ–साथ फसलोत्पादन में अच्छा परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।
3. उर्वरकों को सही समय, सही विधि, उचित गहराई, व समुचित मात्रा में प्रयोग से फसलों के उत्पादन में अच्छा परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।
4. फास्फोरस एवं पोटाशधारी उर्वरकों का फसलोत्पादन में बहुमूल्य योगदान है। फास्फोरस जड़ों की वृद्धि एवं विकास तथा पोषक की प्राप्यता को बढ़ाता है तथा पोटाश दोनों की वृद्धि एवं विकास तथा पौधे को विभिन्न कीट एवं बीमारियों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता हैद्य इन उर्वरकों के प्रयोग में किसी प्रकार की कमी न करें।
5. फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश अवश्य करें जिससे नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्रिया द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन पौधों को प्राप्त हो सके।
6. एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन प्रणाली को अपनाएँ जिसमें रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग के साथ–साथ कर्बनिक खादों (गोबर की खाद, केंचुआ खाद, कम्पोस्ट एवं हरी खाद इत्यादि) एवं जैव उर्वरकों (जैसे राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, वैम, पी.एस. बी., नील हरित शैवाल आदि) के प्रयोग पर बल दिया जाना चाहिए।

रासायनिक उर्वरक

रासायनिक उर्वरक एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन प्रणाली का एक महत्वपूर्ण घटक है। हमारे देश में उर्वरकों का उत्पादन उतना नहीं है कि बढ़ती हुई आवश्यकता की पूर्ति हो सके अतः आयात ही एक मात्र विकल्प है जो मांग और पूर्ति के अंतर को कम कर सकता है। इस अंतर को कम के लिये उर्वरक के उत्पादन क्षमता में वृद्धि, कार्बनिक खादों और जैव उर्वरकों के उपयोग को बढ़ावा देना आवश्यक हो गया है। प्रदान किये गए नाइट्रोजन धारी उर्वरकों की 30–60 प्रतिशत, फास्फोरस धारी उर्वरकों की 15–20 प्रतिशत तथा पोटाश धारी उर्वरकों की 40–80 प्रतिशत मात्रा का ही फसल द्वारा उपयोग हो पाता है। शेष मात्रा विभिन्न रास्तों से जैसे बहाव (लीचिंग), वाष्पीकरण, डीनाइट्रीफिकेशन, मृदा कटाव, स्थिरीकरण आदि के द्वारा नष्ट हो जाती है।

जैविक खादें

कार्बनिक खादें वर्षो से मृदा में फसलों के लिए पोषक तत्व पूर्ति के लिए उपयोग में ली जाती रही हैं शोध कार्यों से यह सिद्ध हो गया है कि रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ जैविक खादों का संतुलित उपयोग, रासायनिक उर्वरकों या जैविक खादों के अकेले उपयोग की तुलना में अधिक प्रभावी रहा है।

जैव उर्वरक

जैव उर्वरक एक जीवाणु खाद है। जिसके विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि जैव उर्वरक के प्रयोग से आमतौर पर 20 से 35 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर भूमि को प्राप्त होती है। यह भी देखा गया है कि जैव उर्वरकों के प्रयोग से उपज में 15 से 25 प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाती है। जैव उर्वरक, रासायनिक उर्वरकों के पूरक होने के साथ–साथ उर्वरकों के उपयोग क्षमता में भी वृद्धि करते है। फास्फोबैक्टीरिया के प्रयोग से फास्फोरस की उपलब्धता में 30 से 50 प्रतिशत की बढ़ोत्तारी हो जाती है।

जैव उर्वरकों के लाभ

1. जैव उर्वरक सस्ते व सुलभ होने साथ–साथ कम खर्च में अधिक उपज प्रदान करते हैं।
2. यह वायुमंडल में उपलब्ध नाइट्रोजन का स्थिरीकरण एवं मिट्टी के अघुलनशील फास्फोरस को घोल कर पौधों के लिए नत्रजन व फास्फोरस की उपलब्धता को बढ़ाते हैं।
3. इनके द्वारा वृद्धिकारक रासायनों (ग्रोथ हारमोन एवं विटामिन) का रिसाव होता है जो पौधों की वृद्धि के लिए अधिक उपयोगी होते हैं।
4. सभी जैव उर्वरक प्रदुषणमुक्त होने के साथ ही पर्यावरण मित्र होते हैं। इनके प्रयोग से मृदाजन्य रोगों से फसलों का बचाव होता है।
5. मिट्टी की संरचना एवं स्वास्थ्य पर इनके अनुकूल प्रभाव के कारण उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है।
6. जैव उर्वरक, रासायनिक उर्वरकों का स्थान कभी नही ले सकते हैं परन्तु इनके प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की मात्रा में कमी अवश्य लायी जा सकती है।

जल प्रबंधन

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में कुशल जल प्रबन्धन के लिए

वर्षा जल संचयन, प्राकृतिक जल संसाधन बढ़ाने, यथास्थान नमी संरक्षण तथा उपलब्ध जल के कुशल उपयोग की आवश्यकता है।

वर्षा जल संचयन

शुष्क क्षेत्रों में वर्षा जल के प्रबन्धन का फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका है। वर्तमान परिस्थिति में वर्षा जल संचयन का अत्यधिक महत्व होता जा रहा है। इसलिए जल बहाव को रोकने और पानी के संचयन की भूमिका महत्वपूर्ण हो जती है यह आवश्यक है कि खेत का पानी खेत में और गाँव का पानी गाँव में रहे। वर्षा जल संचयन और भू–जल पुनर्भरण के लिए विभिन्न तकनीक जैसे फैरो–सीमेंट टैंक, पुनर्भरण कुँए, गड्ढे एवं खाईयां, परकोलेशन तालाब, चेक–डैम इत्यादि का निर्माण किया जाना चहिए। छोटे किसानों के लिए छोटे–छोटे एवं कम लागत से निर्मित तालाब बनाना चहिए जिससे वर्षा जल संग्रहण हो और उसका फसल उत्पादन में लाभ प्राप्त हो सके।

प्राकृतिक जल संसाधन बढ़ाना

विकासात्मक गतिविधियों जैसे, खनन, सड़क निर्माण, वनों की कटाई इत्यादि की वजह से प्राकृतिक जल स्रोत समाप्त हो चुके है या तो सूख रहे हैं या मौसमी होते जा रहे हैं इसलिए अधिक से अधिक वृक्षारोपण को प्रोत्साहित किया जाना और वनों की कटाई और अंधाधुंध खनन को रोकना आवश्यक हो गया है। पारम्परिक जल संसाधनों (तालाब, कुएँ) को प्रदूषण से बचाने तथा समय–समय पर उनकी सफाई, रख–रखाव पर भी ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है।

नमी का संरक्षण

खेतों के पानी को खेत में ही संरक्षित करना अवश्य है इसके लिए वाष्पीकरण, गहरे रिसाव व अपवाह द्वारा पानी के नुकसान को रोकने / कम करने के लिए विभिन्न तकनीक को अपनाया जा सकता है जो निम्नलिखित हैं–

1. पलवार: इसमें मिट्टी की सतह को किसी भी प्रकार के प्राकृतिक एवं कृत्रिम सामग्री (जैसे घास, फसल अवशेष, पत्ते, प्लास्टिक चादर, इत्यादि) से ढका जाता है। पलवार द्वारा वाष्पीकरण कम होता है, नमी संरक्षण होता है और वर्षा जल के अधिकतम मात्रा का भूमि में समावेश होता है। पलवार द्वारा 25–50 प्रतिशत सिंचाई योग्य जल की बचत होती है। खरीफ फसल कटने के बाद पलवार डालने से खेत की नमी बनी रहती है जो रबी फसल के लिए उपयोगी होती है।

2. गोबर एवं हरी खाद का उपयोग : गोबर एवं हरी खादें मिट्टी की जल धारण क्षमता को बढ़ाती है और जड़ क्षेत्र से नीचे वाले जल ह्रास को कम करती है। हरी खाद के लिये ढैंचा, सनई, जूट आदि का उपयोग किया जाता है।

3. निकाई एवं गुड़ाई : खरपतवारों द्वारा वाष्पोत्सर्जन क्रिया से होने वाला अनावश्यक जल ह्रास निकाई–गुड़ाई द्वारा कम हो जाता और भूमि में नमी बनी रहती है।

4. अप्रवाह से होने वाली जल–ह्रास की रोकथाम : अप्रवाह द्वारा होने वाले जल ह्रास को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए।

- खेतों की मेड़बंदी व खेतों को समतल करना।
- खेतों की जुताई ढलान के विपरीत दिशा में करने से बहाव में रुकावट पड़ती है और भूमि को पानी सोखने

के लिए अधिक समय मिलता है।

- ढलानदार सतह पर सीढ़ीनुमा खेत बनाने और उसकी ढलान अंदर की तरफ रखने से लाभप्रद परिणाम मिलते हैं।

उपलब्ध जल का कुशल प्रयोग

जल एक बहुमूल्य एवं दुर्लभ प्राकृतिक संसाधन है जिसे कुशलता से इस्तेमाल किया जाना चाहिए। हमें कम पानी से अधिक उत्पादन लेने के लिए जल उत्पादकता एवं उपयोग क्षमता को बढ़ाना होगा। जल स्रोत से लेकर खेत तक होने वाली जल हानि को रोकना आवश्यक है। विभिन्न क्षमताओं जैसे वाहन, भंडारण, वितरण और प्रभावी वर्षा इत्यादि में सुधार होने से उत्पादकता उपयोग में भी वृद्धि होती है अतः जल संरक्षण के साथ–साथ हमें सिंचाई की उन्नत प्रणाली का प्रयोग करना चाहियेद्य बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली तथा फव्वारा सिंचाई विधि द्वारा पानी की 60–80 प्रतिशत बचत के साथ–साथ 15–20 प्रतिशत तक फसलोत्पादन में भी बढ़ोत्तरी की जा सकती है। इन विधियों द्वारा फसल को आवश्यकतानुसार बराबर पानी दिया जाता है जिससे पानी का दुरुपयोग कम होता है। इन विधियों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार भी अनुदान के रूप में सहायता प्रदान करती है। किसी भी विधि द्वारा सिंचाई दक्षता में सुधार के लिए रिसाव द्वारा होने वाले नुकसान को घटाने, मध्यान्ह सिंचाई से परहेज करने, अधिक सिंचाई न करने, हल्की और बार–बार सिंचाई करने, उपयुक्त फसल चक्र और उचित समय पर फसल उगाने, समय पर खरपतवार नियंत्रण, गोबर/कम्पोस्ट/हरी खाद का प्रयोग करने, सह–फसली खेती अपनाने तथा उचित उर्वरक प्रबन्धन करने से लाभदायक परिणाम प्राप्त होते हैं।

फलों और सब्जियों के लिए परिपक्वता सूचकांक : शुष्क प्रदेश में उच्च गुणवत्ता के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण उपाय

शीतल रावत और रामकेश मीना

फलों और सब्जियों की उत्कृष्ट गुणवत्ता तभी प्राप्त होती है जब तुड़ाई आवश्यकता अनुसार सही समय पर की जाती है। परिपक्वता वह अवस्था है जहां फलों की पूर्ण वृद्धि और विकास होता है। किसी भी फल के पकने के बाद, उसका पतन दौर शुरू हो जाता है। परिपक्वता सूचकांक फल और सब्जियों की शेल्फ लाइफ को निर्धारित करने में मदद करते हैं। ये संकेत अनुभव और कौशल पर आधारित होते हैं। फलों का बाजार मूल्य फलों की गुणवत्ता पर निर्भर करता है, इसलिए सही समय पर तोड़ने और अधिक शेल्फ लाइफ के लिए फलों के परिपक्वता सूचकांक का महत्व होता है। अत्यंत उपयुक्त विकसित कृषि पद्धतियों के साथ संयुक्त रूप से परिपक्वता सूचकांकों का उपयोग करने से, शुष्क प्रदेश में उच्च गुणवत्ता वाले फलों और सब्जियों की उत्पादन में सुधार हो सकता है।

परिपक्वता सूचकांक का महत्त्व

1. फलों में वांछित गुणों, स्वाद, महक का विकास होता है।
2. फलों को उचित अवस्था में तुड़ाई करने से भंडारण अवधि मे बढ़ोतरी की जा सकती है।
3. उपभोक्ता तथा उत्पादक दोनों लाभांवित होते हैं। उत्पादको को अच्छी कीमत मिलती है एव उपभोक्ताओ को गुणवत्तायुक्त उत्पाद मिलते है।
4. परिवहन एवं पैकिंग में आसानी होती है तथा उत्पादक, व्यापारी एवं उपभोक्ताओ में आपसी विश्वास बढ़ता है जिससे घरेलू एव विदेशी बाजार को बल मिलता है।

फलों के प्रकार

परिपक्वता की दृष्टि से फल दो प्रकार के होते है।

क्लाइमेट्रिकः क्लाइमेट्रिक फलों में परिपक्वन पर श्वसन क्रिया अचानक बडकर धीमी पड़ जाती है श्वसन के एकाएक बढने के कारण इथिलीन गैस का उत्पादन होता है। इस अवस्था का गुणात्मक परिवर्तनो से काफी संबन्ध होता है। क्योंकि फलों की अधिकतम स्वीकार्यता (रंग, स्वाद, महक) इसी अवस्था में होती है। क्लाइमेट्रिक फलों में बेल, आदि फल आते है।

नान क्लाइमेट्रिकः नान क्लाइमेट्रिक फलो में परिपक्वन पर भी श्वसन क्रिया की गति धीमी होती है एसे फलो में एथीलीन गैस का स्तर कम होता है फलो को तुड़ाई के बाद रखकर पकाया नही जा सकता है इन फलो की तुड़ाई तभी करनी चाहिए जब यह फल पूर्णत पेड पर ही पक जाए। नान क्लाइमेट्रिक फलो के अंतर्गत अनार, नीबू वर्गीय फल, बेर, किन्नो, मौसमी, खजूर, फालसा आदि फल फसले आती है।

फलो में तुड़ाई उपरांत गुंणवता निर्धारण में परिपक्वता का अहम योगदान होता है

फलों की परिपक्वता निर्धारण की विधियाँ उत्पाद के प्रकार और परिपक्वता स्तर पर निर्भर करती हैं। निम्नलिखित कुछ प्रमुख विधियाँ हैं

1. दृष्टिगत विधि

इस विधि द्वारा फलों की परिपक्वता का निर्धारण उसके रंग, आकार व उसके के आधार पर किया जाता है।

लाभः यह परिपक्वता निर्धारण की साधारण व आसान विधि है।

दोषः बड़े स्तर पर वैज्ञानिक रूप से तथा विदेशो में निर्यात हेतु इसका प्रयोग नहीं कर सकते।

2. भौतिक विधि

भौतिक विधि भी फलों की परिपक्वता का निर्धारण करने के लिए एक और उपयुक्त विधि है। यह विधि फलों के भौतिक गुणों और विशेषताओं के आधार पर उनकी परिपक्वता की जांच करती है। जैसे पके फलों का पेड़ से नीचे गिरना, फलों में रस की मात्रा और विशेष गुरूत्व आदि

लाभः दृष्टिगत विधि से अधिक सही विधि है। यह विधि विशेष रूप से छोटे स्थानीय बाजारों में उपयोगी होती है, जहां विशेष उपकरणों के उपलब्ध न होने के कारण अनुभवी न होने वाले उत्पादक भी फलों की परिपक्वता का निर्धारण कर सकते हैं।

दोषः यह विधि विभिन्न प्रकार की किस्मों से प्रभावित होती है।

3. रसायनिक विधि

रसायनिक विधि भी फलों की परिपक्वता का

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)–334 006

निर्धारण करने के लिए एक तरीका है। इस विधि में फलों के भीतरी रसायनिक परिवर्तनों को मापकर उनकी परिपक्वता का अंदाज़ा लगाया जाता है। रसायनिक विधि में परिपक्वता का मापन फलों के न्यूट्रिएंट स्तर और अन्य रसायनिक गुणों जैसे कुल घुलनशील पदार्थ की मात्रा, अम्लता, स्टार्च की मात्रा और कुल घूलनशील पदार्थ एवं अम्लता अनुपात के आधार पर किया जाता है।

लाभः यह विधि वैज्ञानिक दृष्टि से अच्छी है। तथा निर्यात के लिए फलों कि परिपक्वता का सही निर्धारण इस विधि द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

दोषः वैज्ञानिक विधि होने से किसान इसका उपयोग नहीं कर पाता तथा साथ ही इस विधि पर, मृदा, जलवायु एवं जैव नियंत्रकों के उपयोग से प्रभावित होती है।

4. गणना विधि

गणना विधियाँ विशेष रूप से फलों के उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों का चयन करने और उन्हें बेहतर ढंग से विक्रय करने में मदद करती हैंइस विधि में परिपक्वता का मूल्यांकन फूल आने से पकने तक की अवधि की गणना करके, कलेण्डर दिवस और हीट युनीट के आधार पर किया जाता है।

लाभः यह विधि विभिन्न परिस्थितियों में उपयोगी होती हैं, जो फलों के विकास और पकने की अवधि में बदल सकते हैं।

दोषः गणना विधि का उपयोग करने के लिए विशेषज्ञता और अनुभव की आवश्यकता होती है। अनुभवी न होने के कारण किसान या उत्पादक गलत गणना कर सकते हैं, जिससे उन्हें गलत फलों का चयन करने और उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों को छोड़ने का खतरा हो सकता है।

5. शरीर क्रियात्मक विधि

इस विधि द्वारा शारीरिक गतिविधियों जैसे फलों की श्वसन दर गणना करके और इथायलिन क्रियाशीलता के आधार पर फलों की परिपक्वता का निर्धारण किया जा सकता है।

लाभः इस विधि द्वारा क्लाइमेट्रिक फल जैसे, बेल, नीबू आदी फलों की परिपक्वता का निर्धारण सही हो सकता है।

दोषः इस विधि में वैज्ञानिक यंत्रो की आवश्यकता पडती है। जो कि अधिक मंहगे होने के साथ इनको चलाने के लिए विशेष प्रशिक्षण की भी आवश्यकता होती है।

विभिन्न फलों की परिपक्वता निर्धारण के मानक

कुछ मुख्य फलों में परिपक्वता निर्धारण करने के लिए व्यवहारिक रूप से प्रयोग में लाई जाने वाली विधियां निम्न हैः–

अनारः दूसरे फलों से भिन्न अनार को पेड पर पकने के बाद ही तोडा जाता है फल प्रवृद्धि के बाद 135 से 170 दिन के बीच तोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। फलों को हाथ से दबाने पर दाने के चट्कने की आवाज आती है तथा थपथपाने पर मेटालीक आवाज आती है। फलो के बाह्यदल पुंज बहार की तरफ मुड़ जाते हैं। इसी तरह, उचित परिपक्वता वाले फलों को आसानी से अपने नाखून से खरोंचा जा सकता है। फल में टी. एस. एस. की मात्रा 12–16 प्रतिशत के बीच तथा अम्लता 0.6–0.78 के बीच होनी चाहिए। परिपक्वता के लिए TSS: अम्ल अनुपात (70:1) को भी कटाई के लिए सर्वोत्तम रासायनिक सूचकांक माना गया है।

आंवलाः आँवले में फल का रंग सबसे विश्वसनीय परिपक्वता सूचकांक होता है। फल आमतौर पर हल्के हरे होते हैं लेकिन पकने पर, रंग हरा पीला या हल्का लाल हो जाता है। विटामिन सी की मात्रा भी एक विश्वसनीय परिपक्वता सूचकांक के रूप में ली जा सकती है जो किस्म विशेष पर निर्भर करता है।

खजूरः खजूर को विभिन्न परिपक्वता के चरणों में खाया जाता है, जो विविधता के अनुसार भिन्न होते हैं। इसलिए, कटाई का समय स्थानीय मांग के अनुसार भी भिन्नता दिखाता है। हालांकि, सामान्यतः खजूर उनके मुलायम होने पर तोड़े जाते हैं। भारत में, प्री–मॉनसून बारिश की बजह से मुलायम होने की अवस्था (डांग) कभी नहीं पहुंचती इसलिए ये खजूर डोका अवस्था में तोड़ लिए जाने चाहिए, डोका अवस्था में फलों का रंग हरे रंग से पीले या लाल रंग में बदलने लगता है और कड़वाहट भी काफी कम हो जाती है।

बेरः बेर के फलों की तुड़ाई मुख्यतः रंग परिवर्तन की अवस्था पर की जानी चाहिए। इस अवस्था पर फलों में कुल घूलनशील पदार्थो कि मात्रा 15–18 प्रतिशत, तथा सापेक्ष गुरुत्वमान 1 से कम पाया जाता है।

अंजीरः अंजीर को तोड़ने का उचित समय मुख्य रूप से फल के रंग और तोड़ने में आसानी पर आधारित मापदंड हैं। काले छीलके वाले अंजीर को काला होने से पहले ही तोड़ लिया जाना चाहिए, जबकि पीले छिलके वाले अंजीर को उनके रंग के यथार्थित पीले रंग या हल्के पीले रंग में होने पर तोड़ा जाना चाहिए। सर्वोत्तम स्वाद के लिए, फलों को नरम होने और गरदन से मुरझा जाने तक तोड़ना चाहिए। जब फल को खींचा जाता है और उसमें दूधिया लाटेक्स निकलता है, तो यह दिखाता है कि फल अभी अपरिपक्व है। अंजीर अत्यंत नाजुक होते हैं, पूरी तरह पके

हुए फल दूरस्थ बाजारों तक पहुंचाए नहीं जा सकते हैं, इसलिए इन्हें पूरी परिपक्वता के आगमन से पहले ही तोड़ लेना चाहिए।

बेलः बेल एक क्लाइमैक्टेरिक फल है और इसे पूरी परिपक्व होने पर ही तोडना चाहिए। परिपक्वता के समय, पेड़ आमतौर पर पत्तों से खाली हो जाते हैं और फल पूरी तरह से बाहर आ जाते हैं। यदि फलों को पेड़ पर और अधिक समय तक छोड़ दिया जाता है, तो वे फटने के कारण ख़राब हो जाते है।

जामुनः जामुन के फलों को पकने के तुरंत बाद तोड़ लेना चाहिए। फल जून–जुलाई में पकते हैं। पके फल गहरे बैंगनी या काले रंग के होते हैं, जो जामुन की कटाई के लिए एक विश्वसनीय परिपक्वता सूचकांक है।

किन्नोः किन्नो में आकर्षक रंग पुर्ण परिपक्वता के पहले आ जाता है। अतः रंग का विकास किन्नो की तुडाई हेतु अच्छा सुचक नही है परंतु कुल घुलनशील ठोस पदार्थो व अम्लता का अनुपात यदि 12:1 व 14:1 के बीच है तो तुडाई हेतु अति उतम अवस्था मानी जाती है।

फालसाः फालसा में फलो की तुडाई फलों के लाल होने पर करनी चाहिये। इस अवस्था में फलो में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा 18–24 प्रतिशत तक पायी जाती है।

लसोड़ाः लसोड़ा के लिए परिपक्वता सूचकांक निर्धारित करना फल के उच्च गुणवत्ता और स्वाद की सुनिश्चितता के लिए महत्वपूर्ण है। परिपक्व होने पर लसोड़ा के फलों का रंग हरे से पीले या पीले से गोल्डन–ब्राउन में बदल जाता है। फल मुलायम और धीरे–धीरे विकसित होने से फल प्लंप आकृति का होता है। इसके बीज समृद्ध और पूर्णतः विकसित होते हैं। फल में मीठा और स्वादिष्ट गंध होती है। परिपक्व लसोड़ा फल का ब्रिक्स मूल्य उच्च होता है।

अतः फलों और सब्जियों के लिए परिपक्वता सूचकांक उच्च गुणवत्ता के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण और सार्थक उपाय है। यह फलों और सब्जियों की गुणवत्ता को बढ़ाने के साथ साथ उनकी बाजार मूल्यक्रिया को सुधारने में भी मदद करता है।

पुष्पों का राजाः गुलाब की उन्नत खेती

अनिता[1], अनिल कुमार[2] एवं गोपी कृष्ण[1]

गुलाब के पुष्प का जगत में एक विशिष्ठ स्थान है, इसलिये इसे पुष्पों का राजा कहा जाता है। इसे सौंदर्य का प्रतीक समझा जाता है और आदिकाल से ही इसे विश्वभर के उद्यानों में उगाया जाता रहा है। सौंदर्य के अलावा गुलाब का औद्योगिक महत्व भी है। इससे प्राप्त इत्र, गुलकन्द, गुलाब जल व शर्बत का उपयोग व्यापक रूप से किया जाता है। इसके अलावा गुलाब की कलमों, पौधों और कटे पुष्पों का उद्योग भी देश–विदेश में अच्छी तरह से स्थापित है। राजस्थान में हल्दीघाटी, खमनोर, पुष्कर व जयपुर क्षेत्र में क्रमशः चेती गुलाब, बारहमासी गुलाब, गंगानगरी लाल गुलाब व्यावसायिक स्तर पर उगाया जाता है। व्यावसायिक दृष्टि से देशी गुलाब एक महत्वपूर्ण पौधा है। गुलाब की खेती को दो भागों में विभक्त किया गया है। पहले भाग में वे गुलाब लिये गए हैं जिन्हें गृह उद्यानों, बाग–बगीचों की शोभा बढ़ाने व कटे पुष्प प्राप्त करने के लिए लगाया जाता है। दूसरे भाग में वे प्रजातियाँ ली गई हैं जिनकी खेती व्यावसायिक स्तर पर खुले फूल, गुलाब जल, इत्र, गुलकन्द व शर्बत आदि बनाने के लिए की जाती है। गुलाब मुख्यतः चार सुगंधित प्रजातियाँ हैं जो कि तेल निर्माण के उद्देश्य से लगाई जाती हैं। ये प्रजातियाँ हैं– 1. रोजा सेन्टीफोलिया 2. रोजा मोसचांटा 3. रोजा बोरबोनियाना 4. रोजा डेमेसिना। इनमें से भारत में सबसे ज्यादा रोजा डेमेसिना लगाई जाती है। उदयपुर के हल्दीघाटी क्षेत्र में रोजा डेमेसिना तथा अजमेर क्षेत्र में बोरबोनियाना लगाया जाता है जबकि गंगानगर क्षेत्र में रोजा चाइनेनसिस लगाया जाता है।

जलवायु एवं भूमि : गुलाब के लिए बलुई दोमट से लेकर चिकनी दोमट भूमि, जिसका पी.एच. मान 6 से 8 हो उपयुक्त होती है। भूमि में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए। अधिक पुष्प उत्पादन के लिए प्रचुर मात्रा में धूप व आर्द्रता वाली जलवायु उपयुक्त होती है।

उन्नत किस्में : चैती गुलाब, नूरजहाँ, ज्वाला, हिमरोज, पुष्कर लोकल तथा गंगानगरी रेड रोज।

प्रवर्धनः गुलाब की खेती के लिए एक वर्ष पुरानी टहनियों से 20–25 सेमी. लम्बे व 1–1.5 से.मी. मोटे टुकडे कटाई–छंटाई के समय अक्टूबर–नवम्बर माह में तैयार करते हैं। हर एक कलम में 3–4 आंख का होना आवश्यक है। इन्हें तैयार नर्सरी के 20 X 5 मीटर क्षेत्रफल में उत्तर की ओर समकोण पर लगाया जाता है। इस तरह एक हैक्टर क्षेत्रफल के लिए 10,000 कलमें 5 मीटर लम्बी एवं 1 मीटर चौड़ी क्यारी में लगाई जाती हैं। कलमों में जड़ निकालने के लिए नर्सरी में लगाने से पूर्व आई.बी.ए. (200 पी.पी.एम.) नामक वृद्धि नियंत्रक से उपचारित करें। इस दौरान नर्सरी की उचित देखभाल करनी चाहिए।

पौध रोपण : तैयार खेत में 50 X 50 X 50 से.मी. आकार के गड्ढे 1.0 मीटर लाइन से लाइन की एवं पौधे से पौधे की दूरी पर तैयार करें। प्रत्येक गड्ढे में 5 किलोग्राम गोबर की खाद, 150 ग्राम सुपर फॉस्फेट, 50 ग्राम जिंक सल्फेट तथा 100 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश की मात्रा दें। इसके अतिरिक्त दीमक नियंत्रण हेतु 4 ग्राम एण्डोसल्फान चूर्ण 50–60 ग्राम प्रति गड्ढा देवें। पौधे लगाने का उपयुक्त समय अक्टूबर से दिसम्बर का होता है। रोपण के तुरन्त बाद सिंचाई करना अति आवश्यक है।

खाद एवं उर्वरक : पुष्प उत्पादन बढ़ाने के लिए 8–10 टन प्रति हैक्टेयर अच्छी सड़ी गोबर की खाद प्रति वर्ष देनी चाहिए। इसके उपरान्त 200 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से अक्टूबर तथा जनवरी में दो भागों में बांट कर दें। सूक्ष्म तत्वों की आवश्यकता होने पर अवश्य देना चाहिए।

जब कलियाँ बनना आरम्भ हो जाये हो इसमें यूरिया 25 ग्राम, 25 ग्राम अमोनियम सल्फेट, 20 ग्राम पोटेशियम सल्फेट के मिश्रण की 25 ग्राम मात्रा को 10 से 12 लीटर पानी में घोल कर 10 से 15 दिन के अंतराल पर 2–3 बार छिड़काव कर सकते हैं। इसमें सूक्ष्म तत्वों का भी प्रयोग किया जा सकता है। इसमें खासतौर पर मैग्नीज सल्फेट, चिलेटेड आइरन, बोरेक्स तथा जिंक सल्फेट अवश्य हों।

---

[1]विद्यावाचस्पति शोद्यार्थी, अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, श्री कर्ण नरेंद्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर, जयपुर, राजस्थान, 303329
[2]विद्यावाचस्पति शोद्यार्थी, अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि महाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान, 334006

सिंचाई : साधारणतया पूरे वर्ष में 12 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। चैती तथा गंगानगर रेड गुलाब में कटाई–छंटाई से जून माह के अंत तक हर 15 दिन में सिंचाई की जानी चाहिए।

कटाई–छंटाई : पौधे की कटाई–छंटाई रोपण के दो वर्ष बाद की जाती है। इसका उपयुक्त समय नवम्बर–दिसम्बर तक माना जाता है। भूमि से 50 से.मी. ऊँचाई से पौधे को काटा जाता है। कटाई के 70–90 दिन बाद फूल आने शुरू हो जाते हैं।

निराई–गुड़ाई : कटाई–छंटाई के बाद दिसम्बर से फरवरी तक 2–3 बार निराई–गुड़ाई करने से पुष्प वाली शाखाएँ अधिक निकलती हैं तथा पौधे उचित आकार लेते हैं। इससे कलिका अधिक स्वस्थ बनती हैं। इसके अतिरिक्त गुलाब की फसल को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए। वर्ष में 4–5 बार निराई–गुड़ाई करनी चाहिए।

काइनेटिन का प्रयोग : काइनेटिन नामक वृद्धि नियंत्रक का 20 मिली. प्रति लीटर पानी की दर से कटाई–छंटाई के 30 दिन बाद पहला छिड़काव, कली बनते समय दूसरा छिड़काव तथा तीसरा छिड़काव दूसरे छिड़काव के 15 दिन बाद करना लाभप्रद रहता है। इससे फूलों के उत्पादन के साथ–साथ कली को फूलने से पहले गिरने से भी रोका जा सकता है।

फूलों की कटाई एवं पैकिंग : फूलों की कटाई टहनी समेत की जाती है। फूल की टहनी जितनी लम्बी होगी, उतने ज्यादा पैसे मिलेंगे। फूल की कटाई कली के पूर्ण विकसित होने पर करनी चाहिये इससे फूल पूरा खिला रहता है और काफी समय तक टिक सकता है। अपूर्ण विकसित कली का फूल काटने के बाद पूरा नहीं खिलता है। फूलों की कटाई सुबह जल्दी या संध्या में करनी चाहिए और काटने के बाद टहनी के कटे भाग को कली की गर्दन तक ताजा पानी में डुबा देना चाहिए तथा सिल्वर थायोसल्फेट परिरक्षक को काम में लेना चाहिए, जिससे फूलों को लम्बे समय तक ताजा रखा जा सके। इस कार्य के लिए प्लास्टिक की बाल्टी का उपयोग करें। ऐसा नहीं करने पर टहनी के कटे भाग से टहनी के अंदर हवा घुस जाती है, जो पानी सोखने में अवरोध पैदा करती है। जब सभी फूल कट जाये तब टहनियों के कटे भाग को पानी में 2 सेंटीमीटर नीचे के भाग को पुनः कट लगाना चाहिए। अगर कटे फूलों को तुरन्त काम में लेना हो तो उन्हें पानी में ठण्डी जगह पर जहाँ 4.4 डिग्री से 7.2 डिग्री सेंटीग्रेट तक तापमान हो, 6 से 12 घण्टे तक रखें, जिससे तली कठोर हो कर ज्यादा समय तक ताजी रह सके। एक रंग व लम्बाई वाली टहनियों को एक साथ रखना चाहिए। रखरखाव की सुविधा के लिए टहनी के निचले सिरे से 20 सेंटीमीटर तक पत्तियाँ व कांटे तोड़ देने चाहिए।

पैकिंग : कटे हुए फूलों को टहनी की लम्बाई, गुणवत्ता एवं किस्म के अनुसार छंटनी करके गत्ते के बक्सों में पैक किया जाता है। बक्से का आकार 100 सेंटीमीटर लम्बा, 32.5 सेंटीमीटर चौड़ा, व 6.5 सेंटीमीटर ऊँचा होता है, जिसमें 65 से 70 सेंटीमीटर लम्बी गुलाब की 80 टहनियाँ पैक की जाती हैं। बक्से के अंदर की तरफ प्लास्टिक लगी होती है। बहुत महीन नम टिशयू पेपर की कतरन को बक्से के दोनों किनारों पर रख देते हैं, जो फूलों के लिए गद्दे का काम करती है। 20–20 टहनियों के बण्डल रबर बैण्ड से बांध देते हैं तथा किस्म का नाम लिख दिया जाता है। 20–20 टहनियों वाले दो बण्डलों को बक्से में इस तरह रखते हैं कि कलियों वाला हिस्सा बक्से के दोनों किनारों की तरफ रहे। दोनों बण्डलों के दूसरे हिस्से को एक लकड़ी के टुकड़े से दबा कर अच्छी तरह फिक्स कर देते हैं। लकड़ी के नीचे फोम लगा देते हैं जिससे टहनियों को किसी तरह का नुकसान न हो सके। चार बण्डलों को इस तरह रख कर ऊपर टिशयू पेपर लगाकर ढक्कन बन्द कर चिपकाने वाली टेप से चिपका देते हैं। ऐसे बक्सों का वजन जिनमें 80 टहनियाँ होती हैं, का कुल वजन 5 से 6 किलो तक होता है। बॉक्स पर पहुँचने वाली जगह का पता लिख देते हैं।

उपज : उचित ढंग से गुलाब की खेती करने पर 2–3 टन प्रति हैक्टर पुष्प उत्पादन होता है। चैती गुलाब में तेल की मात्रा 0.03 से 0.045 प्रतिशत तक होती है। एक बार पौधा लगाने के बाद इसकी उपज 10–12 साल तक मिलती है।

कीट प्रबंध:

स्केल कीट : ये कीट टहनियों एवं तने पर भारी मात्रा में चिपके हुए रहते हैं। कीट ग्रसित पौधों पर अवयस्क शल्क पाये जाते हैं। इस कीट के प्रकोप से पौधा कमजोर पड़ जाता है और अधिक प्रकोप की अवस्था में सूख जाता है।

नियंत्रण हेतु पौधों का कृन्तन कर रोग ग्रस्त भाग को इकट्ठा करके नष्ट कर देवें। डाइजिनॉन या मिथाइल डिमेटॉन 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

मोयला : यह कीट पत्तियों, कली व कोमल टहनियों का रस चूसते हैं, फलस्वरूप पौधों की बढ़वार रूक जाती है

और पुष्प की गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस कीट का प्रकोप नवम्बर से अप्रैल तक अधिक रहता है।

नियंत्रण हेतु मैलाथियान 50 ई.सी. अथवा डाइमिथोएट 30 ई.सी. एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। नीम या पैनगेमिया तेल का 2 प्रतिशत का छिड़काव करें।

पर्णजीवी : ये कीट फूलों की पंखुड़ियों से रस चूसते हैं जिससे पंखुड़ियाँ मुड़ जाती हैं। पुष्प का आकार बिगड़ जाता है। पत्तियों पर सफेद धब्बे दिखाई देते हैं तथा पौधा कमजोर पड़ जाता है।

नियंत्रण हेतु मैलाथियान 50 ई.सी. अथवा डाइमिथोएट 30 ई.सी. एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

तना छेदक मक्खी : ये गहरे नीले रंग की छोटी मक्खी कटे हुए सिरों में छेद करके अंदर घुस जाती है तथा पूरी टहनी सूख जाती है।

नियंत्रण हेतु मैलाथियान 50 ई.सी. अथवा डाइमिथोएट 30 ई.सी. एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

थ्रिप्स : ये कीट पत्तियों तथा पंखुड़ियों का रस चूस लेता है इसके कारण पत्तियाँ मुड़ जाती हैं तथा इसमें धारिया पड़ जाती हैं।

नियंत्रण हेतु डाइमिथोएट या ऐसीफेट या इमिडाक्लोरप्रिड पाँच मिलीलीटर प्रति दस लीटर पानी की दर से 2 या 3 बार 15 दिन के अंतराल से छिड़काव करें।

स्पाइडर माइट : ये कीट पूर्ण विकसित पत्तियों के नीचे की ओर सफेद रेशमी जाले में रहता है। गर्म तथा सूखा वातावरण इसके लिए सबसे उपयुक्त है।

नियंत्रण हेतु क्षतिग्रस्त हिस्सों को काटकर जला दें तथा पौधे पर माइटेक या इथियान 5 मि.ली. प्रति दस लीटर पानी के घोल का 2 से 3 बार 15 दिन के अंतराल से छिड़काव करें।

व्याधि प्रबंध :

छाछ्या : इस रोग के आक्रमण से पत्तियों एवं कलियों पर सफेद चूर्ण के धब्बे दिखाई देते हैं या अधिक रोगग्रस्त पत्तियाँ पीली पड़कर झड़ जाती हैं।

नियंत्रण हेतु कैराथेन एल.सी. एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल का 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

एन्थ्रैक्नोज : इस रोग के प्रकोप से पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं और रोगग्रसित भाग मुरझा कर सूखने लगते हैं।

नियंत्रण हेतु मैंकोजैब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

डाई बैक : काट–छांट के पश्चात् प्रायः ये रोग टहनियों में लग जाता है। टहनियाँ ऊपर से नीचे की ओर सूखने लग जाती हैं तथा पूरा पौधा सूख कर मर सकता है।

नियंत्रण हेतु सूखे भाग को काट कर हटा दें तथा इसमें बोर्डो मिश्रण या गुलाब पेंट कॉपर कार्बोनेट + रेड लेड + अलसी का तेल 4:4:5 के अनुपात में कटी टहनियों के सिरे पर लगा दें।

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agresearch with a human touch

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर